सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—दसवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

किष्किन्धाकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार

अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता

शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय

बनारस सिटी

प्रथमावृत्ति] मातृ-नवमी, सं० १९८६ [मूल्य ॥।-)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।

मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा, किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए

अपने मित्रोंको भी ग्राहक बनाइए

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला

सस्ती पुस्तकों द्वारा सर्वसाधारणको लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि पुस्तकोंके विषय बढ़िया और दाम बहुत माकूल हों। हमने ऐसे कई प्रयत्न करनेवालोंको देखा, पर हमें ऐसी पुस्तक-माला 'हिन्दी-संसार'में दिखायी न दी। एकाध जगहसे ऐसी कोशिश हो रही है, पर

हम दावेके साथ

कह सकते हैं कि आप हमारी पुस्तकोंको लीजिए, उनकी दीर्घकायाको देखिए और साथ ही उनका दाम भी मिलाइए तो

आप देखेंगे कि

इनसे बढ़िया, इनसे सस्ती और अधिक शिक्षाप्रद पुस्तकें बहुत ही कम हैं। पर कमी है

स्थायी ग्राहकोंकी.

पर्याप्त ग्राहक मिलते ही, हम इतने ही नहीं

१००० पृष्ठ १) रु० में

देनेकी व्यवस्था कर सकते हैं।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर,
बनारस सिटी।

नोट—अपना ग्राहक नंबर यहाँ नोट कर लीजिए। पत्रव्यवहारमें उसका हवाला अवश्य दीजिए।

ग्राहक संख्या··········

॥ श्री ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

किष्किन्धाकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् । रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ १ ॥
तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे । स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका । फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम् । यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव ॥ ४ ॥
मां तु शोकाभिसंतप्तमाधयः पीडयन्ति वै । भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च ॥ ५ ॥
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना । व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥ ६ ॥

कमल, नील कमल और मछलियोंसे युक्त उस पम्पा-सरोवरको देखकर रामचन्द्र व्याकुल हुए अर्थात् कभी वे प्रसन्न होते और कभी दुःखी, कमल आदिके सीताके नेत्रसादृश्यसे व्याकुल होते थे, वे रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ रहने पर भी विलाप करने लगे ॥ १ ॥ उस पम्पा-सरोवरको देखते ही हर्षके कारण रामचन्द्रकी इन्द्रियाँ विचलित हुईं, (कमल आदिके देखनेसे उन्हें सीताके नेत्र आदिका स्मरण हुआ और उन्होंने समझा कि सीता ही सामने हैं) इससे रामचन्द्र कामवश हुए अर्थात् सीताको देखनेकी प्रबल इच्छाके कारण उनके ढूँढनेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टा करने लगे । वे रामचन्द्र लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥ लक्ष्मण, यह पम्पा सुन्दर मालूम होती है, वैदूर्यके समान इसका विमल जल है, अनेक जातिके कमल इसमें खिले हैं, तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंसे यह शोभित हो रही है ॥३॥ लक्ष्मण देखो पम्पावनको, यह कितना सुन्दर है, जहाँके लम्बे पेड़, शिखरवाले पर्वतोंके समान मालूम पड़ते हैं ॥ ४ ॥ शोकसन्तप्त मैं भरतके दुःखसे और सीताहरणसे मानसिक पीडाओंके कारण व्याकुल हो रहा हूँ ॥५॥ मैं शोक-पीड़ित हूँ, दुःखी हूँ, फिर भी अनेकविध वनोंके कारण यह पम्पा मुझे सुन्दर मालूम पड़ती है, इसमें अनेक प्रकारके फूल फैले हैं, इसका जल शीतल और सुन्दर है ॥ ६ ॥

नलिनैरपि संछन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना। सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥
अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्। द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥
पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः। लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥ ९ ॥
सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः। गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥१०॥
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्। सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥११॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः। वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥१२॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः। कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ॥१३॥
विक्षिपन्विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कटाः। मारुतश्चलितः स्थानैः षट्पदैरनुगीयते ॥१४॥
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्। शैलकंदरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ॥१५॥
तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः। अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥१६॥
स एव सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः। गन्धमभ्यवहन्पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः ॥१७॥
अमी पवनविक्षिप्ता विनदन्तीव पादपाः। षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥१८॥
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः। संसक्तशिखराः शैला विराजन्ति महाद्रुमैः ॥१९॥

कमलोंसे इसका जल ढँका हुआ है। साँप तथा उस जातिके अन्य जीवोंके चलनेसे यह और भी शोभित हो रही है, यह पम्पा पशु-पक्षियोंसे भी घिरी हुई है। यह पम्पा देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम होती है ॥ ७ ॥ इसकी नीली और पीली घास मुझे अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती है, मालूम होता है कि अनेक प्रकारके वृक्षोंके नाना पुष्पोंकी राशि एकत्र की गयी हो ॥ ८ ॥ ये वृक्षशिखाओंके अग्रभाग फूलोंसे लद गये हैं, पुष्पित अनेक लताएँ उनके चारो ओर लिपटी हुई हैं ॥ ९ ॥ लक्ष्मण, यह सुखकर हवा चल रही है, यह कामोद्दीपक समय है, सुगन्ध युक्त चैत्र मास है, वृक्षोंमें फल-फूल लग गये हैं ॥१०॥ लक्ष्मण, फूले हुए इस वनका सुन्दर रूप देखो, मेघके समान ये पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥११॥ ये वनके अनेक वृक्ष हवासे कम्पित होकर समतल पत्थरोंपर पुष्पवृष्टि करके पृथ्वीको ढँक रहे हैं ॥ १२॥ लक्ष्मण, देखो, वृक्षोंसे जो फूल गिर गये हैं, जो गिरनेवाले हैं अथवा जो अभी वृक्षोंमें लगे हुए हैं, उनसे हवा खेल रही है ॥ १३ ॥ फूलोंसे लदी हुई वृक्षोंकी शाखाओंको कँपाकर जब हवा वहाँसे चलती है, तब भ्रमर उसके पीछे गाता हुआ चलता है ॥१४॥ मस्त कोकिलोंके शब्दसे वृक्षोंको मानों नाचनेकी शिक्षा देती हुई, पर्वतकी गुफासे निकली वायु, गाती हुई सी मालूम पड़ता है ॥ १५ ॥ वायु चारो ओरसे वृक्षोंको कँपा रही है, पर इन वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभाग इस तरहसे मिले हुए हैं, मानों जुट गये हों, गुथे हुए हों ॥ १६ ॥ चन्दनसे शीतल इस दक्षिणी वायुका स्पर्श बड़ा ही सुखकर मालूम होता है, पवित्र गन्ध लाकर यह हवा थकावट दूर करती है ॥ १७ ॥ मधुर गन्धवाले इस वनमें भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, मालूम होता है मानों हवासे कँपाये वृक्ष गा रहे हैं और भ्रमर उनका अनुकरण कर रहे हों ॥ १८ ॥ रम्य पर्वत-शिखरों पर उत्पन्न, फूलवाले मनोहर लम्बे वृक्षोंके कारण

पुष्पसंछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः । अमी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः ॥२०॥
सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः । हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥२१॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः । सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ॥२२॥
मां हि शोकसमाक्रान्तं संतापयति मन्मथः । हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः ॥२३॥
एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे । प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥२४॥
श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया । मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनन्दत ॥२५॥
एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः । वृक्षगुल्मलताः पश्य संपतन्ति समन्ततः ॥२६॥
विमिश्रा विहगाः पुंभिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः । भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ॥२७॥
अस्याः कूले प्रमुदिताः सङ्घशः शकुनास्त्विह । दात्यूहरतिविक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि ॥२८॥
स्वनन्ति पादपाश्चेमे ममानङ्गप्रदीपकाः । अशोकस्तबकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः ॥२९॥
मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति । नहि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम् ॥३०॥
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम् । अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः ॥३१॥
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ । मन्मथायाससंभूतो वसन्तगुणवर्धितः ॥३२॥

पर्वत ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानों उनके शिखर आपसमें जुटे हुए हों ॥ १९ ॥ ये वृक्ष गायकके समान मालूम पड़ते हैं । इनकी शाखाओंके अग्रभाग फूलोंसे ढँक गये हैं, ये वायुके द्वारा कम्पित हो रहे हैं और भौंरे इनकी पगड़ीके समान शोभित हो रहे हैं ॥ २० ॥ चारो ओर फैले हुए और खूब फूले हुए इन कर्णिकार नामक वृक्षोंको देखो, ये पीताम्बरधारी तथा सुवर्ण-मुकुटधारी मनुष्यके समान मालूम पड़ते हैं ॥ २१ ॥ लक्ष्मण, इस वसन्तमें अनेक पक्षी बोलते हैं और यह वसन्त सीताके विरहकालमें मेरा शोक और बढ़ा रहा है ॥ २२ ॥ शोकसे पीड़ित मुझको कामदेव सता रहा है और यह कोकिल तो मुझे प्रसन्नतापूर्वक ललकार रही है, अपनी विजयकी घोषणा कर रही है ॥ २३ ॥ इस वनैले सोतेके पास जलकुक्कुट प्रसन्न होकर बोल रहा है और कामयुक्त मुझको दुःखी बना रहा है ॥ २४ ॥ इसका शब्द सुनकर आश्रममें रहनेवाली मेरी प्रिया सीता प्रसन्न होकर मुझे बुलाती थी और बहुत प्रसन्न होती थी ॥ २५ ॥ लक्ष्मण देखो, अनेक वर्णके तथा विविध शब्द बोलनेवाले पक्षी चारो ओरसे वृक्षोंपर आ रहे हैं ॥ २६ ॥ ये स्त्री पक्षियाँ पुरुषोंके साथ मिलकर अपने दलके साथ आनन्दित हो रही हैं और भौंरेके समान मधुर बोल रही हैं ॥ २७ ॥ आनन्दित होकर अनेक पक्षी दल बाँध कर इस पम्पाके तीरपर हैं । जल कुक्कुटोंके प्रेमालाप और पुरुष कोकिलोंके शब्दसे ॥ २८ ॥ ये वृक्ष बोल रहे हैं और मेरे कामको बढ़ा रहे हैं । अशोकके गुच्छे जिसके अंगारे हैं, भौंरोंका शब्द ही जिसका शब्द है ॥ २९ ॥ नये पत्तोंकी लालिमा ही जिसकी लपट है, वह वसन्ताग्नि मुझे अवश्य जलावेगी । सूक्ष्मपक्ष्माक्षी, सुकेशी और मृदुभाषिणी ॥ ३० ॥ सीताको न देखनेसे मेरा जीवन निरर्थक है । यह वसन्तसमय सीताको बड़ा प्रिय है, क्योंकि इस समय वनकी शोभा बढ़ जाती है ॥ ३१ ॥ इस समय कोकिलोंके शब्दसे समस्त वन गूँज जाता है । कामदेवकी पीड़ासे उत्पन्न और वसन्तकी विभूतियोंसे

अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव । अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥
ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति । अदृश्यमाना वैदेही शोकं वर्धयतीह मे ॥३४॥
दृश्यमानो वसन्तश्च स्वेदसंसर्गदूषकः । मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ताशोकबलात्कृतम् ॥३५॥
संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः । अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः ॥३६॥
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव । शिखिनीभिः परिवृतास्त एते मदमूर्च्छिताः ॥३७॥
मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः । पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥
शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि । तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति ॥३९॥
वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव । मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया । मम त्वयं विना वासः पुष्पमासे सुदुःसहः ॥४१॥
पश्य लक्ष्मण संरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि । अधुना शिखिनी कामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा । मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥
पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे । पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥

बढ़ी हुई ॥ ३२ ॥ यह शोकाग्नि शीघ्रही मुझे जला देगी, देर न करेगी। मैं सीता को नहीं देख रहा हूँ और इन सुन्दर वृक्षोंको देख रहा हूँ ॥ ३३ ॥ इस कारण मेरा यह कामजनित शोक और अधिक बढ़ रहा है। वैदेही भी अदृश्य होकर मेरे शोकको और बढ़ा रही है ॥ ३४ ॥ यह वसन्त सामने प्रत्यक्ष है। जो थकावटके पसीने दूर करता है। मैं इस समय चिन्ता और शोकके कारण अनेक प्रकारके कार्य कर रहा हूँ अर्थात् ज्ञानहीन हो गया हूँ। इस समय यह वसन्त और मृगशावाक्षी सीता भी मुझे दुःखित कर रही है ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण ! यह कठोर चैत्रकी वनैली हवा मुझे और सन्तप्त कर रही है। ये मयूर इधर उधर नाचते हुए बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥ ३६ ॥ इनके पङ्ख वायुके झोंकेसे जब अलग कर दिये जाते हैं, तब वह स्थान स्फटिककी खिड़कीके समान मालूम होता है। ये अपनी मोरिनोंसे घिरे हुए हैं; अतएव मतवाले होकर नाच रहे हैं ॥ ३७ ॥ मैं तो पहलेसे काम-पीड़ित था ही, इन मयूरोंके इस दृश्यको देखनेसे मेरी पीड़ा और बढ़ रही है ! लक्ष्मण, देखो नाचते हुए मयूरोंके पास यह मयूरी जाकर नाचती है ॥ ३८ ॥ पर्वतके शिखरपर नाचते हुए पति के पास जाकर कामपीड़ित यह मयूरी नाच रही है। मयूर भी मन ही मन अपनी प्रियतमाके पास जानेकी इच्छा करता है। ॥ ३९ ॥ मयूरकी स्त्रीको वनसे राक्षसने हरण नहीं किया है, इस कारण वे अपने दोनों पाँख फैलाकर अपनी बोलीमें मानों मेरा उपहास कर रहे हैं ॥ ४० ॥ उसकी प्रिया हरी नहीं गयी, इसलिए वह अपनी प्रियतमाके साथ रमणीय वनमें नाच रहा है। इस वसन्तमें प्रियतमाके बिना मेरा रहना कठिन है ॥ ४१ ॥ लक्ष्मण ! देखो, पक्षियोंमें भी वह अद्भुत प्रेम देखा जाता है। यह मयूरी प्रेमसे अपने पति मयूरका अनुवर्तन कर रही है, आज यदि विशालाक्षी जानकी यहाँ होती, तो अत्यन्त हर्षके साथ मेरे प्रति आदरभाव रखती हुई मेरे पास आती ॥ ४२, ४३ ॥ वसन्तमें वन फूलों से भर गए हैं। पर वे

रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया । निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥
नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सङ्घशः कलम् । आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥
वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया । नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥४७॥
नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा । कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥
अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया । किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः॥४९॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया । नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥५०॥
दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते । नालं वर्तयितुं सीता साध्वीमद्विरहं गता ॥५१॥
मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः । ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥५२॥
एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः । तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥५३॥
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया । मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥५४॥
तां विनाथ विहङ्गोऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा । वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिकूजति ॥५५॥
एष वै तत्र वैदेह्या विहगः प्रतिहारकः । पक्षी मां तु विशालाक्ष्याः समीपमुपनेष्यति ॥५६॥

सब फूल मेरे लिए आज निष्फल हो रहे हैं ॥ ४४ ॥ अत्यन्त सुन्दर भी ये फूल निष्फल होनेके कारण भौरोंके साथ जमीन पर गिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ ये पक्षी दलबद्ध होकर मधुर स्वरमें बोल रहे हैं, मानों ये आपसमें एक दूसरे को बुला रहे हैं । ये भी मेरे कामको बढ़ा रहे हैं ॥४६॥ जिस स्थान पर मेरी प्रिया सीता पराधीन होकर इस समय रहती होगी, यदि वहाँ भी वसन्त होगा, वह भी वैसा ही सोचती होगी, जैसा कि मैं इस समय सोच रहा हूँ ॥ ४७ ॥ सीता जहाँ वर्त्तमान है वहाँ वसन्तके चिन्ह प्रकट नहीं हुए हैं, ऐसा निश्चित रूपसे कहा जा सकता है, क्योंकि वसन्तके आविर्भाव होनेपर नील-कमलनयनी सीता मेरे विना कैसे रह सकती थी ॥४८॥ अथवा जहाँ मेरी प्रिया सीता वर्तमान है, वहाँ भी वसन्त हो होगा, परन्तु मेरी प्रिया सीता शत्रुओंके हाथमें पड़ जानेसे क्या कर सकती है ॥४९॥ श्यामा कमलनयनी मृदुभाषिणी, मेरी प्रिया सीता वसन्तके आनेसे अवश्य ही अपने प्राण छोड़ देगी ॥५०॥ मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि मेरे विरह होनेपर साध्वी सीता अच्छी तरह नहीं रह सकती ॥ ५१ ॥ मेरा यथार्थ प्रेम सीतामें है और सीताका यथार्थ प्रेम मुझपर है ॥५२॥ सुगन्धित, शीतल और सुखकारी यह वायु सीताको ढूँढ़नेके समय मुझे अग्निके समान मालूम हो रहा है ॥ ५३ ॥ जिस वायुको सीताके साथ रहनेके समय मैं सुखकारी समझता था, आज वही वायु सीताके न रहनेपर मेरे लिए दुःखदायी हो रहा है ॥५४॥ यह काक-पक्षी उस समय (सीताके संयोग समयमें) बोलता था अर्थात् वियोगकी सूचना देता था । आज वही पक्षी सीताके न रहनेपर पेड़पर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक बोल रहा है । अर्थात् सीताके संयोग होनेकी सूचना देता है ॥ ५५ ॥ यही पक्षी सीताका हरण करानेवाला है, इसीके अशुभ सूचक शब्द होनेपर सीताका हरण हुआ था । आज यही पक्षी मुझे सीताके पास पहुँचावेगा । अर्थात् इसके अशुभ शब्दसे सीता हरी गयी थीं और आज इसके शुभ शब्दसे सीताकी प्राप्ति होगी ॥ ५६ ॥ लक्ष्मण, वनमें पक्षियोंके शब्द सुनो ।

पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् । पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥५७॥
विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम् । षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥५८॥
कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः । स्तवकैः पवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निव मां स्थितः ॥५९॥
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः । विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥६०॥
सौमित्रे पश्य पम्पायाश्चित्रासु वनराजिषु । किंनरा नरशार्दूल विचरन्ति यतस्ततः ॥६१॥
इमानि शुभगन्धीनि पश्य लक्ष्मण सर्वशः । नलिनानि प्रकाशन्ते जले तरुणसूर्यवत् ॥६२॥
एषा प्रसन्नसलिला पद्मनीलोत्पलायुता । हंसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिकायुता ॥६३॥
जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः । पङ्कजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥६४॥
चक्रवाकयुता नित्यं चित्रप्रस्थवनान्तरा । मातङ्गमृगयूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः ॥६५॥
पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि । पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥६६॥
पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् । अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥६७॥
अहो कामस्य वामत्वं यो गतामपि दुर्लभाम् । स्मारयिष्यति कल्याणीं कल्याणतरवादिनीम् ॥६८॥
शक्यो धारयितुं कामो भवेदभ्यागतो मया । यदि भूयो वसन्तो मां न हन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥६९॥

जिनके सुननेसे मनुष्य मत्त हो जाता है । ये पक्षी पुष्पित वृक्षोंपर बोल रहे हैं ॥ ५७ ॥ वायुके द्वारा कँपायी गयी इस अशोक मञ्जरीके पास भ्रमर बड़ी शीघ्रतासे आ रहा है, जैसे कोई मद-विह्वल पुरुष प्रियतमाके पास जाता हो ॥ ५८ ॥ यह अशोक, कामियोंका अत्यन्त शोक बढ़ानेवाला है । वायुके द्वारा बिखेरे गए गुच्छोंसे ये मानों मुझे धमका रहा है ॥ ५९ ॥ लक्ष्मण, ये आम्र वृक्ष हैं, इनमें फूल लगे हुए हैं । ये अंगराग धारण किये हुए श्रृंगारी मनुष्यकी तरह मालूम पड़ते हैं ॥ ६० ॥ लक्ष्मण, पम्पाके विविध वनराजियोंमें इधर उधर घूमते हुए इन किन्नरोंको देखो ॥ ६१ ॥ लक्ष्मण, ये सुन्दर गंधवाले लाल कमल जलमें तरुण सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६२ ॥ यह पम्पा है, इसका स्वच्छ जल है । कमल और नील-कमल खिले हुए हैं । हंस और कारण्डव से यह युक्त है । सौगन्धिक नामक कमलकी जातिके पुष्प भी हैं ॥६३॥ तरुण सूर्यके समान और भ्रमरोंके द्वारा कम्पित केसरोंवाले कमलोंसे इस पम्पाका जल व्याप्त हो गया है अर्थात् जलमें केसर फैल गया है ॥६४॥ यहाँ चक्रवाक सदा रहते हैं । इसके वनोंमें बड़े बड़े सुन्दर स्थान हैं । हाथियों और हरिणोंका झुण्ड जल पीनेके लिए यहाँ आता है ॥ ६५ ॥ लक्ष्मण, वायुके आघातसे पम्पाके विमल जलमें जो तरंगे उठती हैं, उनसे कमल कम्पित हो जाते हैं, मानों वे ताड़ित हो रहे हों । वे बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥ ६६ ॥ कमलनयनी और कमलोंसे प्रेम करनेवाली सीताको न देखनेके कारण मैं अपना जीवन धारण करना ठीक नहीं समझता ॥ ६७ ॥ कामकी कुटिलता तो देखो, जो कल्याणी सीता, हमारे लिए दुर्लभ हो गयी है, उसी सुन्दर वचन बोलनेवाली सीताका आज यह स्मरण करा रहा है ॥६८॥ पुष्पित-द्रुम (फूले वृक्षोंवाला) यह वसन्त यदि मेरा घात न करता, तो मैं अपने अतिथि कामको धारण कर लेता अर्थात् सीताके वियोगको वसन्त और अधिक असह्य बना रहा है ॥६९॥

यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे । तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥७०॥
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते । सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥७१॥
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः । निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥७२॥
सौमित्रे पश्य पम्पाया दक्षिणे गिरिसानुषु । पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभिताम् ॥७३॥
अधिकं शैलराजोऽयं धातुभिस्तु विभूषितः । विचित्रं सृजते रेणुं वायुवेगविघट्टितम् ॥७४॥
गिरिप्रस्था तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः । निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥७५॥
पम्पातीररुहाश्चेमे संसिक्ता मधुगन्धिनः । मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्च पुष्पिताः ॥७६॥
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः । मातुलिङ्गाश्च पूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः ॥७७॥
चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा । चम्पकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥७८॥
पद्मकाश्चैव शोभन्ते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः । लोध्राश्च गिरिपृष्ठेषु सिंहकेसरपिञ्जराः ॥७९॥
अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः । चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥८०॥
मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु । केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ॥८१॥
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा । तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाःस्यन्दनास्तथा॥८२॥
हिन्तालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः । पुष्पिताः पुष्पिताग्राभिर्लताभिःपरिवेष्टितान्॥८३॥

सीताके साथ रहनेपर जो वस्तु मेरे लिए सुन्दर थीं, रमणीय थीं, वे ही आज सीताके न रहने पर अरमणीय और असुन्दर हो रही हैं ॥ ७० ॥ कमलकोषके पत्तोंको देखनेकी मेरी इच्छा होती है, क्योंकि ये सीताके नेत्रकोषके समान हैं ॥ ७१ ॥ कमल-केसरसे मिला हुआ और दो वृक्षोंके बीचसे निकला हुआ, मनोहर वायु सीताके निश्वासके समान बह रहा है ॥ ७२ ॥ लक्ष्मण, देखो, पम्पाके दक्षिण गिरि शिखरपर कर्णिकारकी लता फूली हुई है। यह देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती है ॥७३॥ अनेक धातुओंसे विभूषित यह शैलराज वायु के आघात लगनेसे अनेक प्रकारकी धूलकी सृष्टि करता है ॥ ७४ ॥ सौमित्रे ! ये पहाड़ी प्रदेश पुष्पित पत्रहीन और रमणीय पलाश वृक्षोंसे जलते हुएके समान मालूम पड़ते हैं ॥ ७५ ॥ ये पम्पा तीरके वृक्ष, पम्पाके जलसे सींचे गए और बढ़े हुए हैं ये बड़े सुगन्धित हैं। मालती, मल्लिका, कमल और करवीर इस समय फूल रहे हैं ॥ ७६ ॥ केतकी, सिन्दुवार और वासन्ती भी फूली हुई हैं। मातुलिंग और गन्धसे पूर्ण कुन्द तथा गुल्म भी चारो ओर फूले हुए हैं। चिरविल्व, मधूक, वंजुल, बकुल, चम्पक, तिलक, नागवृक्ष, पद्मक, नीलासोप, फूले हुए हैं। पर्वतों पर सिंहकेशरके समान लोध भी फूले हुए हैं। अंकोल, कुरण्ट, चूर्णक, पारिभद्रक, आम, पाटली, और कोविदार भी फूले हुए हैं। पर्वत-शिखर पर मुचकुन्द और अर्जुन भी दीख पड़ते हैं। केतक, उद्दालक, सिरीष, शिंशिपा, धव, शाल्मली, किंशुक, रक्तकुरवक, तिनिस, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, हिन्ताल, तिलक, नागवृक्ष ये सब वृक्ष स्वयं पुष्पित हो रहे हैं और पुष्पित लताओंसे परिवेष्टित हो रहे हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ सौमित्रे, पम्पा

द्रुमान्पश्येह सौमित्रे पम्पाया रुचिरान्बहुन् । वातविक्षिप्तविटपान्यथासन्नान्द्रुमानिमान् ॥८४॥
लताः समनुवर्तन्ते मत्ता इव वरस्त्रियः । पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् ॥८५॥
वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः । केचित्पर्याप्तकुसुमाः पादपा मधुगन्धिनः ॥८६॥
केचिन्मुकुलसंवीताः श्यामवर्णा इवाबभुः । इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि ॥८७॥
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते । निलीय पुनरुत्पत्य सहसान्यत्र गच्छति
मधुलुब्धो मधुकरः पम्पातीरद्रुमेष्वसौ ॥८८॥
इयं कुसुमसंघातैरुपास्तीर्णा सुखाकृता । स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव ॥८९॥
विविधा विविधैः पुष्पैस्तैरेव नगसानुषु । विस्तीर्णाःपीतरक्ताभाःसौमित्रे प्रस्तराःकृताः॥९०॥
हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसंभवम् । पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥९१॥
आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः । कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥९२॥
एष कारण्डवः पक्षी विगाह्य सलिलं शुभम् । रमते कान्तया सार्धं काममुद्दीपयन्निव ॥९३॥
मन्दाकिन्यास्तु यदिदं रूपमेतन्मनोहरम् । स्थाने जगति विख्याता गुणास्तस्या मनोरमाः॥९४॥
यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि । स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥९५॥

के सुन्दर अनेक वृक्षोंको देखो, ये बिल्कुल ही पास हैं। वायुके द्वारा इनकी शाखाएँ कँपायी जा रही है ॥८४॥ ये लताएँ श्रेष्ठ स्त्रियोंके समान वृक्षोंका अनुवर्तन कर रही हैं। इस वृक्षसे उस वृक्षपर, इस पर्वतसे उस पर्वतपर, इस वनसे उस वनमें अनेक रसोंके आस्वादनसे आनन्दित वायु बह रहा है। कई वृक्षोंमें पर्याप्त पुष्प लगे हुए हैं और वे बड़े ही सुगन्धित हैं। कई वृक्षोंमें केवल कोढ़ियाँ ही लगी हुई हैं, जिनसे वे वृक्ष हरे मालूम होते हैं। यह मधुर है, यह स्वादु है, यह विकसित है, इस प्रकार प्रेममत्त भ्रमर पुष्पोंमें लीन हो जाता है और शीघ्र ही वहाँसे निकल कर कहीं चला जाता है। मधुलोभी भ्रमर इस प्रकार पम्पा तीरके वृक्षों पर क्रीड़ा कर रहा है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इस भूमिको स्वयं गिरे हुए पुष्पोंने ढँक लिया है। जिससे यह सुखकारी शय्याके समान हो गयी है ॥ ८९ ॥ सौमित्रे, अनेक प्रकारके उन्हीं पुष्पोंके द्वारा पर्वत शिखरके पत्थर भी अनेक प्रकारके बना दिए गए हैं। कहीं लाल पुष्पोंसे लाल और पीले पुष्पोंसे पीले पत्थर बना दिए गए हैं ॥ ९० ॥ सौमित्रे, वसन्तमें वृक्षोंकी यह पुष्पसमृद्धि देखो, इस ऋतुमें परस्पर संघर्षसे कितने पुष्प उत्पन्न होते हैं ॥ ९१ ॥ ये पर्वत भ्रमरोंके झंकारसे मानो आपसमें एक दूसरेको बुला रहे हैं। इन वृक्षोंकी शाखाओंमें फूल लगे हुए हैं, जो टोपी के समान शोभते हैं ॥ ९२ ॥ यह कारण्डव पक्षी जलमें स्नान करके अपनी कान्ताके साथ विहार कर रहा है और मेरे कामको बढ़ा रहा है ॥ ९३ ॥ गंगाके समान इस पम्पासरोवरका भी रूप बड़ा ही मनोहर है। अतएव गंगाके गुणोंकी जगत्में जो इतनी प्रसिद्धि है, वह उचित ही है ॥ ९४ ॥ यदि साध्वी सीताके साथ मैं यहाँ निवास कर पाता तो, हे रघुश्रेष्ठ लक्ष्मण, न मैं इन्द्रके पदकी कामना करता और न अयोध्याके

न शोचं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह । रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥९६॥
अमी हि विविधैः पुष्पैस्तरवो विविधच्छदाः ।काननेऽस्मिन्विना कान्तां चिन्तामुत्पादयन्ति मे॥९७॥
पश्य शीतजलां चेमां सौमित्रे पुष्करायुताम् । चक्रवाकानुचरितां कारण्डवनिषेविताम् ॥९८॥
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संपूर्णां महामृगनिषेविताम् । अधिकं शोभते पम्पा विकूजद्भिर्विहंगमैः ॥९९॥
दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः । श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम् ।
पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगाम्॥१००॥
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् । व्यथयन्तीव मे चित्तं संचरन्तस्ततस्ततः ॥१०१॥
अस्मिन्सानुनि रम्ये हि मत्तद्विजगणाकुले । पश्येयं यदि तां कान्तां ततः स्वस्ति भवेन्मम ॥१०२॥
जीवेयं खलु सौमित्रे मया सह सुमध्यमा । सेवेत यदि वैदेही पम्पायाः पवनं शुभम् ॥१०३॥
पद्मसौगन्धिकवहं शिवं शोकविनाशनम् । धन्या लक्ष्मण सेवन्ते पम्पाया वनमारुतम् ॥१०४॥
श्यामा पद्मपलाशाक्षी प्रिया विरहिता मया । कथं धारयति प्राणान्विवशा जनकात्मजा ॥१०५॥
किं नु वक्ष्यामि धर्मज्ञं राजानं सत्यवादिनम् । जनकं पृष्टसीतं तं कुशलं जनसंसदि ॥१०६॥
या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् । सीता धर्मं समास्थाय क नु सा वर्तते प्रिया ॥१०७॥
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये । या मामनुगता राज्याद्भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥१०८॥

राज्य की ॥ ९५ ॥ इन रमणीय घासवाले मैदानोंमें सीताके साथ विहार करते समय न तो मुझे किसी बातकी चिन्ता होती है और न किसी बातकी इच्छा ही ॥ ९६ ॥ ये अनेक प्रकारके पत्तोंवाले वृक्ष, अनेक प्रकारके पुष्पोंके द्वारा इस वनमें सीताके विना मुझे चिन्तित बना देते हैं ॥ ९७ ॥ सौमित्रे, शीतल जलवाले इस पम्पा सरोवरको देखो । इसमें चारो ओर कमल खिले हुए हैं । चक्रवाक और कारण्डव इसके तीरको कभी नहीं छोड़ते । प्लव और क्रौंच यहाँ भरे रहते हैं । और भी अनेक प्रकारके पशु यहाँ रहते हैं । पक्षियोंके शब्दसे पम्पाकी शोभा और बढ़जाती है ॥ ९८,९९ ॥ ये सब प्रसन्न अनेकविध पक्षी चन्द्रमुखी कमल-नयनी प्रियतमा सीताका स्मरण कराके मेरा काम बढ़ाते हैं । पर्वत-शिखरपर मृगीके साथ विचरनेवाले मृगोंको देखो ॥ १०० ॥ मृगनेत्रा वैदेहीसे विरहित होनेपर इधर-उधर भ्रमण करनेवाले ये मृग मुझे व्यथित करते हैं ॥ १०१ ॥ इस रमणीय पर्वत-शिखरपर, जहाँ मतवाले पक्षी विचर रहे हैं, यदि मैं अपनी प्रिया सीताको देख पाता तो मेरी तृप्ति होती ॥ १०२ ॥ सौमित्रे, यदि सुन्दरी सीता मेरे साथ इस पम्पाकी मनोहर वायुका सेवन करती तो जीवन धारण कर सकता ॥ १०३ ॥ कमलकी गन्धके साथ बहनेवाली, थकावट दूर करनेवाली, पम्पाकी इस जंगली वायुका जो सेवन करते हैं वे धन्य हैं ॥ १०४ ॥ पद्मनेत्रा, प्रियतमा सीता मेरे विना अपने प्राणोंका धारण किस प्रकार करती होगी ? ॥ १०५ ॥ धर्मज्ञ, सत्यवादी राजा जनककी सभामें जब सीताके कुशल मुझसे पूछेंगे, तब मैं उनसे क्या कहूँगा ॥१०६॥ पिताके द्वारा वन भेजे जानेपर भी जिसने मुझ अभागेका त्याग नहीं किया, वह धर्मपालन करनेवाली सीता इस समय कहाँ होगी ? ॥ १०७ ॥ लक्ष्मण, उसके बिना मैं विचारा, प्राण कैसे धारण करूँ । जिसने

तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम् । अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥१०९॥
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् । वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥११०॥
प्राप्य दुःखं वने श्यामा मां मन्मथविकर्शितम् । नष्टदुःखेव हृष्टेव साध्वी साध्वभ्यभाषत ॥१११॥
किंनु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यांहिनृपात्मज।कसा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम्॥११२॥
गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् । नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥११३॥
इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् । उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥११४॥
संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम । नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥११५॥
स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने । अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते ॥११६॥
यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा । सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥११७॥
प्रवृत्तिर्लभ्यतां तावत्तस्य पापस्य रक्षसः । ततो हास्यति वा सीतां निधनं वा गमिष्यति ॥११८॥
यदि याति दितेर्गर्भं रावणः सह सीतया । तत्राप्येनं हनिष्यामि न चेद्दास्यति मैथिलीम् ॥११९॥

सदा हमारा साथ दिया, राज्य भ्रष्ट होनेकी व्याकुलताके समय भी जिसने साथ नहीं छोड़ा ॥१०८॥ सुन्दर कमलके समान आँखोंवाला, सुगन्धित, मनोहर, चिक्कन, उस सीताका मुख बिना देखे मेरी बुद्धि विकल हो रही है ॥ १०९ ॥ लक्ष्मण ! मैं वैदेहीका अतुलनीय हितकारी और मधुर वचन कब सुनूँगा, जिसमें कभी मुस्कुराहट और कभी हँसी होती है और जिसमें अनेक गुण रहते हैं ॥ ११० ॥ वनके दुःखोंसे दुःखित होनेपर भी यदि साध्वी सीता मुझे इस समय काम-पीड़ित दशामें देखती, तो उसके सब दुःख नष्ट हो जाते और प्रसन्नके समान वह मुझसे बातें करती अर्थात् मेरा दुःख घटानेके लिए बाहरी प्रसन्नता प्रकट करती ॥ १११ ॥ राजपुत्र लक्ष्मण ! अयोध्यामें कौशल्यासे मैं क्या कहूँगा, जब कि मनस्विनी कौशल्या मुझसे पूछेगी कि वह मेरी पतोहू कहाँ है ॥ ११२ ॥ लक्ष्मण ! तुम जाओ और भ्रातृ-प्रेमी भरतको देखो। सीताके बिना जीनेकी शक्ति मुझमें नहीं हैं ॥ ११३ ॥ महात्मा राम इस प्रकार अनाथके समान विलाप कर रहे हैं, यह देखकर भाई लक्ष्मण उचित और विकार-रहित वचन बोले ॥ ११४ ॥ पुरुषोत्तम राम, शोक न कीजिए अपनेको सम्भालिए। आपके समान पुण्यात्माओंकी इच्छा निष्फल नहीं होती ॥ ११५ ॥ संयोगमें वियोग है और वियोग दुःखदायी है—यह समझकर प्रियजन-विषयक स्नेह का त्याग कीजिए। अर्थात् उसे मात्रासे अधिक न बढ़ने दीजिए, क्योंकि अधिक स्नेहके कारण गीली बत्ती भी जल जाती है। (स्नेहका अर्थ तेल भी समझना चाहिए) ॥ ११६ ॥ यदि पातालमें अथवा उससे भी अधिक दूर कहीं रावण रहता हो तो भाई, अब वह जी न सकेगा, यह निश्चित है ॥ ११७ ॥ उस पापी राक्षसका पहले पता लगाना चाहिए, तब या तो वह सीताको ही देगा या प्राण त्याग करेगा ॥ ११८ ॥ यदि रावण सीताके साथ अपनी माता दितिके गर्भमें पुनः प्रवेश करे, तो मैं वहाँ भी उसे अवश्य ही मारूँगा, यदि वह सीताको न लौटा देगा ॥ ११९ ॥

स्वास्थ्यं भद्र भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः। अर्थो हि नष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते ॥१२०॥
उत्साहो वलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं वलम्। सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥१२१॥
उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु। उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम्॥१२२॥
त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः। महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नाववुध्यसे ॥१२३॥
एवं संवोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः। त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥१२४॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः। रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥१२५॥

निरीक्षमाणःसहसा महात्मा सर्ववनं निर्झरकंदरं च।
उद्विग्नचेताःसहलक्ष्मणेन विचार्य दुःखोपहतःप्रतस्थे ॥१२६॥
तंमत्तमातङ्गविलासगामी गच्छन्तमव्यग्रमनामहात्म।
सलक्ष्मणो राघवमिष्टचेष्टो ररक्ष धर्मेण वलेन चैव ॥१२७॥
तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी वितत्रसे नैवविचष्ट चेष्टम्॥१२८॥
स तौ महात्मागजमन्दगामी शाखामृगस्तत्र चरंश्चरन्तौ।
दृष्ट्वा विषादं परमं जगाम चिन्तापरीतो भयभारभग्नः ॥१२९॥

आर्य, आप स्वस्थ हो जाँय, धैर्य धारण करें। इस कायरताका त्याग करें। आप उद्योग करें, क्योंकि उद्योगके अभावमें अर्थसिद्धि नहीं होती। जिनके उद्योग और धन नष्ट हो जाते हैं, वे अपने नष्ट धन को पुनः नहीं पा सकते ॥ १२० ॥ आर्य! उत्साहमें वड़ा वल है। उत्साहसे अधिक कोई वल नहीं है। जो लोग उत्साही हैं, उनके लिए संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १२१ ॥ उत्साही पुरुष दुष्कर कामोंमें भी घवड़ाते नहीं। उत्साहकी ही सहायतासे हमलोग जानकीको पा सकेंगे ॥ १२२ ॥ आप इस कामपरतन्त्रताका त्याग करें। शोक भूल जाँय। आप अपने शिक्षित और धीर मनको इस समयमें भूल गये हैं ॥ १२३ ॥ लक्ष्मणके इस प्रकार समझानेपर रामचन्द्रने शोकके कारण उत्पन्न अपने चित्तकी विकलता दूर की। मोहको उन्होंने हटाया और धैर्य धारण किया ॥ १२४ ॥ अचिन्त्यपराक्रम रामचन्द्र विकलताका त्यागकर उस पम्पासे आगे बढ़े, जहाँके वृक्ष वायुसे हटा दिए गए थे, अतएव जहाँकी शोभा अधिक बढ़ गयी थी ॥ १२५ ॥ उद्विग्नचित्त और दुःखी महात्मा राम विचार कर, अर्थात् सीताको ढूँढ़ना चाहिए यह समझकर, समस्त वन, निर्झर, कन्दरा आदिको देखते हुए चले ॥ १२६ ॥ जाते हुए उन रामको, मतवाले हाथीके समान सुन्दर चलनेवाले, धर्मात्मा और वलवान तथा अपने इष्ट रामचन्द्रके लिए सब प्रकारका उद्योग करनेवाले लक्ष्मणने सम्भाला ॥ १२७ ॥ ऋष्यमूक पर्वतके समीप भ्रमण करनेवाले, अतुलनीय सुन्दर इन राम और लक्ष्मणको वानरोंके अधिपति सुग्रीवने देखा। वह डर गया, अतएव वह इनके प्रति कोई अपना कर्तव्य निश्चित न कर सका ॥ १२८ ॥ हाथीके समान मन्द गमन करनेवाले इनको देखकर वानरोंका स्वामी वहुत दुखी हुआ। वह चिन्तित हो गया और उसका उत्साह

तमाश्रमं पुण्यसुखं शरण्यं सदैव शाखामृगसेवितान्तम् ।
त्रस्ताश्च दृष्ट्वा हरयो विजग्मुर्महौजसौ राघवलक्ष्मणौ तौ ॥१३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्किताऽभवत् ॥ १ ॥
उद्विग्नहृदयः सर्वा दिशः समवलोकयन् । न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुंगवः ॥ २ ॥
नैव चक्रे मनः स्थातुं वीक्ष्यमाणौ महाबलौ । कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवससाद ह ॥ ३ ॥
चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरुलाघवम् । सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैस्तैर्वानरैः सह ॥ ४ ॥
ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः । शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥
एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् । छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥ ६ ॥
ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ । जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
ते क्षिप्रमभिगम्याथ यूथपा यूथपर्षभम् । हरयो वानरश्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥

जाता रहा ॥ १२९ ॥ वह मतंगका आश्रम पवित्र और सुखकारी था । मुनियोंको शरण देनेवाला था, और सदासे वहाँ वानर रहते चले आये थे । पराक्रमी रामलक्ष्मणको देखकर अन्य वानर भी भयभीत होकर आश्रममें गये ॥ १३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ।



विशाल शरीर उन दोनों भाई राम और लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव घबड़ा गया, क्योंकि वे वीरके समान मालूम होते थे और श्रेष्ठ अस्त्र धारण किये हुए थे ॥ १ ॥ उसका हृदय उद्विग्न हो गया । वह चारो दिशाओंको देखने लगा । कहीं एक स्थानपर वह स्थिर न रह सका ॥ २ ॥ महाबली राम और लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव निश्चिन्त होकर एक स्थानपर बैठ न सका, क्योंकि वह बहुत ही डर गया था, और उसका चित्त बहुत ही दुःखित हो गया था ॥ ३ ॥ धर्मात्मा सुग्रीवने अपने मन्त्रियोंके साथ हानि-लाभका विचार किया । इसी आश्रममें रहना चाहिए या यहाँसे भाग जाना चाहिए । क्या करनेसे लाभ होगा और क्या करनेसे हानि आदि बातोंका विचार करके उन समस्त वानरोंके साथ वह बहुत ही चिन्तित हुआ ॥४॥ वानराधिपति सुग्रीवने अपने सचिवोंसे बड़े उद्वेगके साथ कहा ॥ ५ ॥ निश्चय ये दोनों बालिके भेजनेसे इस दुर्गम वनमें आये हैं । छलसे अपनेको छिपानेके लिए इन लोगोंने यह मुनिवेष धारण किया है ॥ ६ ॥ तदनन्तर, इन परम धनुर्धारी वीरोंको देखकर सुग्रीवके सचिव उस पर्वतसे दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये ॥ ७ ॥ वे सब वानर सचिव वहाँसे शीघ्र ही जाकर वानराधिपति सुग्रीवको चारो ओरसे घेरकर बैठ गए ॥ ८ ॥ वे सभी वानर भयभीत

एवमेकायनगताः प्लवमाना गिरेर्गिरिम् । प्रकम्पयन्तो वेगेन गिरीणां शिखराणि च ॥ ९ ॥
ततः शाखामृगाः सर्वे प्लवमाना महाबलाः । बभञ्जुश्च नगांस्तत्र पुष्पितान्दुर्गमाश्रितान् ॥१०॥
आप्लवन्तो हरिवराः सर्वतस्तं महागिरिम् । मृगमार्जारशार्दूलाँस्त्रासयन्तो ययुस्तदा ॥११॥
ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रे समाहिताः । संगम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिता ॥१२॥
ततस्तु भयसंत्रस्तं वालिकिल्बिषशङ्कितम् । उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥१३॥
संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् । मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥१४॥
यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं विद्रुतो हरिपुङ्गव । तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम् ॥१५॥
यस्मात्तव भयं सौम्य पूर्वजात्पापकर्मणः । स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥१६॥
अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम । लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ॥१७॥
बुद्धिविज्ञानसंपन्न इङ्गितैः सर्वमाचर । नह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥१८॥
सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः । ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥१९॥
दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ । कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥२०॥
वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ । राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥२१॥

हो गये थे । अतएव सभी एक साथ इस पर्वतसे उस पर्वतपर भाग रहे थे । उनके वेगसे पर्वतोंके शिखर काँपने लगे ॥ ९ ॥ वे महाबली वानर कूदते हुए वृक्षोंको तोड़ने लगे, जो पुष्पित थे और दुर्गम स्थानमें थे ॥ १० ॥ उस महान पर्वतके चारो ओर फैल गये । मृग, मार्जार और शार्दूलको भयभीत करते हुए वे सुग्रीवके समीप गये ॥ ११ ॥ सुग्रीवके सभी सचिव उनके समीप पहुँचकर और एकाग्रचित्त होकर उनके सामने हाथ जोड़कर बैठे ॥ १२ ॥ अनन्तर वालिके कुचक्रसे शंकित और डरे हुए सुग्रीवसे बोलनेमें चतुर हनुमान बोले ॥ १३ ॥ वालिके द्वारा अनिष्टकी आशंका आप सब लोग छोड़ दें । यह मलय पर्वत है । यहाँ वालिका भय नहीं है ॥ १४ ॥ जिससे तुम भगे थे और भयभीत हो गये थे । सौम्य, उस क्रूर कर्म करनेवाले क्रूर वालिको मैं यहाँ नहीं देखता ॥ १५ ॥ सौम्य, पापी अपने बड़े भाईके कारण तुम्हें भय है; वह दुष्ट वालि यहाँ नहीं आ सकता । अतएव तुम्हें भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है ॥ १६ ॥ पर आश्चर्यकी बात यह है कि अज्ञानके कारण तुम बुद्धिपूर्वक विचार नहीं कर रहे हो, इस कारण तुम्हारा वानर होना सिद्ध हो रहा है । अर्थात् डरनेके कारण न होनेपर भी तुम डर रहे हो ॥ १७ ॥ बुद्धि विज्ञानसे युक्त होकर तुमको दूसरोंकी चेष्टाओंसे उनका भाव समझकर अपनी रक्षाका उपाय करना चाहिए । जो राजा बुद्धिका त्याग कर देता है, वह अपनी प्रजाका शासन नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ सुग्रीवने हनुमानके सब सुन्दर वचन सुने । अनन्तर वे हनुमानसे और अधिक सुन्दर वचन बोले, ॥ १९ ॥ दीर्घबाहु, विशालाक्ष, धनुषबाण धारण करनेवाले, देवपुत्रोंके समान इन दोनोंको देखकर किसको भय उत्पन्न न होगा ॥ २० ॥ इन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंको वालिने ही भेजा है, ऐसा मुझे सन्देह होरहा है; क्योंकि राजाओंके अनेक मित्र होते हैं । अतएव राजकार्यके

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः। विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥२२॥
कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः। भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥२३॥
तौ त्वया प्राकृतेनैव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम। इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥२४॥
लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि। विश्वासयन्प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः ॥२५॥
ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव। प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ ॥२६॥
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम। व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टताऽनयोः ॥२७॥
इत्येवं कपिराजेन संदिष्टो मारुतात्मजः। चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥

तथेति संपूज्य वचस्तु तस्य कपिः सुभीतस्य दुरासदस्य।
महानुभावो हनुमान्ययौ तदा स यत्र रामोऽतिबली सलक्ष्मणः॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥ २॥



विषयमें विश्वास करना उचित नहीं ॥ २१ ॥ छिपकर विचरण करनेवाले शत्रुओंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि वे विश्वास उत्पन्न कराकर मौका पाते ही प्रहार करते हैं ॥ २२ ॥ राजा लोग अनेक उपायोंको जानते हैं। अतएव शत्रुओंका नाश करते हैं। हम लोगोंको चाहिए कि उन राजाओंसे बहुत सावधान रहें। वालि भी बड़ा बुद्धिमान है। बड़ी योग्यतासे काम करता है। अतएव हम लोगोंको उससे सावधान रहनेकी आवश्यकता है ॥ २३ ॥ अतएव हे वानर, साधारण वेषसे जाकर तुम्हें उनका पता लगाना चाहिए। इशारोंके द्वारा रूप तथा बोलनेके तरीकोंसे उनका पता लगाना चाहिए ॥ २४ ॥ उन लोगोंका अभिप्राय जानो। यदि वे तुमपर प्रसन्न मालूम पड़ें, तो मेरी प्रशंसाके द्वारा अपने लोगोंके प्रति उनका विश्वास उत्पन्न कराओ। इसके लिए इशारेसे भी काम लो ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान, तुम मेरे ही सामने खड़े होकर उन धनुर्धारी वीरोंसे इस वनमें प्रवेश करनेका कारण पूछो ॥ २६ ॥ यदि तुम इन दोनोंको शुद्ध समझो, तब फिर भी वचनों और रूपोंके द्वारा इनके भीतरी भावोंको जाननेका प्रयत्न करो। जानो कि ये किसी दुष्टतासे तो यहाँ नहीं आये हैं ॥ २७ ॥ वानराधिपति सुग्रीवका यह सन्देश लेकर वायुपुत्र हनुमानने रामलक्ष्मणके पास जानेका निश्चय किया ॥ २८ ॥ डरे हुए सुग्रीवका वचन मानकर महानुभाव हनुमान वहाँ गये, जहाँ लक्ष्मणके साथ महाबली रामचन्द्र थे ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त।



तृतीयः सर्गः ३

वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः । पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥ १ ॥
कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः । भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥ २ ॥
ततश्च हनुमान्वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥ ३ ॥
आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च । संपूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान्वानरोत्तमः ॥ ४ ॥
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ । राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ॥ ५ ॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ । त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः ॥ ६ ॥
पम्पातीररुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौ समन्ततः । इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ॥ ७ ॥
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ । निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः ॥ ८ ॥
सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ । शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुनाशनौ ॥ ९ ॥
श्रीमन्तौ रूपसंपन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ । हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ॥१०॥
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः । राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥११॥
पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ । अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥१२॥

महात्मा सुग्रीवके वचन मानकर हनुमान ऋष्यमूक पर्वतसे जहाँ राम और लक्ष्मण थे, वहाँके लिए चले ॥ १ ॥ वायुपुत्र हनुमानने वानर रूपका त्याग करके भिक्षुरूप धारण किया; क्योंकि वानररूप बातचीत करनेके उपयोगी नहीं होता । उनपर विश्वास नहीं किया जाता ॥ २ ॥ तदनन्तर राम और लक्ष्मणके समीप नम्रतापूर्वक जाकर हनुमानने प्रणाम किया और सुन्दर शब्दोंवाले वचन बोले—वानरश्रेष्ठ हनुमानने उन वीरोंकी विधिवत् पूजाकर प्रशंसा की ॥ ३,४ ॥ अनन्तर वे सत्य-पराक्रम राजर्षि और देवताके समान उन दोनों तपस्वियोंसे अपनी इच्छापूर्वक बोले, अर्थात् सुग्रीवके कहनेके अनुसार नहीं ॥ ५ ॥ आप महानुभावोंने इस प्रदेशमें क्यों आगमन किया है ? आप लोगोंके आनेसे यहाँके पशु तथा अन्य वनचारी भयभीत होगये हैं ॥ ६ ॥ पम्पातीरके वृक्षोंको देखते हुए तथा स्वच्छसलिला इस नदीको देखते हुए, आप लोगोंने यहाँ पदार्पण किया है ॥ ७ ॥ धीर, सुवर्णके समान शरीरवाले और चीरवस्त्र धारण करनेवाले आप लोग कौन हैं ? सुन्दर भुजावाले, आप दोनोंका निश्वास देखकर यह प्रजा दुःखित होरही है । अर्थात् आपके दुःखसे वह भी दुःखित हो रही है ॥ ८ ॥ सिंहके समान देखनेवाले महाबली और पराक्रमी आप दोनों इन्द्रके धनुषके समान धनुष धारण करके इस देशमें क्यों आये हैं ? आप श्रीमान् हैं, सुन्दर हैं । वृषभके समान पराक्रमी हैं । आपके हाथ हाथीकी सूंडके समान हैं । आप दोनों नरश्रेष्ठ बुद्धिमान् हैं । आपकी प्रभासे यह पर्वत जगमगा गया है । आप दोनों देवताके समान हैं और राज्यके अधिकारी हैं । आप लोग इस देशमें क्यों आये ? ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ आप दोनों वीर, जटा धारण करनेवाले हैं कमल-पत्रके समान आपकी आँखें हैं । आप दोनोंके आकार समान हैं । क्या आपलोग देवलोकसे आये हैं ? ॥ १२ ॥

यदृच्छयेव संप्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुंधराम् । विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ॥१३॥
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ । आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः ॥१४॥
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः । उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥१५॥
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम् । इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ॥१६॥
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते । संपूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः ॥१७॥
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः । महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषणौ ॥१८॥
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव । एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वै नाभिभाषतः ॥१९॥
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुङ्गवः । वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः ॥२०॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना । राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥२१॥
युवाभ्यां सहि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति। तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥२२॥
भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकारणात् । ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा तु हनुमांस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ । वाक्यज्ञो वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचन ॥२४॥

क्या अकस्मात् चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वीपर तो नहीं उतर आये, या चौड़ी छातीवाले मनुष्य-रूपधारी आप कोई देवता हैं ॥ १३ ॥ आपके कन्धे सिंहके समान हैं। मस्त साँड़के समान आप उत्साहित मालूम होते हैं। आपकी बाहु परिघके समान गोली और लम्बी हैं ॥ १४ ॥ आपलोग सब भूषणोंके धारण करने योग्य हैं, फिर आप लोगोंने भूषण क्यों नहीं धारण किये ? मैं तो आप दोनोंको इस समस्त पृथिवीकी रक्षा करनेके योग्य समझता हूँ ॥ १५ ॥ सागर, वन विंध्य, मेरु आदि पर्वतोंसे युक्त, समस्त पृथिवीकी रक्षा आप लोग कर सकते हैं। आप दोनोंके धनुष चित्रोंसे युक्त हैं। बड़े चिकने तथा सुवर्ण आदि धातुओंके चित्र उनपर बनाये गये हैं ॥ १६ ॥ वे दोनों सुवर्ण-मण्डित इन्द्रके वज्रके समान शोभित होते हैं। तीखे बाणोंसे आपके तूणीर भरे हुए बड़े सुन्दर मालूम होते हैं ॥ १७ ॥ ये प्राण लेनेवाले भयानक बाण सर्पके समान भयानक और प्रकाशमान हैं। विशाल, मोटी और तपे सोनेसे भूषित ये आप दोनोंकी तलवारें, केंचुल छोड़े सर्पके समान शोभित हो रही हैं। मैं आप लोगोंसे इस प्रकार बातें करता हूँ, आप लोग क्यों नहीं बोलते ॥ १८ ॥ १९ ॥ वानरोंके अधिपति धर्मात्मा सुग्रीव हैं। भाईके द्वारा निकाले जाकर वे दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं ॥ २० ॥ वानरोंके राजा उन्हीं महात्मा सुग्रीवके भेजनेसे मैं आपके समीप आया हूँ। मैं हनुमान नामक वानर हूँ ॥ २१ ॥ धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंसे मैत्री करना चाहते हैं। मैं उनका सचिव हूँ और वायुका पुत्र हूँ ॥ २२ ॥ सुग्रीवके कार्य सिद्ध करनेके लिए भिक्षुका रूप धारण करके अपनेको मैंने छिपा लिया है। मैं ऋष्यमूकसे यहाँ आया हूँ। मैं इच्छानुसार रूप धारण कर सकता हूँ और इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ जा सकता हूँ ॥ २३ ॥ उन दोनों वीरों राम और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहकर वाक्य समझनेवाले तथा बोलनेमें चतुर हनुमान चुप हो गये। उन्होंने

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रहृष्टवदनः श्रीमान्भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥२५॥
सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् । वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा । अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् । उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥३१॥
संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥३३॥
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु । सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥३४॥
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः । तस्यसिद्ध्यन्तिसर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥३५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् । अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥३६॥
विदिता नौ गुणा विद्वन्सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥३७॥

और कुछ नहीं कहा ॥ २४ ॥ उनके ये वचन सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् रामचन्द्र बगलमें बैठे भाई लक्ष्मणसे बोले ॥ २५ ॥ वानराधिपति महात्मा सुग्रीवके ये सचिव हैं और उन्हींकी इच्छासे ये हमारे पास आये हैं ॥ २६ ॥ सौमित्रे, सुग्रीवसचिव इन वानरसे तुम बातें करो । ये वचन समझने वाले हैं, शत्रुदमन करनेवाले हैं, तुम स्नेहपूर्वक इनसे मीठे वचनोंसे बातें करो ॥ २७ ॥ जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं, जिसे यजुर्वेदका ज्ञान नहीं और जो सामवेदका विद्वान् नहीं, वह ऐसी बातें नहीं कर सकता ॥ २८ ॥ निश्चय इन्होंने समस्त व्याकरण कई बार सुने हैं, क्योंकि बहुत बोलनेपर भी इन्होंने कोई गलती नहीं की है ॥ २९ ॥ मुँह, आँखें, ललाट, भौंह तथा अन्य अंगोंसे बोलनेके समय इनका कोई दोष प्रकट नहीं हुआ है ॥ ३० ॥ इन्होंने जो कुछ कहा है, संक्षेपमें कहा है । इनकी ऐसी कोई बात नहीं हुई है जिसमें सन्देह हो । रुक-रुक कर तथा शब्दोंको तोड़-मरोड़कर इन्होंने उच्चारण नहीं किया है । न तो बहुत ऊँचे और न बहुत नीचे, किन्तु मध्यम स्वरमें इन्होंने अपना अभिप्राय प्रकाशित किया है ॥ ३१ ॥ संस्कार तथा उच्चारणकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार किया हुआ वचन हृदयको प्रसन्न करता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सुन्दर वचन बोलनेवाले शुद्ध और उचित प्रकारसे बोलनेवालेके वचनसे किसका मन प्रसन्न नहीं होता । वध करनेके लिए जिसने तलवार उठाई हो, वैसा शत्रुभी ऐसे वचनोंसे प्रसन्न हो जाता है ॥ ३३ ॥ जिस राजाके ऐसा दूत न हो, उसके कार्य कैसे सिद्ध हो सकते हैं ॥ ३४ ॥ ऐसे गुणोंसे युक्त कार्य सिद्ध करनेवाले दूत जिस राजाके पास हों, उस राजाके कार्य दूतके वचनसे ही सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर, सुग्रीवके सचिव वचन समझनेवाले पवन-पुत्र हनुमानसे बोलनेमें चतुर लक्ष्मण बोले, ॥३६॥ विद्वन्, महात्मा सुग्रीवके गुण हम लोगोंको मालूम हैं । हम लोग भी वानराधिपति सुग्रीवको ही

यथा ब्रवीषि हनुमन्सुग्रीववचनादिह। तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥३८॥
तत्तस्य वाक्यं निपुणं निशम्य प्रहृष्टरूपः पवनात्मजः कपिः।
मनः समाधाय जयोपपत्तौ सख्यं तदा कर्तुमियेष ताभ्याम् ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

इतः प्रहृष्टो हनुमान्कृत्यवानिति तद्वचः। श्रुत्वा मधुरभावं च सुग्रीवं मनसा गतः ॥ १ ॥
भाव्यो राज्यागमस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः। यदयं कृत्यवान्प्राप्तः कृत्यं चैतदुपागतम् ॥ २ ॥
ततः परमसंहृष्टो हनूमान्प्लवगोत्तमः। प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम् ॥ ३ ॥
किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम्। आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः। आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥ ५ ॥
राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः। चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ॥ ६ ॥
न द्वेष्टा विद्यते तस्य स तु द्वेष्टि न कंचन। स तु सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ॥ ७ ॥

ढूंढ रहे हैं ॥ ३७ ॥ हनुमन, सुग्रीवके कहनेसे जैसा तुमने कहा है, अर्थात् सुग्रीव हम लोगोंसे मैत्री करना चाहते हैं, हम लोग भी तुम्हारे कहनेसे वैसा करना चाहते हैं ॥३८॥ लक्ष्मणके ये वचन सुनकर वायु-पुत्र हनुमान बहुत प्रसन्न हुए। सुग्रीवकी जय-सिद्धिका विश्वास करके उन्होंने उन दोनोंसे मैत्री करानेका निश्चय किया ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त।

उनके मधुर वचन सुनकर हनुमान यह जानकर प्रसन्न हुए कि रामचन्द्रका भी कोई काम ऐसा है जिसके लिए सुग्रीवकी सहायता इन्हें अपेक्षित है। यह जानकर हनुमान मन ही मन सुग्रीवके पास पहुँचे ॥ १ ॥ महात्मा सुग्रीवको अवश्य ही राज्यकी प्राप्ति होगी, क्योंकि ये रामचन्द्र अपने किसी कामके लिए यहां आये हैं और इनका वह काम सुग्रीवके अधीन है ॥ २ ॥ परम प्रसन्न वानरश्रेष्ठ हनुमान, बोलनेमें चतुर रामचन्द्रसे पुनः बोले, ॥ ३ ॥ पम्पाके जंगलवाले इस भयानक वनमें भाईके साथ आप क्यों आये हैं? यह वन बड़ा ही दुर्गम है और हिंस्र जन्तुओंसे परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ हनुमानके वचन सुनकर और रामचन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर लक्ष्मणने महात्मा रामचन्द्रकी बातें इस प्रकार कहीं ॥ ५ ॥ राजा दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका स्वधर्मके अनुसार पालन किया है ॥ ६ ॥ उनका कोई शत्रु नहीं है और न वे ही किसीसे शत्रुता रखते हैं। वे प्राणियोंमें पितामहके समान श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ अग्निष्टोम आदि

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ ८ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः । ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः ॥ ९ ॥
राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसंपदा । राज्याद्भ्रष्टो मया वस्तुं वने सार्धमिहागतः ॥१०॥
भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी । दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥११॥
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः । कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥१२॥
सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः । ऐश्वर्येण विहीनस्य वनवासे रतस्य च ॥१३॥
रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा । तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य वा हृता ॥१४॥
दनुर्नाम दितेः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः । आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः ॥१५॥
स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् । एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो दिवं गतः ॥१६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः । अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥१७॥
एष दत्त्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः । लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥१८॥
सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः । तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१९॥
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा । गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं ततः ॥२०॥

यज्ञ उन्होंने किये और खूब दक्षिणा दी । उन्हींके पुत्र ये हैं और इनका नाम राम है ॥ ८ ॥ सब प्राणियोंको शरण देनेवाले, सब पुत्रोंमें गुणी, और पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले ये राजा दशरथके प्रथम पुत्र हैं । ॥ ९ ॥ राज्य-लक्षणोंसे युक्त, राज्य-सम्पत्तिसे युक्त, ये राज्य न मिलनेके कारण मेरे साथ यहां वनमें रहनेके लिए आये ॥१०॥ सीता नामकी स्त्री भी इनके साथ आयी, जिस प्रकार अस्तके समय प्रभा सूर्यका अनुगमन करती है ॥११॥ मैं इनका छोटा भाई हूँ । इनकी कृतज्ञता, बहुज्ञता और गुणोंके कारण मैं इनका दास हूँ । मेरा नाम लक्ष्मण है ॥१२॥ सब सुख पानेके अधिकारी, सबसे पूजा पानेके योग्य और सब प्राणियोंके हित चाहनेवाले रामचन्द्र निर्धन हो गये और वनमें रहने लगे ! ॥१३॥ इनके न रहनेपर कामरूपधारी राक्षसने इनकी स्त्रीका हरण किया है । इस स्त्री हरण करनेवाले राक्षसका पता हम लोगोंको नहीं मिलता ॥१४॥ दितिका पुत्र दनु था, जो शापसे राक्षस हो गया था । उसने कहा है कि वानराधिपति सुग्रीव समर्थ हैं ॥१५॥ महाबली सुग्रीव ही तुम्हारी भार्याके हरण करनेवालेको जान सकेंगे, ऐसा कहकर प्रकाशमान दनु स्वर्ग चला गया ॥१६॥ तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ जैसी बात थी, वह मैंने कह दी । मैं और रामचन्द्र दोनों सुग्रीवकी शरण आये हैं ॥१७॥ इन रामचन्द्रने बहुत सा धन दान किया है । उत्तम यश प्राप्त किया है । लोकस्वामी हो चुके हैं । वे ही रामचन्द्र आज दैवगतिसे सुग्रीवकी शरण जाना चाहते हैं ॥ १८ ॥ सीता जिसकी पतोहू थी, जो शरणागतोंकी रक्षा करते थे और धर्मप्रेमी थे, उन्हींके पुत्र सुग्रीवके शरण आये हैं ॥ १९ ॥ धर्मात्मा, सब लोगोंको शरण देनेवाले, मेरे बड़े भाई रामचन्द्र आज सुग्रीवकी शरण आये है ॥ २० ॥ जिसकी प्रसन्नतासे यह समस्त प्रजा प्रसन्न रहती

यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः। स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥२१॥
येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः। मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥२२॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥२३॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते। कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥२४॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम्। हनूमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥२५॥
ईदृशा बुद्धिसंपन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः। द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥२६॥
स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना। हृतदारो वने त्रस्तो भ्राता विनिकृतो भृशम् ॥२७॥
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः। सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा। बभाषे साधु गच्छामः सुग्रीवमिति राघवम् ॥२९॥
एवं ब्रुवन्तं धर्मात्मा हनूमन्तं स लक्ष्मणः। प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम् ॥३०॥
कपिः कथयते हृष्टो यथायं मारुतात्मजः। कृत्यवान्सोऽपि संप्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव ॥३२॥
ततः स सुमहाप्रज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः। जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥३३॥
भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः। पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः ॥३४॥

थी, आज वही रामचन्द्र वानराधिपतिकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २१ ॥ जिन राजा दशरथने सब श्रेष्ठ राजाओंको अपना सेवक बनाया और उनका जिन्होंने सदा सम्मान किया, उन्हींके त्रिलोक-विश्रुत ज्येष्ठ पुत्र, ये रामचन्द्र वानराधिपति सुग्रीवकी शरण आये हैं ॥ २२,२३ ॥ शोकको वशमें रखने वाले रामचन्द्र आज शोकसे पीड़ित हैं, शरणमें आए हुए हैं। सचिवोंके साथ सुग्रीवको इनपर प्रसन्न होना चाहिए ॥२४॥ इस प्रकार दयनीय तथा अश्रुपात पूर्वक लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर वाक्य-चतुर हनुमान इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, क्रोध और इन्द्रियोंको अधीनमें रखनेवालेका दर्शन सुग्रीवको अभीष्ट था। प्रसन्नताकी बात है कि वे स्वयं उपस्थित हो गये ॥ २६ ॥ सुग्रीव भी राज्यसे हटा दिया गया है और वालिके साथ उसकी शत्रुता है। उसकी स्त्री हर ली गयी है और भाईके भयसे वह इधर-उधर भटकता फिरता है ॥ २७ ॥ सूर्यपुत्र सुग्रीव हम लोगोंके साथ सीताका पता लगानेमें अवश्य ही आपकी सहायता करेंगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार मधुर वचनके द्वारा अपना अभिप्राय प्रकट कर हनुमानने रामचन्द्रसे कहा कि अच्छा अब हमलोग सुग्रीवके पास चलें ॥२९॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर विधिपूर्वक लक्ष्मणने उनका अभिनन्दन किया और वे रामचन्द्रसे इस प्रकार बोले ॥३०॥ वायुपुत्र यह वानर प्रसन्न होकर जैसा कह रहा है उससे मालूम होता है कि सुग्रीवको भी आपकी सहायता अपेक्षित है। अतएव अब आपका कार्य सिद्ध होगा ॥३१॥ प्रसन्न होकर तथा साफ-साफ हनुमान ये बातें कह रहा है। अवश्य ही वायुपुत्र वीर हनुमान झूठ न बोलेगा ॥ ३२ ॥ महा बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान वीर दोनों राघवोंको लेकर सुग्रीवके पास गए ॥ ३३ ॥ भिक्षुरूपका त्याग कर और वानररूप धारण करके कपिश्रेष्ठ हनुमान उन दोनोंको पीठ-

स तु विपुलयशाः कपिप्रवीरः पवनसुतः कृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ।
गिरिवरमुरुविक्रमः प्रयातः स शुभमतिः सह रामलक्ष्मणाभ्याम् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



पञ्चमः सर्गः ५

ऋष्यमूकात्तु हनुमान्गत्वा तं मलयं गिरिम् । आचचक्षे तदा वीरो कपिराजाय राघवौ ॥ १ ॥
अयं रामो महाप्राज्ञ संप्राप्तो दृढविक्रमः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः । धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः ॥ ३ ॥
राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः । दक्षिणाश्च तथोत्सृष्टा गावः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा तेन पालिता । स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः ॥ ५ ॥
तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः । रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः ॥ ६ ॥
भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ ७ ॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः । दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥ ८ ॥

पर लेकर चले ॥ ३४ ॥ महायशस्वी कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान कार्य सिद्ध होनेके समान प्रसन्न हुए । सुन्दर बुद्धिवाले परम पराक्रमी वे ऋष्यमूक पर्वतपर गए ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ।



ऋष्यमूक पर्वतपर रामचन्द्र और लक्ष्मणको रखकर हनुमान मलयपर्वतपर सुग्रीवके पास गये और उनको रामलक्ष्मणका परिचय उन्होंने दिया ॥१॥ हे महाप्राज्ञ सुग्रीव ! भाई लक्ष्मणके साथ ये रामचन्द्र आए हैं । ये अजेय हैं और सत्य पालनके लिए वनमें आए हुए हैं ॥ २ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं । पिताकी प्रेरणासे धर्मपालन करनेके लिए ये वनमें आए हैं । ये पिताके आज्ञापालक हैं ॥ ३ ॥ राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा जिसने अग्निको प्रसन्न किया है, सैकड़ों हजारों गौ जिसने दक्षिणामें दी हैं, सावधानी और सत्यतापूर्वक जिसने पृथिवीका पालन किया है, उन्हींके पुत्र रामचन्द्र स्त्रीके कारण वनमें आए हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ महात्मा रामचन्द्र संयत होकर स्त्रीके साथ वनमें रहते थे । रावणने उनकी स्त्री हर ली । वे तुम्हारी शरण आए हैं ॥ ६ ॥ आपसे मैत्री करनेके लिए राम और लक्ष्मण दोनों भाई आए हैं । पास चलकर इनकी पूजा करो, क्योंकि ये दोनों ही पूजनीय हैं ॥ ७ ॥ हनुमानके वचन सुनकर वानराधिपति सुग्रीवने रामचन्द्रके द्वारा उत्पन्न भयका त्याग किया और उसकी शंका जाती रही । मनुष्यका रूप उसने धारण किया और बड़ा ही सुन्दर होकर रामचन्द्रके पास जाकर प्रेमपूर्वक बोला ॥ ८ ॥

भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः । आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥ ९ ॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो । यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥१०॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः । गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा वध्यतां ध्रुवा ॥११॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । संप्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥१२॥
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम् । ततो हनूमान्संत्यज्य भिक्षुरूपमरिंदमः ॥१३॥
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम् । दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ॥१४॥
तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधौ सुसमाहितः । ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ॥१५॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ । ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ॥१६॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः । त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ॥१७॥
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् । ततः सुपर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम्॥१८॥
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद स राघवः । लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ॥१९॥
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम् । ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥२०॥
प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः । अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः ॥२१॥
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमेतदुपाश्रितः । सोऽहं त्रस्तो वने भीतो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः॥२२॥

आपने धर्मकी शिक्षा पायी है। आप तपस्वी और सर्वप्रिय हैं। हनुमानने आपके सब गुण मुझे बतलाए हैं ॥ ९ ॥ मुझ वानरसे आप जो मैत्री करना चाहते हैं वही मेरा सत्कार है और श्रेष्ठ लाभ है ॥ १० ॥ यदि मुझसे मैत्री चाहते हों तो यह मेरा हाथ फैला हुआ है। आप अपने हाथसे इसे पकड़ लें, जिससे कभी न टूटनेवाली मैत्री हो जाय ॥ ११ ॥ सुग्रीवका यह सुन्दर वचन सुनकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने उसका हाथ पकड़ा ॥ १२ ॥ मित्रता होनेसे प्रसन्न होकर सुग्रीवने रामचन्द्रका आलिंगन किया। अनन्तर हनुमानने भिक्षुका रूप छोड़कर अपने असली रूपसे दो लकड़ियोंको रगड़कर आग उत्पन्न की। उस जलती हुई आगकी आदरपूर्वक उन्होंने पुष्पोंसे पूजा की और सावधान होकर राम और सुग्रीवके बीचमें वह आग रख दी। राम और सुग्रीवने उस जलती आगकी प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस प्रकार रामचन्द्र और सुग्रीव दोनों मित्र बन गए। इससे वे दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ वे परस्पर एक दूसरेको देखते हुए तृप्त नहीं होते थे। "आप मेरे मित्र हैं, मेरे हृदयके प्रिय हैं। हम दोनोंका सुख दुःख समान है।" सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रसे यह कहा। अनन्तर घने पत्तों और फूलोंवाली शालवृक्षकी शाखा तोड़कर उसपर रामचन्द्र और सुग्रीव बैठे। प्रसन्न वायुपुत्र हनुमानने लक्ष्मणको भी बैठनेके लिए चन्दनकी एक डाल दी, जिसमें खूब फूल लगे हुए थे। अनन्तर सुग्रीव खूब प्रसन्न होकर मधुरवाणीके द्वारा रामचन्द्रसे बोले, हर्षसे उनकी आँखें ढँक गयी थीं। रामचन्द्र, मैं निर्वासित हूँ और डरके मारे इधर-उधर घूमा करता हूँ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ मेरी स्त्री हर ली गयी है। मैं डरा हुआ इस वनमें सदा उद्विग्न रहा करता हूँ ॥ २२ ॥ वालिने मुझे निकाल दिया है और वह

वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघवः। वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु ॥२३॥
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद्यथा। एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ॥२४॥
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव। उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥२५॥
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्। अमोघाः सूर्यसंकाशा ममेमे निचिताः शरा ॥२६॥
तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः। कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः ॥२७॥
तीक्ष्णाग्रा ऋजुपर्वाणः सरोषा भुजगा इव। तमद्य वालिनं पश्य तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥२८॥
शरैर्विनिहतं भूमौ प्रकीर्णमिव पर्वतम्। स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम् ॥
सुग्रीवः परमप्रीतः परमं वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥

तव प्रसादेन नृसिंह वीर प्रियां च राज्यं च समाप्नुयामहम्।
तथा कुरु त्वं नरदेव वैरिणं यथा न हिंस्यात्स पुनर्ममाग्रजः ॥३०॥
सीताकपीन्द्रक्षणदाचराणां राजीवहेमज्वलनोपमानि।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥



मुझसे वैर रखता है। महाभाग, मैं वालिके भयसे भयभीत हूँ। आप मुझे अभय करें ॥ २३ ॥ काकुत्स्थ, आप ऐसा करें, जिससे मेरा भय जाता रहे। तेजस्वी, धर्मवत्सल और धर्मज्ञ रामचन्द्र सुग्रीवकी ये बातें सुनकर हँसते हुए इस प्रकार बोले—मित्र, उपकारके फल मुझे मालूम हैं ॥२४॥२५॥ आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले वालिका मैं वध करूंगा। ये मेरे सूर्यके समान चमकनेवाले और तीखे बाण निष्फल नहीं होते ॥२६॥ पापी वालि पर ये मेरे कंकपत्रसे बँधे हुए इन्द्रके वज्रके समान बाण वेगसे जाकर गिरेंगे ॥ २७ ॥ ये मेरे बाण तीखे और सीधे हैं। क्रुद्ध सर्पके समान ये वालिपर गिरेंगे। तीखे और सर्पके सदृश मेरे बाणोंके द्वारा मृत वालिको भूमिमें पड़े पर्वतके समान तुम शीघ्र ही देखोगे। अपने हितके रामचन्द्रके ये वचन सुनकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ और बोला ॥२८॥२९॥ हे पुरुषोत्तम, आपकी कृपासे मैं अपनी स्त्री और राज्य पा जाऊँगा। नरदेव, वैरी मेरे बड़े भाईको आप ऐसा कर दीजिए जिससे वह मुझसे द्वेष रखना छोड़ दे ॥ ३० ॥ सुग्रीव और रामचन्द्रमें जिस समय मैत्री हो रही थी उसी समय सीता, वालि और राक्षसोंके वामनेत्र फड़के। कमलके समान सीताके नेत्र, सुवर्णके समान वालिके नेत्र और आगके समान राक्षसोंके नेत्र थे (स्त्रीके लिए बांई आंखका फड़कना शुभ है और पुरुषोंके लिए अशुभ। अर्थात् राम और सुग्रीवकी मैत्रीसे वालि और राक्षसोंका वध और सीताका उद्धार होगा इसकी सूचना इस नेत्र फड़कनेके द्वारा हुई) ॥३१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पाचवां सर्ग समाप्त।



षष्ठः सर्गः ६

पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवं रघुनन्दनम् । अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रिसत्तमः ॥ १ ॥
हनुमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा । त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ३ ॥
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् । भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ॥ ४ ॥
भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे । अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेद श्रुतीमिव ॥ ५ ॥
रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले । अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम ॥ ६ ॥
इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव । न शक्या सा जरयितुमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥ ७ ॥
तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा । त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥ ८ ॥
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः । ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥ ९ ॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥१०॥
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् । उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥११॥
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव । आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥१२॥
तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥१३॥

सुग्रीव प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे पुनः बोला, राम इस मेरे श्रेष्ठ सचिव और सेवक हनुमानने, आप जिसके लिए इस निर्जन वनमें आए हैं, कहा है। भाई लक्ष्मणके साथ आप वनमें रहते थे ॥१॥२॥ आपकी स्त्री जनकनन्दिनी रावणने हर ली है। उस समय आप भी नहीं थे और बुद्धिमान् लक्ष्मण भी नहीं थे। इसी अवसर वृद्ध जटायुको मारकर राक्षसने आपकी स्त्री हर ली और आपको पत्नीके वियोगका दुःख पहुँचाया। शीघ्र ही आपका स्त्री-वियोगका दुःख दूर हो जायगा। मैं राक्षसोंके द्वारा हरी गई वेदवाणीके समान उन्हें लौटा ले आऊँगा ॥ ५ ॥ चाहे वे पातालमें हों या आकाशमें, वहाँसे मैं आपकी स्त्रीको ले आऊँगा ॥६॥ रामचन्द्र, आप मेरे इस वचनको सत्य समझें। इन्द्रादिक देवता तथा राक्षस कोई भी आपकी स्त्रीको छिपा नहीं सकता ॥ ७ ॥ महाबाहो, आपकी स्त्री विष-मिले अन्नके समान दूसरोंके लिए दुष्प्राप्य है। उन्हें कोई पचा नहीं सकता। आप शोकका त्याग करें। मैं उन्हें ले आऊँगा ॥ ८ ॥ अनुमानसे मैं जानता हूँ, वह सीता ही थीं। भयानक कर्म करनेवाला राक्षस उन्हें हरकर लिए जाता था ॥ ९ ॥ टूटे शब्दोंमें 'राम' 'राम' 'लक्ष्मण' कहकर वे रोती जाती थीं। रावणके गोदमें नागवधूके समान वे चमक रही थीं ॥ १० ॥ चार मन्त्रियोंके साथ मुझे पर्वतपर बैठे देख उन्होंने अपना वस्त्र और कई गहने ऊपरसे गिराये थे ॥ ११ ॥ रामचन्द्र, वे सब चीजें हम लोगोंने ले लीं और हमारे पास रक्खी हुई हैं। हम लाते हैं, आप पहचानिये ॥१२॥

सन्देश देनेवाले सुग्रीवसे रामचन्द्र बोले—मित्र, शीघ्र लाओ, क्यों विलम्ब करते हो ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् । प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥१४॥
उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च । इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥१५॥
ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च । अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥१६॥
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः । हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥१७॥
हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलंकारमुत्तमम् । निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥१८॥
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः । परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥१९॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराभूषणानि च ॥२०॥
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया । उत्सृष्टं भूषणमिदं तथारूपं हि दृश्यते ॥२१॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥२२॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् । ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२३॥
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया । रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥२४॥
क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम । यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥२५॥
हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता ध्रुवम् । आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम् ॥२६॥

रामचन्द्रके ऐसा कहने पर पर्वतकी छिपी कन्दरामें रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए शीघ्र ही सुग्रीवने प्रवेश किया ॥ १४ ॥ चादर तथा वे गहने सुग्रीवने, यह देखिए, यह कहकर रामचन्द्रको दिखाए ॥ १५ ॥ उस वस्त्रको तथा गहनोंको लेकर रामचन्द्र रोने लगे। आँसूसे उनका मुखमण्डल छिप गया, जिस प्रकार कुहरेसे चन्द्रमा छिप जाता है ॥ १६ ॥ सीताके स्नेहसे निकले हुए आँसूसे रामचन्द्र भींग गए। हा प्रिये, कहकर रोते हुए पृथिवीपर गिर पड़े, उनका धैर्य जाता रहा ॥१७॥ उस अलंकारको कई बार हृदयमें लगाकर बिलके क्रुद्ध सर्पके समान वे बराबर निश्वास लेने लगे ॥१८॥ रामचन्द्रका अश्रुवेग रुका नहीं। लक्ष्मणको पास देखकर वे दीनतापूर्वक विलाप करने लगे ॥१९॥ लक्ष्मण, देखो हरणके समय सीताने यह चादर और शरीरके गहने फेंके थे ॥ २० ॥ सीताने अवश्य ही इन गहनोंको घासवाली जमीन पर फेंका था, यह बात इन गहनोंको देखनेसे मालूम होती है ॥ २१ ॥ रामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण बोले, मैं केयूरों (हाथमें पहननेका गहना) और कुण्डलों (कानमें पहनेका गहना) को नहीं जानता ॥ २२ ॥ प्रतिदिन चरण-वन्दन करनेके कारण केवल नूपुरों (पैरका गहना) को ही जानता हूँ। तब रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले ॥ २३ ॥ सुग्रीव, भयानक राक्षस मेरी प्रिया सीताको हरकर किधर ले गया—क्या तुमने देखा है ?॥२४॥ वह राक्षस कहाँ रहता है, जिसने मुझे इतना बड़ा दुःख दिया है और जिसके लिए मैं समस्त राक्षसोंका विनाश करूँगा ॥ २५ ॥ मैथिलीका हरण करके जिसने मेरा क्रोध भड़काया है, अवश्य ही उसने अपने जीवनका अन्त करनेके लिए मृत्युका द्वार खोल दिया है ॥ २६ ॥ जिस राक्षसने

मम दयिततमा हृता वनाद्रजनिचरेण विमथ्य येन सा।
कथय मम रिपुं तमद्य वै प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



सप्तमः सर्गः ७

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥ १ ॥
न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः। सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥ २ ॥
सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम। करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ ३ ॥
रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्। तथास्मि कर्ता नचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि ॥ ४ ॥
अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर। त्वद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ५ ॥
मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत्। नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे ॥ ६ ॥
नाहं तामनुशोचामि प्राकृतो वानरोऽपि सन्। महात्मा च विनीतश्च किं पुनर्धृतिमान्महान् ॥ ७ ॥
बाष्पमापतितं धैर्यान्निगृहीतुं त्वमर्हसि। मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥
व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे। विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥ ९ ॥

छलसे मेरी प्रिया सीताका हरण किया है, वानराधिपति, उस शत्रुका पता बतलाओ, मैं उसे अभी यमराजके पास भेजता हूँ ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥



दुखी रामके ऐसा कहनेपर सुग्रीवकी आँखोंमें आँसू आ गए। वे हाथ जोड़कर रोते हुए रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ उस पापी राक्षसका घर कहाँ है यह मैं नहीं जानता, उसकी कितनी शक्ति है, कैसा पराक्रम है, और कौन कुल है, यह सब मैं नहीं जानता ॥ २ ॥ पर आपसे मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आप सीताको पावें। आप शोकका त्याग करें ॥ ३ ॥ सपरिवार रावणको मारकर तथा अपनी सेनाको सन्तुष्ट कर मैं शीघ्र ही ऐसा करूँगा जिससे आप प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ इस दैन्यका त्याग करो और अपनी धीरताका स्मरण करो। आपके समान मनुष्योंके लिए यह बुद्धिहीनताका कार्य उचित नहीं ॥ ५ ॥ पत्नी-विरहका महान् दुःख मुझे भी प्राप्त हुआ है। पर मैं तो ऐसा शोक नहीं करता और न मैंने धीरताका ही त्याग किया है ॥ ६ ॥ साधारण वानर होकर भी मैं अपनी स्त्रीकी याद नहीं करता। फिर आपके समान महात्मा, धीर, शिक्षितके लिए क्या कहा जाय ॥ ७ ॥ ये निकलते हुए आँसू आप शीघ्र अपनी धीरतासे रोकें। सज्जनोंके द्वारा बाँधी धीरताका त्याग आप न करें ॥ ८ ॥ कष्टमें, गरीबीमें, भयमें या जीवनसंकट उपस्थित होनेपर धीरतापूर्वक जो अपनी बुद्धिसे विचार करते हैं वे दुखी नहीं

वालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते । स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥१०॥
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयात्त्वां प्रसादये । पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि ॥११॥
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् । तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१२॥
शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः । स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥१३॥
हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१४॥
मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः । मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥१५॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः । संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥१७॥
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे । दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥१८॥
किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे । राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१९॥
मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् । वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते तव ॥२०॥
मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् । तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥२१॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन । एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपाम्यहम् ॥२२॥

होते ॥ ९ ॥ वे मनुष्य मूर्ख हैं जो व्याकुल हो जाते हैं । भरी हुई नौका जिस प्रकार डूब जाती है, उसी प्रकार वे भी शोकमें डूब जाते हैं ॥ १० ॥ मैं प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ आप उद्योग करें । अपना पुरुषार्थ दिखावें । शोकका प्रभाव अपने ऊपर न होने दें ॥ ११ ॥ जो शोक करते हैं उन्हें सुख नहीं होता । उनका तेज नष्ट हो जाता है । अतएव आपको शोक न करना चाहिए ॥ १२ ॥ जो शोकके अधीन हो जाते हैं उनका जीवन भी संशयमें पड़ जाता है । अतएव आप शोकका त्याग करके बल धैर्य धारण कीजिए ॥ १३ ॥ मैंने मित्रताके भावसे यह हित बतलाया है, उपदेश नहीं दिया है । अतएव मेरी मित्रताको सम्मानित करनेके लिए आपको शोक नहीं करना चाहिए ॥ १४ ॥ नम्रतापूर्वक सुग्रीवने रामचन्द्रको समझाया । आँसूसे भरे हुए मुँहको उन्होंने कपड़ेसे पोंछा ॥ १५ ॥ सुग्रीवके समझानेसे रामचन्द्र स्वस्थ हुए और तब सुग्रीवका आलिंगन कर वे इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥ स्नेही और हितैषी मित्रको जो करना चाहिए, हे सुग्रीव, तुमने उसीके अनुकूल सब कुछ किया है ॥१७॥ तुम्हारे समझानेसे मैं प्रकृतिस्थ हूँ । मेरा शोक जाता रहा । तुम्हारे ऐसा बन्धु, विशेषकर ऐसे समयमें, मिलना दुर्लभ है ॥ १८ ॥ जानकीको तथा क्रूर दुरात्मा राक्षस रावणको ढूँढ़नेका तुम प्रयत्न करो ॥ १९ ॥ मुझको क्या करना चाहिए, यह भी सोच विचारकर मुझसे कहो । जिस प्रकार अच्छे खेतमें वर्षाकालमें सभी चीजें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार तुममें सभीका होना सम्भव है ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ, मैंने अभिमानसे जो बातें कही हैं उन्हें तुम यथार्थ ही समझो । वे बातें डींग हाँकनेके समान अर्थहीन नहीं है ॥ २१ ॥ मैं झूठ कभी नहीं बोला और न आज ही बोलता हूँ। मैं सत्यको साक्षी देकर तुम्हारे सामने शपथ करता हूँ ॥२२॥

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह । राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥२३॥
एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ । उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥२४॥
महानुभावस्य वचो निशम्य हरिर्नृपाणामधिपस्य तस्य ।
कृतं स मेने हरिवीरमुख्यस्तदा च कार्यं हृदयेन विद्वान् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥



अष्टमः सर्गः ८

परितुष्टश्च सुग्रीवस्तेन वाक्येन हर्षितः । लक्ष्मणस्याग्रजं शूरमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः । उपपन्नो गुणोपेतः सखा यस्य भवान्मम ॥ २ ॥
शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ । सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किमुत प्रभो ॥ ३ ॥
सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव । यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥ ४ ॥
अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः । न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान्गुणान् ॥५॥
महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् । निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर ॥ ६ ॥
रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च । अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥ ७ ॥
आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितःसुखितोऽपि वा । निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥ ८ ॥

रामचन्द्रके वचन, विशेषकर उनकी प्रतिज्ञा, सुनकर सुग्रीव अपने सचिवोंके साथ प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥
इस प्रकार एकान्तमें बैठे हुए राम और सुग्रीव दोनोंने आपस में सुख और दुःखकी बातें कीं ॥ २४ ॥
महानुभाव रामचन्द्रके वचन सुनकर वानराधिपति सुग्रीवने अपना कार्य सिद्ध समझा ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ।



रामचन्द्रके उस वचनसे सुग्रीव सन्तुष्ट हुआ । अतएव हर्षित होकर वह रामचन्द्रसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ सब गुणोंसे युक्त आप जब मेरे मित्र हुए हैं तब मैं अवश्य ही देवताओंके अनुग्रहका पात्र हूँ ॥ २ ॥ रामचन्द्र, आपके सहायक होनेसे देवताओंका भी राज्य पा सकता हूँ । अपना राज्य पाना कौन बड़ी बात है ॥ ३ ॥ बन्धुओं और मित्रोंके द्वारा मैं पूजनीय हो गया हूँ, क्योंकि रघुवंशी राजपुत्रसे अग्निसाक्षिक मेरी मित्रता हुई है ॥ ४ ॥ रामचन्द्र, मैं भी आपके योग्य ही आपका मित्र हूँ । यह बात धीरे-धीरे आपको मालूम होगी । मैं स्वयं अपने गुणोंका बखान नहीं कर सकता ॥५॥ सुन्दर स्वभाववाले स्वाधीन और निश्चल धैर्यवाले आपके समान पुरुषोंकी प्रीति, आपकी धीरताके समान निश्चल होती है ॥ ६ ॥ चाँदी सोनेके उत्तम-उत्तम गहने सज्जन मित्र आपसमें बँटे हुए नहीं समझते । एक मित्रकी चीजें दूसरे मित्रकी भी होती हैं ॥ ७ ॥ धनी हो या दरिद्र, दुखी हो या सुखी, निर्दोष हो वा सदोष, मित्र ही मित्रके लिए गति है ॥ ८ ॥ इसी कारण मित्रका ऐसा

धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वानघ । वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ ९ ॥
तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः ॥१०॥
ततो रामं स्थितं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् । सुग्रीवः सर्वतश्चक्षुर्वने लोलमपातयत् ॥११॥
स ददर्श ततः सालमविदूरे हरीश्वरः । सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यं भ्रमरैरुपशोभितम् ॥१२॥
तस्यैकां पर्णबहुलां शाखां भङ्क्त्वा सुशोभिताम् । रामस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः ॥१३॥
तावासीनौ ततो दृष्ट्वा हनूमानपि लक्ष्मणम् । शालशाखां समुत्पाट्य विनीतमुपवेशयत् ॥१४॥
सुखोपविष्टं रामं तु प्रसन्नमुदधिं यथा । सालपुष्पावसंकीर्णे तस्मिन्गिरिवरोत्तमे ॥१५॥
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा । उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥१६॥
अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः । ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥१७॥
सोऽहं त्रस्तो भये मग्नो वने संभ्रान्तचेतनः । वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ॥१८॥
वालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर । ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१९॥
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥२०॥
उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् । अद्यैव तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥२१॥
इमे हि मे महाभाग पत्रिणस्तिग्मतेजसः । कार्तिकेयवनोद्भूताः शरा हेमविभूषिताः ॥२२॥

उत्कट प्रेम देखकर उसके लिए मित्र धनत्याग, सुखत्याग तथा देशत्याग भी करता है ॥ ९ ॥ कान्तिमें इन्द्रके सामन लक्ष्मणके सामने प्रियदर्शन सुग्रीवसे रामचन्द्रने कहा—बिलकुल ठीक कह रहे हो ॥ १० ॥ महाबली राम और लक्ष्मण दोनों बैठे हुए हैं यह देखकर सुग्रीवने अपनी चंचल दृष्टि वनमें चारों ओर डाली ॥ ११ ॥ वानराधिपति सुग्रीवने पास ही एक शाल-वृक्ष देखा, जिसकी शाखामें खूब पुष्प लगे हुए थे, पत्ते थोड़े थे और उसपर भ्रमर गूँज रहे थे ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक सुन्दर शाखा उन्होंने तोड़ी। उसे बिछाकर रामचन्द्रके साथ सुग्रीव उसपर बैठे ॥ १३ ॥ उन दोनोंको बैठे देखकर हनुमान्ने भी शालवृक्षकी एक शाखा तोड़ी और विनयपूर्वक उन्होंने उसपर लक्ष्मणको बैठाया ॥ १४ ॥ शालपुष्पसे भरे हुए सुन्दर पर्वतपर प्रसन्न समुद्रके समान रामचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ॥ १५ ॥ प्रसन्न होकर सुग्रीव मधुर और सुन्दर वचन रामचन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले, हर्षके मारे उनके मुँहसे स्पष्ट अक्षर नहीं निकलते थे ॥ १६ ॥ भाईने मुझे निकाल दिया है। मैं भयसे ऋष्यमूक पर्वतपर इधर-उधर रहता हूँ। मेरी स्त्री हरी गई है और मैं बहुत दुखी हूँ ॥ १७ ॥ रामचन्द्र, मैं शंकित, भयभीत और व्याकुल होकर वनमें रहता हूँ। मेरे भाई वालिने मुझे निकाल दिया है और वह मुझसे वैर रखता है ॥ १८ ॥ आप सबके भय दूर करनेवाले हैं। मैं वालिसे भयभीत हूँ। कृपाकर मुझपर अनुग्रह कीजिए ॥ १९ ॥ तेजस्वी धर्मज्ञ और धर्मवत्सल रामचन्द्र सुग्रीवके ऐसा कहनेपर हँसते हुए बोले ॥ २० ॥ उपकार करना मित्रका और अपकार करना शत्रुका लक्षण है। तुम्हारी स्त्रीके हरनेवालेका मैं आज ही वध करूँगा ॥ २१ ॥ महाभाग, ये मेरे बाण जो सोनेसे मढ़े गए हैं बड़े तेजस्वी हैं और ये कार्त्तिकेय वनके हैं ॥ २२ ॥

कङ्कपत्रपरिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः । सुपर्वाणः सुतीक्ष्णाग्राः सरोषा भुजगा इव ॥२३॥
वालिसंज्ञममित्रं ते भ्रातरं कृतकिल्बिषम् । शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥२४॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः । प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥२५॥
राम शोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानां भवान्गतिः । वयस्य इति कृत्वा हि त्वय्यहं परिदेवये ॥२६॥
त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्निसाक्षिकम् । कृतः प्राणैर्बहुमतः सत्येन च शपाम्यहम् ॥२७॥
वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धः प्रवदाम्यहम् । दुःखमन्तर्गतं तन्मे मनो हरति नित्यशः ॥२८॥
एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पदूषितलोचनः । बाष्पदूषितया वाचा नोच्चैः शक्नोति भाषितुम् ॥२९॥
बाष्पवेगं तु सहसा नदीवेगमिवागतम् । धारयामास धैर्येण सुग्रीवो रामसंनिधौ ॥३०॥
स निगृह्य तु तं बाष्पं प्रमृज्य नयने शुभे । विनिःश्वस्य च तेजस्वी राघवं पुनरुचिवान् ॥३१॥
पुराहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः । परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥३२॥
हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥३३॥
यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव । बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥३४॥
शङ्कया त्वेतयाहं च दृष्ट्वा त्वामपि राघव । नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति ॥३५॥
केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे । अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्रगतोऽपि सन् ॥३६॥

कंकपत्रसे युक्त इन्द्रके वज्रके समान तीखे और सीधे हैं। इसलिए क्रुद्ध सर्पके समान हैं ॥ २३ ॥ वालि नामक अपने शत्रुको, जो तुम्हारा भाई है, जो तुम्हारे प्रति पाप कर चुका है, मेरे बाणोंसे टूटे पर्वतके समान उसे मरा हुआ तुम अभी देखो ॥ २४ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर सेनापति सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ और साधु-साधु कहने लगा ॥ २५ ॥ राम मैं बहुत ही शोकपीड़ित हूँ। आप शोकार्तोंकी गति हैं, रक्षक हैं और मेरे मित्र भी हैं। इसलिए मैं अपने दुःख आपको बतलाता हूँ ॥२६॥ आपने हाथ पकड़कर और अग्निको साक्षी बनाकर मुझसे मैत्री की है; अतएव आप मुझे प्राणसे भी बढ़कर प्रिय हैं। यह बात मैं शपथपूर्वक कहता हूँ ॥ २७ ॥ आप मित्र हैं इसलिए विश्वास-पूर्वक जो भीतरी दुःख मुझे सदा दुःखित करता है वह कहता हूँ ॥ २८ ॥ इतना कहनेपर सुग्रीवकी आँखें आँसूसे भर गईं। वे जोरसे बोल नहीं सके ॥ २९ ॥ नदीके वेगके समान आए हुए आँसुओंको रामचन्द्रजीके समीप सुग्रीवने बड़ी धीरतासे रोका ॥ ३० ॥ आँसूको रोककर दोनों आँखोंको पोछ-कर तथा निश्वास लेकर तेजस्वी सुग्रीव रामचन्द्रसे पुनः बोले ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र, पहले वालिने मुझे अपने राज्यसे हटा दिया। मुझे गालियाँ दीं और तिरस्कार किया क्योंकि वह बलवान् था ॥ ३२ ॥ प्राणोंसे भी प्रिय मेरी स्त्री उसने हर ली। मेरे मित्रोंको उसने कैद कर लिया ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र, मेरे नाशके लिये वह दुष्ट प्रयत्न करता रहता है। बहुतसे वानर उसके भेजे आए जिन्हें मैंने मार डाला ॥ ३४ ॥ रामचन्द्र, इसी भयसे आपके पास भी मैं पहले नहीं जा सका, क्योंकि भयसे सभी डरते हैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमान् आदि कई वानर मेरे सहायक हैं, अतएव इस कष्टमें भी मैं प्राण

एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः । सहगच्छन्तिगन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते ॥३७॥
संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते । स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥३८॥
तद्विनाशेऽपि मे दुःखं प्रमृष्टं स्यादनन्तरम् । सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशनिबन्धनम् ॥३९॥
एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः । दुःखितःसुखितोवापिसख्युर्नित्यंसखागतिः ॥४०॥
श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् । किंनिमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४१॥
सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर । आनन्तर्याद्विधास्यामि संप्रधार्य बलाबलम् ॥४२॥
बलवान्हि ममामर्षः श्रुत्वा त्वामवमानितम् । वर्धते हृदयोत्कम्पी प्रावृड्वेग इवाम्भसः ॥४३॥
हृष्टः कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः । सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव ॥४४॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः काकुत्स्थेन महात्मना । प्रहर्षमतुलं लेभे चतुर्भिः सह वानरैः ॥४५॥
ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे । वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥



धारण किए हुए हूँ ॥ ३६ ॥ ये वानर मुझपर प्रेम रखनेवाले और मेरे रक्षक हैं। जहाँ जाना होता है, वहाँ साथ जाते हैं और जहाँ रहना होता है वहाँ साथ रहते हैं ॥ ३७ ॥ राम, संक्षेपसे यह बात मैंने आपसे कही। विस्तारसे लाभ क्या? वह मेरा ज्येष्ठ भाई बालि जिसका पराक्रम प्रसिद्ध है, मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ उसके विनाशके अनन्तर ही मेरा दुःख दूर हो सकता है। मेरा जीवन और मेरा सुख उसीके विनाशके ही अधीन है ॥३९॥ राम, दुखी या सुखी मित्र ही मित्रकी गति है, इसलिए शोकपीड़ित मैंने अपने शोक नष्ट करनेके उपाय आपको बतला दिए ॥ ४० ॥ ये वचन सुनकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले, किस कारण यह तुम्हारा वैर हुआ मैं सुनना चाहता हूँ ॥४१॥ तुम्हारे वैरका कारण सुनकर और तुम दोनोंमें कौन प्रबल है और कौन निर्बल यह जाननेके अनन्तर ही मैं तुम्हें सुखी बनानेका प्रयत्न करूँगा ॥ ४२ ॥ तुम्हारे अपमानकी बात सुनकर बरसाती जलके वेगके समान, हृदयको कँपा देनेवाला मेरा क्रोध बहुत बढ़ रहा है ॥ ४३ ॥ जब तक मैं धनुष चढ़ाता हूँ तब तक प्रसन्नतापूर्वक सब कहो। जहाँ मैं बाण छोड़ूँगा, तुम्हारा शत्रु नष्ट हो जायगा ॥ ४४ ॥ महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर सुग्रीव चारों वानरोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ अनन्तर प्रसन्न होकर वैरका असली कारण सुग्रीव रामचन्द्रसे कहने लगे ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त।



नवमः सर्गः ९

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः । पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा ॥ १ ॥
पितर्युपरते तस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः । कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसंमतः ॥ २ ॥
राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत् । अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ ३ ॥
मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः । तेन तस्य महद्वैरं वालिनः स्त्रीकृतं पुरा ॥ ४ ॥
स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः । नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥
प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम् । श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा ॥ ६ ॥
स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम् । वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना ॥ ७ ॥
स तु निर्धूय ताः सर्वा निर्जगाम महाबलः । ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह ॥ ८ ॥
स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम् । असुरो जातसंत्रासः प्रदुद्राव तदा भृशम् ॥ ९ ॥
तस्मिन्द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ । प्रकाशोऽपि कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा ॥१०॥
स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत् । प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ ॥११॥
तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः । मामुवाच ततो वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥१२॥
इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः । यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम् ॥१३॥

वालि मेरा बड़ा भाई है । पिताका और मेरा पहले बड़ा प्रिय था ॥ १ ॥ पिताके मरनेपर वह बड़ा है, इसलिए सर्व सम्मतिसे मंत्रियोंने वानर-राज्यपर उसका अभिषेक किया ॥ २ ॥ पिता पितामहसे आया हुआ उस राज्यका शासन वालि करने लगा और मैं उसके अनुगत भृत्यके समान रहने लगा ॥ ३ ॥ दुन्दुभीका बड़ा भाई मायावी बड़ा ही तेजस्वी था । उसका स्त्रीके कारण वालिसे वैर हो गया था ॥ ४ ॥ रात्रिमें सबके सो जानेपर वह किष्किन्धाके द्वारपर आया और क्रोधपूर्वक गर्जने लगा तथा युद्धके लिए वालिको ललकारने लगा ॥ ५ ॥ मेरा भाई सो रहा था । उसका भयानक शब्द सुनकर उसने क्षमा न की, किन्तु शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आया ॥ ६ ॥ क्रोधपूर्वक उस राक्षसको मारनेके लिए वालि घरसे बाहर निकला । स्त्रियोंने रोका और नम्रतापूर्वक मैंने भी रोका ॥७॥ महाबलि वालि उन स्त्रियोंको हटाकर चला गया । तब मैं भी प्रेमके कारण वालिके साथ बाहर निकला ॥ ८ ॥ वह राक्षस मेरे भाईको देखकर तथा दूर से मुझे आते देख डरा और जोरसे भगा ॥९॥ डरकर भागते हुए उस राक्षसका हम दोनों भाइयोंने पीछा किया । उसी समय क्रुद्ध होकर चन्द्रमाने भी मार्ग प्रकाशित कर दिया ॥ १० ॥ पृथिवीमें एक बड़ा दुर्गम बिल था । उसका मुँह घाससे छिपा हुआ था । उसीमें वह बड़े वेगसे घुस गया और हम दोनों वहीं ठहर गए ॥ ११ ॥ शत्रु बिलमें घुस गया—यह देखकर वालि बहुत क्रुद्ध हुआ और वह मुझसे बोला, उस समय उसकी समस्त इन्द्रियाँ क्षुभित हो गई थीं ॥ १२ ॥ सुग्रीव, इस बिलके द्वारपर सावधान होकर तुम ठहरो । मैं इस बिलमें घुसकर

मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परंतपः । शापयित्वा स मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं ततः ॥१४॥
तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो गतः । स्थितस्य च बिलद्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥१५॥
अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसंभ्रमः । भ्रातरं न प्रपश्यामि पापशङ्कि च मे मनः ॥१६॥
अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् । सफेनं रुधिरं दृष्ट्वा ततोऽहं भृशदुःखितः ॥१७॥
नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः । न रतस्य च संग्रामे क्रोशतोऽपि स्वनो गुरोः ॥१८॥
अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम् । पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया ॥१९॥
शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे । गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ॥२०॥
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः । राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ॥२१॥
आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः । अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥२२॥
मदीयान्मन्त्रिणो बद्ध्वा परुषं वाक्यमब्रवीत् । निग्रहे च समर्थस्य तं पापं प्रति राघव ॥२३॥
न प्रावर्तत मे बुद्धिर्भ्रातृगौरवयन्त्रिता । हत्वा शत्रुं स मे भ्राता प्रविवेश पुरं तदा ॥२४॥
मानयंस्तं महात्मानं यथावच्चाभिवादयम् । उक्ताश्च नाशिषस्तेन प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२५॥
नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनास्पृशं प्रभो । अपि वाली मम क्रोधान्न प्रसादं चकार सः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

शत्रुको युद्धमें मारता हूँ ॥ १३ ॥ उसके ये वचन सुनकर साथ चलनेकी मैंने भी प्रार्थना की, पर अपने चरणोंकी शपथ लेकर स्वयं बिलमें चला गया ॥ १४ ॥ बिलमें गए उसे एक वर्षसे अधिक हो गया । इतना समय वहीं रहकर मैंने बिताया ॥ १५ ॥ मैंने समझा कि वालि नष्ट हो गया । स्नेहके कारण मैं घबड़ा गया । एक वर्ष तक भाईको न देखनेसे मेरे मनमें अनिष्टकी शंका हुई ॥ १६ ॥ अनन्तर बहुत दिनोंके बाद उस बिलसे फेनके साथ रुधिरकी धार निकली । जिसे देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ ॥१७॥ राक्षसोंके गर्जनका शब्द भी सुनाई पड़ा । युद्ध करनेवाले अपने बड़े भाईका कोई भी शब्द सुनाई न पड़ा ॥ १८ ॥ मैंने इन लक्षणोंसे सोच विचार कर अपने भाईका मारा जाना ही निश्चित किया और पर्वतके समान एक पत्थरसे बिलका द्वार रोक दिया ॥ १९ ॥ मित्र, दुःखसे पीड़ित होकर भाईको जल देकर मैं किष्किन्धा लौट आया । मैं मंत्रियोंसे यथार्थ बात छिपाता रहा, पर उन-लोगोंने जान लिया ॥ २० ॥ अनन्तर सबने मिलकर मेरा अभिषेक किया और मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा ॥ २१ ॥ शत्रु राक्षसको मारकर वालि लौट आया । मुझको राजा देखकर उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गईं ॥ २२ ॥ मेरे मन्त्रियोंको बाँधकर उनके प्रति उसने कठोर शब्द कहे । यद्यपि मैं अपने मंत्रियोंके प्रति बुरा बर्ताव करनेका उस पापीको बदला दे सकता था, तथापि भाईके प्रति सम्मान होनेके कारण मेरी इच्छा ही नहीं हुई । शत्रुको मारकर मेरा भाई नगरमें आया ॥ २३॥२४॥ मैंने महात्मा वालिका सम्मान किया और प्रणाम करके मैंने मुकुटसे उसके चरणोंका स्पर्श किया; पर वालिका क्रोध दूर न हुआ; वह मुझपर प्रसन्न न हुआ ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्ड का नवाँ सर्ग समाप्त ।

दशमः सर्गः १०

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम् । अहं प्रसादयांचक्रे भ्रातरं हितकाम्यया ॥ १ ॥
दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो निहतश्च त्वया रिपुः । अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेको नाथ नन्दन ॥ २ ॥
इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम् । छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मया धृतम् ॥ ३ ॥
आर्तस्तस्य विलद्वारि स्थितः संवत्सरं नृप । दृष्ट्वा च शोणितं द्वारि विलाच्चापि समुत्थितम् ॥ ४ ॥
शोकसंविग्नहृदयो भृशं व्याकुलितेन्द्रियः । अपिधाय विलद्वारं शैलशृङ्गेण तत्तदा ॥ ५ ॥
तस्माद्देशादपाक्रम्य किष्किन्धां प्राविशं पुनः । विषादात्त्विह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च ॥ ६ ॥
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि । त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथा पुरा ॥ ७ ॥
राजभावे नियोगोऽयं मम त्वद्विरहात्कृतः । सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम् ॥ ८ ॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम् । मा च रोषं कृथाः सौम्य मम शत्रुनिषूदन ॥ ९ ॥
याचे त्वां शिरसा राजन्मया बद्धोऽयमञ्जलिः । बलादस्मिन्समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥ १० ॥
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया । स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स विनिर्भर्त्स्य वानरः ॥ ११ ॥
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह । प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव संमतान् ॥ १२ ॥
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम् । विदितं वो मया रात्रौ मायावी स महासुरः ॥ १३ ॥

अपने कल्याणके लिए मैंने अपने क्रुद्ध भाईको प्रसन्न करना चाहा। मैंने आए हुए भाईसे कहा ॥ १ ॥ प्रसन्नताकी बात है कि कुशलपूर्वक आप लौट आए। अपने शत्रुको मारा। मुझ अनाथके आपही स्वामी हैं ॥ २ ॥ बहुत कमानियोंवाला पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभमान यह छत्र और चँवर आप लीजिए, जिनको मैंने ले रखा है ॥ ३ ॥ महराज, मैं उस बिलके द्वारपर एक वर्ष तक दुःखित होकर रहा। बिलके द्वारसे निकले रुधिरको मैंने देखा ॥ ४ ॥ इससे मेरा शोक बहुत बढ़ गया। इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं और पर्वतके पत्थरसे मैंने उस बिलके द्वारको रोक दिया ॥ ५ ॥ वहाँसे लौटकर मैं किष्किन्धा आया। मुझको दुःखी देखकर पुरवासी और मंत्रियोंने मुझको राजसिंहासनपर बैठा दिया ॥ ६ ॥ मैंने अपनी इच्छासे यह पद नहीं लिया है। सम्माननीय आपही राजा हैं। मैं जैसे पहले रहता था वैसेही रहूँगा ॥ ७ ॥ आपके न रहनेके कारण इन लोगोंने मुझे राजा बना दिया था। शत्रुहीन, सचिव, प्रजा आदिसे युक्त आपका राज्य थाती रूपसे मेरे पास था। मैं वह लौटा रहा हूँ। सौम्य, आप क्रोध न करें ॥ ८, ९ ॥ हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। मंत्रियों और पुरवासियोंने बलपूर्वक मुझे राजा बनाया है। सो भी इसलिए कि शून्य राज्य देखकर शत्रु आक्रमण न करें। प्रेमपूर्वक मेरे ऐसा कहनेपर डाँटकर वह वानर बोला, ॥ १०, ११ ॥ तुमको धिक्कार है—ऐसा मुझसे कहकर प्रजा और माननीय मंत्रियोंको भी उसने अनेक कटु वचन कहे ॥ १२ ॥ मित्रोंके बीचमें मुझे उसने अनेक निन्दित शब्द कहे। उसने कहा कि आप लोगोंको मालूम है कि एक रातको मायावी नामका राक्षस आया था ॥ १३ ॥ उसने क्रोध करके युद्धके लिए

मां समाह्वयत क्रुद्धो युद्धाकाङ्क्षी तदा पुरा । तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात् ॥१४॥
अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः । स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः ॥१५॥
प्राद्रवद्भयसंत्रस्तो वीक्ष्यावां समुपागतौ । अभिद्रुतस्तु वेगेन विवेश स महाबिलम् ॥१६॥
तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्बिलम् । अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः ॥१७॥
अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम् । बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम् ॥१८॥
स्थितोऽयमिति मत्वाहं प्रविष्टस्तु दुरासदम् । तं मे मार्गयतस्तत्र गतः संवत्सरस्तदा ॥१९॥
स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेद्याद्भयावहः । निहतश्च मया सद्यः स सर्वैः सह बन्धुभिः ॥२०॥
तस्यैव च प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्बिलम् । पूर्णमासीद्दुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले ॥२१॥
सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं तमहं सुखम् । निष्क्रामं नेह पश्यामि बिलस्य पिहितं मुखम् ॥२२॥
विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः । यतः प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः ॥२३॥
पादप्रहारैस्तु मया बहुभिः परिपातितम् । ततोऽहं तेन निष्क्रम्य यथापुरमुपागतः ॥२४॥
तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मृगयतात्मनः । सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम् ॥२५॥
एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः । तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः ॥२६॥
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव । तद्भयाच्च महीं सर्वां क्रान्तवान्सवनार्णवाम् ॥२७॥

मुझे बुलाया। उसकी ललकार सुनकर मैं राजभवनसे निकला ॥ १४ ॥ यह मेरा भयानक भाई भी मेरे साथ गया। एक दूसरे आदमीके साथ आते देखकर वह राक्षस भागा ॥ १५ ॥ हम लोगोंको आते देखकर भयभीत होकर वह भागा और एक बिलमें वह घुस गया ॥ १६ ॥ वह एक भयानक बहुत बड़े बिलमें घुस गया है—यह जानकर मैं अपने क्रूरदर्शन इस भाईसे बोला, ॥ १७ ॥ शत्रुको बिना मारे यहाँसे नगर लौट चलनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। जब तक मैं मारकर लौटता हूँ, तब तक बिलके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करो ॥ १८ ॥ यह बाहर बैठा हुआ है, यह जानकर मैं बिलमें गया और वहाँ उस राक्षसको ढूँढनेमें एक वर्ष बीत गया ॥ १९ ॥ मैंने उस भयानक शत्रुको देखा। और बान्धवोंके साथ शीघ्र ही बिना क्लेशके उसे मार डाला ॥ २० ॥ वह पृथिवीपर गिरकर गरज रहा था। उसके मुँहसे रुधिरकी धार निकली और वह बिल भर गया जिससे पृथिवीपर चलना कठिन था ॥ २१ ॥ उस पराक्रमी शत्रुको अनायास मारकर मैंने बिलसे निकलनेका मार्ग नहीं पाया, क्योंकि उसका मुँह बन्द था ॥ २२ ॥ 'सुग्रीव' 'सुग्रीव' बारंबार चिल्लानेपर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। इससे मैं बहुत दुःखित हुआ ॥ २३ ॥ मैंने अनेक बार पैरोंसे मारकर उस पत्थरको हटाया, फिर उस द्वारसे निकलकर नगरमें आया ॥ २४ ॥ स्वयं राज्य चाहनेवाले क्रूर सुग्रीवने भ्रातृप्रेम भूलकर स्वयं राजा बननेके लिए मुझे वहाँ बन्द कर दिया था ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर तथा एक वस्त्र देकर निर्भय वालिने मुझे निकाल दिया ॥ २६ ॥ उसने मुझे निकाल दिया है और मेरी स्त्री हर ली है। उसके भयसे वनों और पर्वतोंवाली समस्त पृथिवी मैं घूम आया हूँ ॥ २७ ॥

ऋष्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः । प्रविष्टोऽस्मि दुराधं वालिनः कारणान्तरे ॥२८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत् । अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव ॥२९॥
वालिनश्च भयात्तस्य सर्वलोकभयापह । कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात् ॥३०॥
एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् । वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥३१॥
अमोघाः सूर्यसंकाशा निशिता मे शरा इमे । तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते पतिष्यन्ति रुषान्विताः ॥३२॥
यावत्तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणम् । तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्रदूषकः ॥३३॥
आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे । त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलम् ॥३४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः पूजयांचक्रे राघवं प्रशशंस च ॥ १ ॥
असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः । त्वं दहेः कुपितो लोकान्युगान्त इव भास्करः ॥ २ ॥
वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या । तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ३ ॥

भार्याके हरणसे दुःखित होकर मैं इस ऋष्यमूक पर्वतपर आया हूँ। क्योंकि कारण विशेषसे वालीका आक्रमण यहाँ नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ यही वैरका कारण है जो मैंने आपसे कहा। रामचन्द्र, विना अपराध ही मैंने यह दुःख पाया है ॥ २९ ॥ सबके भय दूर करनेवाले रामचन्द्र, वालिके भयसे मेरी रक्षा कीजिए। उसके अत्याचारोंसे मुझे बचाइए ॥ ३० ॥ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर तेजस्वी और धर्मज्ञ रामचन्द्र सुग्रीवसे धर्मयुक्त वचन हँसते हुए बोले ॥ ३१ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान, कभी निष्फल न होनेवाले मेरे ये तीखे बाण उस पापी वालिपर क्रोधसे गिरेंगे ॥ ३२ ॥ तुम्हारी स्त्रीके हरण करनेवाले वालिको जब तक मैं नहीं देखता तब तक वह मर्यादा नष्ट करनेवाला वालि जीवे ॥ ३३ ॥ मैं अपने समान ही देख रहा हूँ कि तुम बड़े दुःखमें पड़े हुए हो। मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम राज्य और स्त्री शीघ्रही पाओगे ॥ ३४ ॥ प्रसन्नता और पुरुषार्थ बढ़ानेवाले रामचन्द्रके वचन सुनकर सुग्रीव बहुत ही प्रसन्न हुए और वे बोले, ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका दसवां सर्ग समाप्त।

रामके आनन्द तथा पुरुषार्थ बढ़ानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवने उनकी पूजा और प्रशंसा की ॥१॥ अवश्य ही प्रलयकालीन सूर्यके समान आप क्रोध करके प्रज्वलित तीखे और मर्मभेद करनेवाले इन बाणोंसे लोकोंको जला सकते हैं ॥ २ ॥ वालिका जैसा पुरुषार्थ है, जैसा बल है, जैसा धैर्य है, वह सावधान होकर आप सुन लीजिए। उसके अनन्तर जो समझिये वह कीजिए ॥३॥

समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम् । क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः ॥ ४ ॥
अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि । ऊर्ध्वमुत्पात्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान् ॥ ५ ॥
बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः । वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ ६ ॥
महिषो दुंदुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः । बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स वीर्योत्सेकदुष्टात्मा वरदानेन मोहितः । जगाम स महाकायः समुद्रं सरितां पतिम् ॥ ८ ॥
ऊर्मिमन्तमतिक्रम्य सागरं रत्नसंचयम् । मम युद्धं प्रयच्छेति तमुवाच महार्णवम् ॥ ९ ॥
ततः समुद्रो धर्मात्मा समुत्थाय महाबलः । अब्रवीद्वचनं राजन्नसुरं कालचोदितम् ॥ १० ॥
समर्थो नास्ति ते दातुं युद्धं युद्धविशारद । श्रूयतां त्वभिधास्यामि यस्ते युद्धं प्रदास्यति ॥ ११ ॥
शैलराजो महारण्ये तपस्विशरणं परम् । शंकरश्वशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥ १२ ॥
महाप्रस्रवणोपेतो बहुकंदरनिर्झरः । स समर्थस्तव प्रीतिमतुलां कर्तुमर्हति ॥ १३ ॥
तं भीतमिति विज्ञाय समुद्रमसुरोत्तम । हिमवद्वनमागम्य शरश्चापादिव च्युतः ॥ १४ ॥
ततस्तस्य गिरेः श्वेता गजेन्द्रप्रतिमाः शिलाः । चिक्षेप बहुधा भूमौ दुंदुभिर्विननाद च ॥ १५ ॥
ततः श्वेताम्बुदाकारः सौम्यः प्रीतिकराकृतिः । हिमवानब्रवीद्वाक्यं स्व एव शिखरे स्थितः ॥ १६ ॥
क्लेष्टुमर्हसि मां न त्वं दुन्दुभे धर्मवत्सल । रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणो ह्यहम् ॥ १७ ॥

पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्र तक, दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्र तक, सूर्योदयके पहले ही वालि बिना परिश्रमके चला जाता है और लौट आता है ॥ ४ ॥ बड़े बड़े पर्वतोंके शिखर पकड़ कर वह बली ऊपर फेंक देता है और पुनः लोक लेता है ॥ ५ ॥ अपने बलको आजमाते हुए उस वीरने अनेक मजबूत पेड़ उखाड़ दिए हैं ॥ ६ ॥ कैलाश शिखरके समान ऊँचा दुन्दुभी नामक बड़ा बली राक्षस था, वह हजार हाथियोंका बल रखता था ॥ ७ ॥ वह विशालकाय और दुष्ट अधिक बल होनेके कारण तथा वरदानसे मोहित होकर नदियोंके पति समुद्रके पास गया ॥ ८ ॥ लहरियोंवाले समुद्रमें घुस-कर उसने समुद्रसे युद्ध करनेके लिए कहा ॥ ९ ॥ अनन्तर धर्मात्मा समुद्रने उठकर कालप्रेरित उस राक्षससे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद, मैं तुमसे युद्ध करने योग्य नहीं हूँ । जो तुमसे युद्ध-कर सकता है उसका पता बतलाता हूँ ॥ ११ ॥ पर्वतराज हिमवान् बड़े प्रसिद्ध हैं, वे शंकरके श्वशुर हैं, तपस्वियोंके शरणदाता हैं और घोर जंगलमें रहते हैं ॥ १२ ॥ उनसे बहुतसे सोते और झरने निकलते हैं, उनमें बहुतसी कन्दराएँ हैं । वे ही तुमसे युद्ध करनेके योग्य हैं । वे तुमको खुश कर देंगे ॥ १३ ॥ वह राक्षस समुद्रको भयभीत जानकर धनुषसे छूटे बाणके समान श्वेत हिमवानके वनमें आया ॥ १४ ॥ हिमवान्के हाथियोंके समान श्वेतपत्थरोंको इधर उधर फेंकने लगा और गर्जन करने लगा ॥ १५ ॥ अनन्तर श्वेतमेघके आकारके समान शान्त और प्रसन्न करनेवाली आकृति धारण करके अपने शिखर परसे ही हिमवान बोले ॥ १६ ॥ हे धर्म प्रेमी दुन्दुभी, तुम मुझे क्लेश मत दो । मैं तो युद्ध-विद्यामें निपुण नहीं हूँ । मेरे यहाँ तो केवल तपस्वी रहते हैं ॥ १७ ॥ पर्वतराजकी

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥१८॥
यदि युद्धेऽसमर्थस्त्वं मद्भयाद्वा निरुद्यमः । तमाचक्ष्व प्रदद्यान्मे यो हि युद्धं युयुत्सतः ॥१९॥
हिमवानब्रवीद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः । अनुक्तपूर्वं धर्मात्मा क्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥२०॥
वाली नाम महाप्राज्ञः शक्रपुत्रः प्रतापवान् ।अध्यास्ते वानरः श्रीमान्किष्किन्धामतुलप्रभाम्॥२१॥
स समर्थो महाप्राज्ञस्तव युद्धविशारदः । द्वन्द्वयुद्धं स दातुं ते नमुचेरिव वासवः ॥२२॥
तं शीघ्रमभिगच्छ त्वं यदि युद्धमिहेच्छसि । स हि दुर्मर्षणो नित्यं शूरः समरकर्मणि ॥२३॥
श्रुत्वा हिमवतो वाक्यं कोपाविष्टः स दुन्दुभिः।जगाम तां पुरीं तस्य किष्किन्धां वालिनस्तदा॥२४॥
धारयन्माहिषं वेषं तीक्ष्णश‍ृङ्गो भयावहः । प्रावृषीव महामेघस्तोयपूर्णो नभस्तले ॥२५॥
ततस्तु द्वारमागम्य किष्किन्धाया महाबलः । ननर्द कम्पयन्भूमिं दुन्दुभिर्दुन्दुभिर्यथा ॥२६॥
समीपजान्द्रुमान्भञ्जन्वसुधां दारयन्खुरैः । विषाणेनोल्लिखन्दर्पात्तद्द्वारं द्विरदो यथा ॥२७॥
अन्तःपुरगतो वाली श्रुत्वा शब्दममर्षणः । निष्पपात सह स्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥२८॥
मितं व्यक्ताक्षरपदं तमुवाच स दुन्दुभिम् । हरीणामीश्वरो वाली सर्वेषां वनचारिणाम् ॥२९॥
किमर्थं नगरद्वारमिदं रुद्ध्वा विनर्दसे । दुन्दुभे विदितो मेऽसि रक्ष प्राणान्महाबल ॥३०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रस्य धीमतः । उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥३१॥

यह बात सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर दुन्दुभी बोला ॥ १८ ॥ यदि युद्ध करनेमें तुम असमर्थ हो अथवा भयसे युद्ध करना नहीं चाहते, तो तुम उसका नाम बतलाओ जो मुझसे युद्ध कर सके ॥१९॥ उसकी बात सुनकर बोलनेमें चतुर हिमवानने क्रोध करके उस राक्षससे वह बात कही जो पहले किसीने नहीं कही थी ॥ २० ॥ इन्द्रका पुत्र बड़ा प्रतापी वालि नामका वानर मनोहर किष्किन्धा नगरमें रहता है ॥ २१ ॥ वही बुद्धिमान् तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ हो सकेगा, जैसे नमुचिके साथ युद्धके लिए इन्द्र मिले थे ॥ २२ ॥ यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो शीघ्र तुम उसके पास जाओ, क्योंकि वह युद्धमें बड़ा निपुण है, किसीकी ललकार सहता ही नहीं ॥ २३ ॥ हिमवानके वचन सुनकर वह दुन्दुभी क्रोध करके वालीकी उस किष्किन्धा नगरीकी ओर चला ॥ २४ ॥ भैंसेका उसका वेष था। उसके सींग बड़े तीखे थे। देखनेमें बड़ा भयानक था। वर्षाके समयमें जलपूर्ण आकाशस्थ मेघके समान वह मालूम पड़ता था न ॥ २५ ॥ वह दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वारपर आकर पृथिवी कँपाता हुआ गर्जन करने लगा ॥ २६ ॥ आस पासके वृक्षोंको तोड़ने लगा। खुरोंसे पृथिवीको खुरचने लगा। सींगसे किष्किन्धाके द्वारको हाथीके समान तोड़ने लगा ॥ २७ ॥ वालिने अन्तःपुर में वे शब्द सुने। वह सहसा तारा सहित चन्द्रमाके समान स्त्रियोंके साथ बाहर निकल आया; क्योंकि किसी वीरकी ललकार वह सुन नहीं सकता था ॥ २८ ॥ वानरों तथा अन्य वनचारियोंके स्वामी वालिने दुन्दुभीसे बहुत ही संक्षेपमें कहा ॥ २९ ॥ नगरका द्वार रोककर तुम क्यों गर्ज रहे हो। महाबली दुन्दुभी मैं तुमको जानता हूँ। तुम अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् वानरराजकी बात सुनकर क्रोधसे आँखें लाल कर वह बोला ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंके पास वीरता-सूचक

न त्वं स्त्रीसंनिधौ वीर वचनं वक्तुमर्हसि । मम युद्धं प्रयच्छाद्य ततो ज्ञास्यामि ते बलम् ॥३२॥
अथवा धारयिष्यामि क्रोधमद्य निशामिमाम् । गृह्यतामुदयः स्वैरं कामभोगेषु वानर ॥३३॥
दीयतां संप्रदानं च परिष्वज्य च वानरान् । सर्वशाखामृगेन्द्रस्त्वं संसाधय सुहृज्जनम् ॥३४॥
सुदृष्टां कुरु किष्किन्धां कुरुष्वात्मसमं पुरे । क्रीडस्व च समं स्त्रीभिरहं ते दर्पशासनः ॥३५॥
यो हि मत्तं प्रमत्तं वा भग्नं वा रहितं कृशम् । हन्यात्स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥३६॥
स प्रहस्याब्रवीन्मन्दं क्रोधात्तमसुरेश्वरम् । विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥३७॥
मत्तोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे । मदोऽयं संप्रहारेऽस्मिन्वीरपानं समर्थ्यताम् ॥३८॥
तमेवमुक्त्वा संक्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम् । पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥३९॥
विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसंनिभम् । अविध्यत तदा वाली विनदन्कपिकुञ्जरः ॥४०॥
वाली व्यापादयांचक्रे ननर्द च महास्वनम् । श्रोत्राभ्यामथ रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः ॥४१॥
तयोस्तु क्रोधसंरम्भात्परस्परजयैषिणोः । युद्धं समभवद्धोरं दुन्दुभेर्वालिनस्तथा ॥४२॥
अयुध्यत तदा वाली शक्रतुल्यपराक्रमः । मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः शिलाभिः पादपैस्तथा ॥४३॥
परस्परं घ्नतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा । आसीद्धीनोऽसुरो युद्धे शक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥४४॥

वचन तुमको न कहने चाहिए । मेरे साथ तुम युद्ध करो, तब तुमको मैं बली समझूँ ॥ ३२ ॥ अथवा आज रात भर मैं अपना क्रोध रोक रक्खूँगा । उदय होने तकका समय तुम काम भोगके लिए ले लो अर्थात् कल प्रातःकाल तककी अवधि में तुमको देता हूँ ॥ ३३ ॥ वानरोंको आलिंगन करके जिसको जो देना हो दो, क्योंकि तुम सब वानरोंके अधिपति हो । मित्रोंको सन्तुष्ट कर लो ॥ ३४ ॥ किष्किन्धाको अच्छी तरह देख लो । इसका राजा किसीको बना दो । स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनी हो कर लो । यह सब सूर्योदय के पहले ही तक कर लो; क्योंकि मैं तुम्हारा गर्व चूर करनेके लिए उपस्थित हूँ ॥ ३५ ॥ जो नशा आदिसे मत्त, असावधान, भागते हुए, अस्त्र हीन और दुर्बलको मारता है तथा स्त्रियोंको साथ रहनेवाले तुम्हारे समान मनुष्यको मारता है, उसे भ्रूण-हत्याका पाप लगता है ॥ ३६ ॥ तारा आदि स्त्रियोंको हटाकर वाली उस मूर्ख राक्षससे क्रोधपूर्वक हँसकर बोला, ॥ ३७ ॥ यदि तुम युद्धमें नहीं डरते हो तो मुझे स्त्रियोंके साथ रहनेवाला मत्त मत समझो । किन्तु इस मदको तुम वीरपान समझो, अर्थात् यह स्त्रियोंका संग युद्धके पहले होनेवाले, युद्धोद्दीपक पानके समान समझो ॥ ३८ ॥ क्रोधपूर्वक उससे ऐसा कहकर अपने पिता इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला उतारकर वह युद्धके लिए तयार हुआ । पर्वतके समान उस दुन्दुभीके सींग पकड़कर वह उसे घुमाने लगा और गर्जन करने लगा ॥ ४० ॥ वालीने उसे पटक दिया और घोर गर्जन किया । पृथिवीपर गिराए जानेसे दुन्दुभीके कानोंसे रक्त बहने लगा ॥ ४१ ॥ क्रोधके कारण परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले वाली और दुन्दुभी उन दोनोंका भयानक युद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ उस समय इन्द्रके समान पराक्रमी वालीने उसकेसाथ मुक्कों, घुटनों, पैरों, पत्थरों और वृक्षोंसे युद्ध किया ॥ ४३ ॥ उस युद्धमें परस्पर प्रहार करते हुए असुरका बल कम पड़ने लगा औ वानरका बल अधिक ॥ ४४ ॥ उस प्राण

तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत् । युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥४५॥
स्रोतोभ्यो बहु रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः । पपात च महाबाहुः क्षितौ पञ्चत्वमागतः ॥४६॥
तं तोलयित्वा बाहुभ्यां गतसत्त्वमचेतनम् । चिक्षेप वेगवान्वाली वेगेनैकेन योजनम् ॥४७॥
तस्य वेगप्रविद्धस्य वक्त्रात्क्षतजबिन्दवः । प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्ता मतङ्गस्याश्रमं प्रति ॥४८॥
तान्दृष्ट्वा पतितांस्तत्र मुनिः शोणितविप्रुषः । क्रुद्धस्तस्य महाभाग चिन्तयामास कोन्वयम् ॥४९॥
येनाहं सहसा स्पृष्टः शोणितेन दुरात्मना । कोऽयं दुरात्मा दुर्बुद्धिरकृतात्मा च बालिशः॥५०॥
इत्युक्त्वा स विनिष्क्रम्य ददृशे मुनिसत्तमः । महिषं पर्वताकारं गतासुं पतितं भुवि ॥५१॥
स तु विज्ञाय तपसा वानरेण कृतं हि तत् । उत्ससर्ज महाशापं क्षेप्तारं वानरं प्रति ॥५२॥
इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य वधो भवेत् । वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रुधिरस्रवैः ॥५३॥
क्षिपता पादपाश्चेमे संभग्नाश्चासुरीं तनुम् । समन्तादाश्रमं पूर्णं योजनं मामकं यदि ॥५४॥
आक्रमिष्यति दुर्बुद्धिर्व्यक्तं स नभविष्यति । ये चास्य सचिवाः केचित्संश्रिता मामकं वनम्॥५५॥
न च तैरिह वस्तव्यं श्रुत्वा यान्तु यथासुखम् । तेऽपि वा यदि तिष्ठन्ति शपिष्ये तानपिध्रुवम्॥५६॥
वनेऽस्मिन्मामके नित्यं पुत्रवत्परिरक्षिते । पत्राङ्कुरविनाशाय फलमूलाभवाय च ॥५७॥
दिवसश्चाद्य मर्यादा यं द्रष्टा श्वोऽस्मि वानरम् । बहुवर्षसहस्राणि स वै शैलो भविष्यति ॥५८॥

हरण करनेवाले युद्धमें वालीने दुन्दुभीको उठाकर पृथिवीपर पटक दिया और उसे पीस डाला ॥४५॥ गिरते समय उसकी नाक कान आदिसे बहुतसा खून बहा और वह मर गया ॥ ४६ ॥ मरे हुए उसको हाथोंसे उठाकर वालीने बड़े वेगसे एक योजनपर फेंक दिया ॥ ४७ ॥ वेगसे फेंके हुए उस दुन्दुभीके मुँहसे निकले रुधिरके विन्दु हवासे उड़कर मतंगके आश्रमपर पड़े ॥ ४८ ॥ गिरे रुधिरके विन्दुओंको देखकर मुनिने बहुत क्रोध किया । और सोचने लगे ये रुधिर-विन्दु फेंकनेवाला कौन है ॥ ४९ ॥ किस दुरात्माने रुधिरके बिन्दुसे मुझे छू दिया ? यह कौन दुरात्मा है ? यह कौन बुद्धि हीन, उन्मत्त और मूर्ख है ? ॥५०॥ ऐसा कहकर अपने आश्रमसे निकलकर मुनिने पर्वतके समान मृत और भूमिमें पड़े हुए एक भैंसेको देखा ॥ ५१ ॥ तपस्याके प्रभावसे मुनिने जाना कि यह एक वानरका किया हुआ है । अतएव फेंकनेवाले वानरको उन्होंने शाप दिया ॥ ५२ ॥ यहाँ वह नहीं आसकता । यदि आवेगा तो मर जायगा, क्योंकि मेरे रहनेके वनको रुधिरके छींटे डालकर उसने अपवित्र किया है ॥ ५३ ॥ राक्षसके शरीरको फेंकते हुए जिसने इन वृक्षोंको तोड़ा है, वह यदि मेरे आश्रमके आस पास एक योजन तक आवेगा तो अवश्य ही वह न रहेगा । अर्थात् वह नष्ट हो जायगा । उसका यदि कोई सचिव मेरे इस वनमें रहा हो तो उन्हें भी यहाँ नहीं रहना चाहिए । वे सुखपूर्वक यहाँसे चले जाँय । यदि वे नहीं जायँगे तो निश्चय उनको भी मैं शाप दूँगा ॥ ५४, ५५, ५६ ॥ इस वनकी पुत्रके समान मैंने रक्षा की है । इसके पत्ते अंकुर फल मूल आदिके नाशके लिए जो कोई यहाँ रहेगा उसको मैं अवश्य शाप दूंगा ॥५७॥ आजसे लेकर भविष्यमें वालिके पक्षवाले जिस वानरको मैं यहाँ

ततस्ते वानराः श्रुत्वा गिरं मुनिसमीरिताम् । निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात्तान्दृष्ट्वा वालिरब्रवीत् ॥५९॥
किं भवन्तः समस्ताश्च मतङ्गवनवासिनः । मत्समीपमनुप्राप्ता अपि स्वस्ति वनौकसाम् ॥६०॥
ततस्ते कारणं सर्वं तथा शापं च वालिनः । शशंसुर्वानराः सर्वे वालिने हेममालिने ॥६१॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाली वचनं वानरेरितम् । स महर्षिं समासाद्य याचते स्म कृताञ्जलिः ॥६२॥
महर्षिस्तमनादृत्य प्रविवेशाश्रमं प्रति । शापधारणभीतस्तु वाली विह्वलतां गतः ॥६३॥
ततः शापभयाद्भीतो ऋष्यमूकं महागिरिम् । प्रवेष्टुं नेच्छति हरिर्द्रष्टुं वापि नरेश्वर ॥६४॥
तस्याप्रवेशं ज्ञात्वाहमिदं राम महावनम् । विचरामि सहामात्यो विषादेन विवर्जितः ॥६५॥
एषोऽस्थिनिचयस्तस्य दुन्दुभेः संप्रकाशते । वीर्योत्सेकान्निरस्तस्य गिरिकूटनिभो महान् ॥६६॥
इमे च विपुलाः सालाः सप्त शाखावलम्बिनः । यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥६७॥
एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् । कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥६८॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् । कस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम् ॥६९॥
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान्पुरा । एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥७०॥
रामो निर्दारयेदेषां बाणेनैकेन च द्रुमम् । वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥७१॥

देखूँगा वह बहुत वर्षोंके लिए पत्थर हो जायगा ॥ ५८ ॥ मुनिकी कही बात सुनकर वालि पक्षके वे सब वानर उस वनसे निकल गए। उनको देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥ मतंग वनमें रहनेवाले आप सब वानर मेरे पास क्यों आए ? कुशल तो है ? ॥ ६० ॥ वानरोंने सब कारण तथा वालिको मुनिका दिया हुआ शाप आदि सब बातें, सोनेकी माला पहननेवाले वालिसे कहीं ॥ ६१ ॥ वानरोंकी बातें सुनकर वालि मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा ॥ ६२ ॥ वालिकी ओर बिना देखे महर्षि अपने आश्रममें चले गए और शापके भयसे वालि व्याकुल होगया ॥ ६३ ॥ शापके भयसे भीत होकर वालि न तो ऋष्यमूक पर्वतपर आता है और न उसे देखना चाहता है ॥ ६४ ॥ वह यहाँ नहीं आसकता, यही जानकर अपने सचिवोंके साथ निर्भय होकर मैं इस वनमें रहता हूँ ॥ ६५ ॥ उस दुन्दुभीकी हड्डियोंका यह ढेर है जो पर्वत-शिखरके समान मालूम होता है और अधिक बलके कारण जिसे वालिने यहाँ फेंका था ॥ ६६ ॥ ये शालके मोटे सात वृक्ष हैं जिनकी शाखायें चारो ओर फैली हुई हैं। एकही समय इनको हिलाकर वालि इनके पत्ते गिरा सकता है। अर्थात् वह वायुसे भी अधिक बलवान् है ॥ ६७ ॥ रामचन्द्र, यह वालिका अतुलनीय पराक्रम है जो मैंने आपको सुनाया। उस वालिको आप युद्धमें कैसे मार सकेंगे ॥ ६८ ॥ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर हँसते हुए लक्ष्मण बोले—क्या करनेसे आपको विश्वास होगा कि रामचन्द्र वालिका वध कर सकेंगे ॥ ६९ ॥ सुग्रीवने लक्ष्मणसे कहा—पहले इन शालवृक्षोंमेंके एक-एक पेड़को अनेक वार वालिने वेधा है ॥७०॥ रामचन्द्र यदि इन वृक्षोंमेंसे किसी एक वृक्षको एक बाण मारकर फाड़ दें, तब मैं समझूँ कि रामचन्द्र अपने पराक्रमसे वालिका वध कर सकेंगे ॥ ७१ ॥ मृत महिषासुरकी हड्डीको

हतस्य महिषस्यास्थि पादेनैकेन लक्ष्मण । उद्यम्य प्रक्षिपेच्चापि तरसा द्वे धनुःशते ॥७२॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवो रामं रक्तान्तलोचनः । ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥७३॥
शूरश्च शूरमानी च प्रख्यातबलपौरुषः । बलवान्वानरो वाली संयुगेष्वपराजितः ॥७४॥
दृश्यन्ते चास्य कर्माणि दुष्कराणि सुरैरपि । यानि संचिन्त्य भीतोऽहमृष्यमूकमुपाश्रितः ॥७५॥
तमजय्यमधृष्यं च वानरेन्द्रममर्षणम् । विचिन्तयन्नमुं चापि ऋष्यमूकममुं त्वहम् ॥७६॥
उद्विग्नः शङ्कितश्चाहं विचरामि महावने । अनुरक्तैः सहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥७७॥
उपलब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल । त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥७८॥
किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः । अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥७९॥
न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये । कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम ॥८०॥
कामं राघव ते वाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः । सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥८१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य महात्मनः । स्मितपूर्वमतो रामः प्रत्युवाच हरिं प्रति ॥८२॥
यदि न प्रत्ययोऽस्मासु विक्रमे तव वानर । प्रत्ययं समरे श्लाघ्यमहमुत्पादयामि ते ॥८३॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सान्त्वयँल्लक्ष्मणाग्रजः । राघवो दुन्दुभेः कायं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ॥८४॥

एक पैरसे उठाकर दो सौ धनुषकी दूरीपर यदि रामचन्द्र फेंक दें तो मैं समझूँ कि रामचन्द्र वालिका वध कर सकेंगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार कहकर और आँखके कोने लालकर सुग्रीवने थोड़ी देर विचार किया और पुनः वे रामचन्द्रसे बोले ॥७३॥ वालि शूर है, और अपनेको शूर समझनेवाला है। उसके पराक्रमकी प्रसिद्धि है। वह बली है, युद्धोंमें उसका पराजय नहीं हुआ है ॥७४॥ देवताओंके उन दुष्कर कामोंको भी यह कर देता है जिन कामोंको सोचकर भयसे मैं ऋष्यमूक पर्वतपर आया हूँ ॥७५॥ न जीतने योग्य और क्षमा न करनेवाले वानरेन्द्र वालिको सोचकर मैं इस ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड़ता ॥७६॥ उद्विग्न और शंकित होकर हनुमान आदि अपने श्रेष्ठ सचिवोंके साथ इसी वनमें घूमा करता हूँ ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल, अब मुझे श्लाघनीय सन्मित्र मिल गए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैंने हिमालयके समान आपका आश्रय ग्रहण किया है ॥ ७८ ॥ किन्तु उस बलवान अपने बुरे भाईका बल मैं जानता हूँ, और आपके बलका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥ ७९ ॥ मैं आपके बलकी परीक्षा नहीं करता। मैं आपका तिरस्कार नहीं करता। मैं आपको डरवाता नहीं। किन्तु वालिके भयंकर कर्मोंको देखकर मैं शंकित हो गया हूँ ॥ ८० ॥ रामचन्द्र, आपकी वाणी, आपके शरीरकी ऊँचाई, आपकी धीरता और आपका आकार ये सब भस्ममें छिपे आगके समान आपके तेजको सूचित करते हैं ॥८१॥ महात्मा सुग्रीवके वे वचन सुनकर रामचन्द्र हँसकर उससे ये वचन बोले ॥ ८२ ॥ यदि हमारे पराक्रमका तुम्हें विश्वास नहीं है तो युद्धमें मैं अपने पराक्रमका विश्वास करा दूँगा ॥ ८३ ॥ ऐसा कहकर सुग्रीवको धैर्य देते हुए रामचन्द्रने दुन्दुभीके शरीरको विना परिश्रम पैरके अँगूठेसे उठाकर दस योजनपर फेंक दिया। राक्षसके सूखे शरीरको बलवान रामचन्द्रने पैरके अंगूठेसे फेंक दिया। इसे देखकर सुग्रीव रामचन्द्रसे वानरोंके

तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम् । असुरस्य तनुं शुष्कां पादाङ्गुष्ठेन वीर्यवान् ॥८५॥
क्षिप्तं दृष्ट्वा ततः कायं सुग्रीवः पुनरब्रवीत् । लक्ष्मणस्याग्रतो रामं तपन्तमिव भास्करम् ॥
हरीणामग्रतो वीरमिदं वचनमर्थवत् । ॥८६॥
आर्द्रः समांसः प्रत्यग्रः क्षिप्तः कायः पुरा सखे । परिश्रान्तेन मत्तेन भ्रात्रा मे वालिना तदा ॥८७॥
लघुः संप्रति निर्मांसस्तृणभूतश्च राघव । क्षिप्त एवं प्रहर्षेण भवता रघुनन्दन ॥८८॥
नात्र शक्यं बलं ज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम् । आर्द्रं शुष्कमिति ह्येतत्सुमहद्राघवान्तरम् ॥८९॥
स एव संशयस्तात तव तस्य च यद्बलम् । सालमेकं विनिर्भिद्य भवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥९०॥
कृत्वैतत्कार्मुकं सज्यं हस्तिहस्तमिवापरम् । आकर्णपूर्णमायम्य विसृजस्व महाशरम् ॥९१॥

इमं हि सालं प्रहितस्त्वया शरो न संशयोऽत्रास्ति विदारयिष्यति ।
अलं विमर्शेन मम प्रियं ध्रुवं कुरुष्व राजन्प्रतिशापितो मया ॥९२॥
यथा हि तेजःसु वरः सदा रविर्यथा हि शैलो हिमवान्महाद्रिषु ।
यथा चतुष्पत्सु च केसरी वरस्तथा नराणामसि विक्रमे वरः ॥९३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११॥



सामने अर्थयुक्त वचन पुनः बोला, उस समय रामचन्द्र लक्ष्मणके आगे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८४, ८५, ८६ ॥ मित्र, युद्धसे थके हुए मेरे भाईने जो राक्षसका शरीर फेंका था उसमें माँस था, वह गीला होनेसे भारी था और तत्कालका मरा हुआ था ॥ ८७ ॥ रामचन्द्र आप इस समय प्रसन्न हैं, आपने जो हड्डियाँ फेंकी हैं वे माँसहीन हैं अतएव घासके समान हल्की होगयी हैं ॥ ८८ ॥ इससे यह नहीं जाना जा सकता कि आपका बल अधिक है कि उसका, क्योंकि गीले और सूखेमें बड़ा भारी अन्तर होता है ॥ ८९ ॥ तात, अतएव आपके और उसके बलका सन्देह अभी दूर नहीं हुआ। यदि आप एक शालके वृक्षको भेद दें तो मुझे बलाबलका निश्चय हो जाय ॥ ९० ॥ हाथीके सूँडके समान इस धनुषपर डोरी चढ़ा दीजिए और कानतक खींचकर बाण छोड़िए ॥ ९१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आपका छोड़ा हुआ बाण उस शाल वृक्षको भेद देगा। विचार न कीजिए। यह मेरा प्रिय आप अवश्य करें। मैं अपनी शपथ देता हूँ ॥ ९२ ॥ जैसे तेजोंमें सूर्य सर्वश्रेष्ठ है, पर्वतोंमें हिमवान् सर्वश्रेष्ठ है, पशुओंमें सिंह सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही मनुष्योंमें आप सबसे अधिक पराक्रमी हैं ॥९३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥



द्वादशः सर्गः १२

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम्॥ १ ॥
स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः । सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन्स रवैर्दिशः ॥ २ ॥
स विसृष्टो बलवता वाणः स्वर्णपरिष्कृतः । भित्त्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह॥ ३ ॥
सायकस्तु मुहूर्तेन तालान्भित्त्वा महाजवः । निष्पत्य च पुनस्तूर्णं तमेव प्रविवेश ह ॥ ४ ॥
तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः । रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ५ ॥
स मूर्ध्ना न्यपतद्भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः । सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः । रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥
सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ । समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥ ८ ॥
येन सप्त महाताला गिरिर्भूमिश्च दारिता । बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः॥ ९ ॥
अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम । सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥१०॥
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् । वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥११॥
ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः ॥१२॥
अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः । गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम्॥१३॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यतिष्ठन्गहने वने ॥१४॥

सुग्रीवका यह सुन्दर वचन सुनकर उसके विश्वासके लिए तेजस्वी रामचन्द्रने धनुष उठाया ॥१॥ अपना विशाल धनुष और एक बाण लेकर शाल वृक्षको लक्ष्य कर एक बाण मारा । उसके शब्दसे दिशाएँ गूँज गयीं ॥ २ ॥ बलवान् रामचन्द्रके द्वारा फेंका गया सुवर्ण-मण्डित वह बाण तालोंको भेद-कर पर्वत और पृथिवीको फोड़ता हुआ पातालमें चला गया ॥ ३ ॥ रामचन्द्रका वह वेगवान् बाण एक ही मुहूर्तमें सात तालोंको भेदकर पुनः उनके तरकशमें लौट आया ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सात शाल वृक्षोंको रामचन्द्रके बाणसे फटे देखकर बहुत विस्मित हुआ ॥५॥ हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नता-से सुग्रीवने रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इस कामसे प्रसन्न होकर सुग्रीव धर्मात्मा अस्त्र-शस्त्र जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ वीर रामचन्द्रसे बोला ॥ ७ ॥ देवताओंके साथ इन्द्रको भी रणमें आप बाणोंसे मार सकते हैं, फिर वालिकी कौन बात ॥ ८ ॥ जिसने सात बड़े-बड़े शाल वृक्षोंको, पर्वत और भूमिको एक बाणसे भेद दिया, उसके सामने युद्धमें कौन ठहर सकता है ॥ ९ ॥ महेन्द्र और वरुणके समान आपको मित्र पाकर आज मेरा सब शोक दूर होगया । मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १० ॥ रामचन्द्र, मैं हाथ जोड़ता हूँ । मेरी प्रसन्नताके लिए भाईके रूपमें मेरे शत्रुका आजही आप वध करें ॥ ११ ॥ अनन्तर देखनेमें प्रिय सुग्रीवका रामचन्द्रने आलिंगन किया और वे लक्ष्मणकी ओर देखकर बोले ॥ १२ ॥ हमलोग शीघ्र यहाँसे किष्किन्धा चलते हैं । तुम आगे चलो और भाई कहेजानेवाले वालिको बुलाओ ॥ १३ ॥ वे सब वहाँसे वालिकी नगरी किष्किन्धामें गए

सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् । गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥१५॥
तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः । निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ॥१६॥
ततः स तुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् । गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥१७॥
तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः । जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्च्छितौ ॥१८॥
ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत । अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥१९॥
यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः । ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना । अपश्यन्राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥२१॥
क्लान्तो रुधिरसिक्ताङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः । वालिनाभिद्रुतः क्रोधात्प्रविवेश महावनम् ॥२२॥
तं प्रविष्टं वनं दृष्ट्वा वाली शापभयात्ततः । मुक्तो ह्यसि त्वमित्युक्त्वा स निवृत्तो महाबलः ॥२३॥
राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता । तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥२४॥
तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् । ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥२५॥
आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् । वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम् ॥२६॥
तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः । वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥२७॥

और गहन वनमें वृक्षोंसे अपनेको छिपाकर बैठे ॥ १४ ॥ सुग्रीव लँगोट बाँधे हुए था। वालिको बुलानेके लिए वह घोर गर्जन करने लगा। उसके शब्दसे मानों आकाश फटा पड़ता था ॥ १५ ॥ भाईका वह गर्जन सुनकर महाबली वालि क्रोध करके युद्धके लिए शीघ्र ही आ गया, मानों अस्ताचल-से सूर्य उतरा हो ॥ १६ ॥ वालि और सुग्रीवका ऐसा घोर युद्ध हुआ मानों आकाशमें बुध और मंगल ग्रहोंका भयानक युद्ध हो रहा हो ॥ १७ ॥ दोनों भाई बड़े क्रोधसे वज्रके समान हाथ और पैरोंसे तथा मुक्कों से परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ धनुषधारी रामचन्द्रने इन दोनोंको देखा । दोनों वीर समान थे। अश्विनी कुमारोंके समान उनमें कुछ भी भेद नहीं मालूम पड़ता था ॥१९॥ इसमें कौन सुग्रीव है और कौन वालि है यह रामचन्द्र जान न सके। अतएव उन्होंने बाण नहीं चलाया ॥२०॥ इसी समय वालिने सुग्रीवको भगा दिया। सुग्रीव अपने स्वामी रामचन्द्रको वहाँ न देखकर ऋष्यमूककी ओर दौड़ा ॥ २१ ॥ वह थक गया था। रुधिरसे उसका समूचा शरीर भींग गया था और आघातोंसे वह व्याकुल था। वालिने क्रोध करके उसका पीछा किया और वह ऋष्यमूकके जंगलमें घुस गया ॥२२॥ सुग्रीव वनमें चला गया, यह देखकर वालिने कहा–जाओ, मैंने तुम्हें छोड़ दिया और शापके भयसे वह वहाँसे लौट आया ॥२३॥ रामचन्द्र भी भाई और हनुमानके साथ उसी वनमें लौट आए, जहाँ सुग्रीव थे ॥ २४ ॥ लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको आया देखकर सुग्रीव लज्जित हुआ और पृथ्वीकी ओर ताकता हुआ बोला ॥ २५ ॥ आपने वालिको बुलानेके लिए कहा, उसका वध करनेमें समर्थ अपना पराक्रम भी दिखलाया, फिर शत्रुसे आपने मुझे पिटवाया, महराज ! आपने यह क्या किया ॥ २६ ॥ रामचन्द्र, यदि उसी समय आप ठीक-ठीक कह देते कि मैं वालिको न मारूँगा तो मैं यहाँ से जाता ही

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥२८॥
सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् । कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः॥२९॥
अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च । त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥३०॥
स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर । विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥३१॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम । नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥३२॥
जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः । मूलघातो न नौ स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया॥३३॥
त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया । मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥३४॥
दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् । अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥३५॥
त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् । तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥३६॥
एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे । निरस्तमिषुणैकेन चेष्टमानं महीतले ॥३७॥
अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर । येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥३८॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् । कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥३९॥
ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् । लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥४०॥
स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया । मालयेव बलाकानां ससंध्य इव तोयदः ॥४१॥

नहीं ॥ २७ ॥ महात्मा सुग्रीवके इस प्रकारके दीन वचन सुनकर रामचन्द्र दयापूर्वक पुनः बोले ॥ २८ ॥ भाई सुग्रीव, क्रोध दूर करो। वह कारण सुनो जिससे मैंने अपना बाण नहीं छोड़ा ॥ २९ ॥ गहनोंसे, वेषसे, ऊँचाईसे तथा गमनसे तुम दोनों समान हो ॥ ३० ॥ स्वर, तेज, दृष्टि, विक्रम या वचन इनसे तुम लोगोंका भेद मुझे मालूम न पड़ा। मैं जान नहीं सका कि कौन सुग्रीव है और कौन वालि ॥ ३१ ॥ इसी रूप-सादृश्यसे मोहित होकर मैंने शत्रुसंहारकारी अपना बाण नहीं छोड़ा ॥३२॥ इसी रूप-सादृश्यकी आशंकासे मैं रुक गया। मैंने सोचा कहीं हम दोनोंके मूलका ही नाश न होजाय। कहीं गलतीसे मैं तुम्हींको मार देता तो क्या होता ॥ ३३ ॥ हे वीर, मेरे अज्ञान या जल्दीबाजीके कारण यदि तुम मारे जाते तो मेरी मूर्खता और मेरा लड़कपन ही समझा जाता ॥ ३४ ॥ जिसको अभय दिया जाय उसका वध करना बड़ा भारी पाप है। मैं, लक्ष्मण और सीता इस समय तुम्हारे अधीन हैं। इस वनमें तुम्हीं हम लोगोंके रक्षक हो। तुम शंका न करो। पुनः युद्ध करो ॥ ३५, ३६ ॥ इसी समय युद्धमें मेरे एक बाणसे वालिको पृथिवीमें लोटते हुए तुम देखोगे ॥ ३७ ॥ वालिके साथ युद्ध करते समय जिससे मैं तुम्हें पहिचान सकूँ इसका कोई चिन्ह बना लो ॥ ३८ ॥ लक्ष्मण महात्मा सुग्रीवके गलेमें सुलक्षण यह विकसित गजपुष्पी लता पहना दो ॥ ३९ ॥ अनन्तर पर्वत पर उत्पन्न फूलोंवाली गजपुष्पी लता लेकर लक्ष्मणने सुग्रीवके गलेमें पहना दी ॥ ४० ॥ उस लताके गलेमें पड़नेसे सुग्रीव बहुत ही शोभित हुए। बगुलोंकी पंक्तिसे युक्त

विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः । जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप सः ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशः सर्ग ॥१२॥



त्रयोदशः सर्गः १३

ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः। जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥
समुद्यम्य महच्चापं रामः काञ्चनभूषितम् । शरांश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वा रणसाधकान् ॥ २ ॥
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः । सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ३ ॥
पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् । तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः ॥ ४ ॥
ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः । प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरंगमाः ॥ ५ ॥
कंदराणि च शैलांश्च निर्दराणि गुहास्तथा । शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥
वैदूर्यविमलैस्तोयैः पद्मैश्चाकोशकुड्मलैः । शोभितान्सजलान्मार्गे तटाकांश्चावलोकयन् ॥ ७ ॥
कारण्डैः सारसैर्हंसैर्वञ्जुलैर्जलकुक्कुटैः । चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैः प्रतिनादितान् ॥ ८ ॥
मृदुशष्पाङ्कुराहारान्निर्भयान्वनचारिणः । चरतः सर्वतः पश्यन्स्थलीषु हरिणान्स्थितान् ॥ ९ ॥

सायंकालीन मेघके समान वे मालूम पड़े ॥ ४१ ॥ शरीरसे सुन्दर दिखाई पड़नेवाले, रामचन्द्रके वचनोंसे सावधान होकर सुग्रीव उनके साथ चले और पुनः किष्किन्धा नगरीमें आए ॥ ४२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त।



वालिके पराक्रमसे पालित किष्किन्धा नगरीमें धर्मात्मा रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वतसे सुग्रीवके साथ आए ॥ १ ॥ रणमें सफलता देनेवाले और सूर्यके समान चमकीले बाण तथा सोना मढ़ा हुआ अपना बड़ा धनुष लेकर रामचन्द्र आगे चले ॥ २ ॥ महात्मा रामचन्द्रके पीछे सुग्रीव और महाबली लक्ष्मण चले ॥ ३ ॥ उनके पीछे वीर हनुमान, नल, नील, तार तथा अन्य महाबली वानर दल-पतियोंके सेनापति चले ॥ ४ ॥ पुष्प-भारसे नम्र वृक्षोंको और समुद्र तक जानेवाली प्रसन्न सलिला नदियोंको देखते हुए चले ॥ ५ ॥ कन्दराएँ, पर्वत, निर्झर, गुहा, मुख्य-मुख्य शिखर तथा भयानक गुफाएँ देखते हुए वे लोग चले ॥ ६ ॥ रास्तेमें उनलोगोंने जलसे पूर्ण तालाब देखे, जिनके जल वैदूर्यके समान विमल थे और कमलकी कोढ़ियाँ जिनमें खिली थीं ॥ ७ ॥ कारण्ड, सारस, हंस, जलकुक्कुट, चक्रवाक तथा अन्य पक्षियोंके शब्दसे वे तालाब प्रतिध्वनित होरहे थे ॥ ८ ॥ निर्भय होकर वनमें घूमनेवाले हरिणोंको मैदानमें बैठकर कोमल घास खाते उन लोगोंने देखा ॥ ९ ॥

तटाकवैरिणश्चापि शुक्लदन्तविभूषितान् । घोरानेकचरान्वन्यान्द्विरदान्कूलघातिनः ॥१०॥
मत्तान्गिरितटोद्घुष्टान्पर्वतानिव जङ्गमान् । वानरान्द्विरदप्रख्यान्महीरेणुसमुक्षितान् ॥११॥
वने वनचरांश्चान्यान्खेचरांश्च विहङ्गमान् । पश्यन्तस्त्वरिता जग्मुः सुग्रीववशवर्तिनः ॥१२॥
तेषां तु गच्छतां तत्र त्वरितं रघुनन्दनः । द्रुमषण्डवनं दृष्ट्वा रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥१३॥
एष मेघ इवाकाशे वृक्षषण्डः प्रकाशते । मेघसंघातविपुलः पर्यन्तकदलीवृतः ॥१४॥
किमेतज्ज्ञातुमिच्छामि सखे कौतूहलं मम । कौतूहलापनयनं कर्तुमिच्छाम्यहं त्वया ॥१५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । गच्छन्नेवाचचक्षेऽथ सुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥१६॥
एतद्राघव विस्तीर्णमाश्रमं श्रमनाशनम् । उद्यानवनसंपन्नं स्वादुमूलफलोदकम् ॥१७॥
अत्र सप्तजना नाम मुनयः शंसितव्रताः । सप्तैवासन्नधःशीर्षा नियतं जलशायिनः ॥१८॥
सप्तरात्रे कृताहारा वायुनाचलवासिनः । दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः ॥१९॥
तेषामेतत्प्रभावेण द्रुमप्राकारसंवृतम् । आश्रमं सुदुराधर्षमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥२०॥
पक्षिणो वर्जयन्त्येतत्तथान्ये वनचारिणः । विशन्ति मोहाद्येऽप्यत्र न निवर्तन्ति ते पुनः ॥२१॥
विभूषणरवाश्चात्र श्रूयन्ते सकलाक्षराः । तूर्यगीतस्वनश्चापि गन्धो दिव्यश्च राघव ॥२२॥
त्रेताग्नयोऽपि दीप्यन्ते धूमो ह्येष प्रदृश्यते । वेष्टयन्निव वृक्षाग्रान्कपोताङ्गारुणो घनः ॥२३॥

सफेद दाँतवाले और अकेले चलनेवाले विशाल जंगली हाथियोंको उन लोगोंने देखा जो तालाबके घाटोंको तोड़ देते हैं ॥ १० ॥ मतवाले पर्वत तटको तोड़नेवाले जंगम पर्वतोंके समान वानरोंको उन लोगोंने देखा, जो हाथीके समान ऊँचे थे और जिनके शरीर धूलसे भरे हुए थे ॥११॥ उस वनमें अनेक वनचरों तथा आकाशमें चलनेवाले पक्षियोंको देखते हुए वे लोग शीघ्रतापूर्वक चले क्योंकि वे सुग्रीवके अधीन थे और सुग्रीवको बड़ी जल्दी थी ॥१२॥ शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाते हुए, वृक्षोंसे घिरे बनको देखकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले, ॥१३॥ अकाशमें मेघके समान वृक्षोंका समूह दिखलाई पड़ता है । इसपर मेघ फैले हुए हैं और केलेके वृक्षोंसे चारों ओर से यह घिरा हुआ है ॥१४॥ मित्र यह क्या है ? जाननेका मुझे बड़ा कुतूहल है । मैं चाहता हूँ कि आप मेरे इस कुतूहलको दूर करें ॥१५॥ महात्मा रामचन्द्रके वचन सुनकर चलतेही चलते सुग्रीवने उस वनके सम्बन्ध में कहा ॥१६॥ रामचन्द्र थकावट दूर करनेवाला वह आश्रम बहुत लम्बा चौड़ा है, इसमें उपवन हैं और वन हैं । इसमें मीठे फल और जल हैं ॥१७॥ इसमें प्रसिद्ध व्रतधारी सप्तजन नामक सात मुनि थे, वे जलमें नीचे सिर करके रहते थे॥१८॥ सात रात बीतनेपर वे एक बार वायुका आहार करते थे और वे सात सौ वर्षोंके पश्चात् सशरीर स्वर्ग गए ॥१९॥ उन्हीं के प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंकी चारदिवारोंसे सुरक्षित है । इन्द्र आदि देवताभी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते ॥२०॥ पक्षी तथा अन्य वनचारी इस आश्रममें नहीं जाते । यदि कोई मोहवश जाता भी है तो लौटकर नहीं आता ॥२१॥ यहाँ गहनों के शब्द सुनाई पड़ते हैं, स्पष्ट गाने बजानेका भी शब्द सुनाई पड़ता है ॥२२॥ अलौकिक गन्ध मालूम पड़ती है ॥२५॥ अग्निहोत्रकी तीनों अग्नियाँ यहाँ जलती हैं, जिनका कपोतके शरीरके समान यह धूम्र बादल होकर वृक्षोंको वेष्टित कर रहा

एते वृक्षाः प्रकाशन्ते धूमसंसक्तमस्तकाः । मेघजालप्रतिच्छन्ना वैदूर्यगिरयो यथा ॥२४॥
कुरु प्रणामं धर्मात्मंस्तेषामुद्दिश्य राघव । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रयतः संहताञ्जलिः ॥२५॥
प्रणमन्ति हि ये तेषामृषीणां भावितात्मनाम् । न तेषामशुभं किंचिच्छरीरे राम विद्यते ॥२६॥
ततो रामः सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन कृताञ्जलिः । समुद्दिश्य महात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥२७॥
अभिवाद्य स धर्मात्मा रामो भ्रात्रा च लक्ष्मणः। सुग्रीवो वानराश्चैव जग्मुः संहृष्टमानसाः ॥२८॥
ते गत्वा दूरमध्वानं तस्मात्सप्तजनाश्रमम् । ददृशुस्तां दुराधर्षां किष्किन्धां वालिपालिताम्॥२९॥

ततस्तु रामानुजरामवानराः प्रगृह्य शस्त्राण्युदितोग्रतेजसः ।
पुरीं सुरेशात्मजवीर्यपालितां वधाय शत्रोः पुनरागतास्त्विह ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम्। वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥ १ ॥
विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः । सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥
ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् । परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ३ ॥

॥ २३ ॥ इन वृक्षोंके शिखर धूमसे भर गए हैं, अतएव ये उन वैदूर्य पर्वतके समान मालूम पड़ते हैं जिनके शिखर मेघों से ढँक गए हों ॥२४॥ धर्मात्मन् रामचन्द्र, भाई लक्ष्मणके साथ हाथ जोड़कर उन ऋषियोंको आप प्रणाम करें ॥२५॥ ब्रह्मज्ञानी इन ऋषियोंको जो प्रणाम करते हैं उनके शरीरका कोई अनिष्ट नहीं होता ॥२६॥ रामचन्द्रने भाई लक्ष्मणके साथ हाथ जोड़कर महात्मा ऋषियोंके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए प्रणाम किया ॥२७॥ भाईके साथ प्रणाम करके धर्मात्मा रामचन्द्र, सुग्रीव तथा अन्य वानर प्रसन्नतापूर्वक चले ॥२८॥ सप्तजन मुनिसे बड़ी दूर रास्ता तय कर उन लोगोंने वालिके द्वारा रक्षित और शत्रुके प्रवेश करनेके अयोग्य किष्किन्धा नगरी देखी ॥ २९ ॥ लक्ष्मण, राम और वानर शस्त्रोंको लेकर, वालिके द्वारा पालित नगरीमें, शत्रुवधके लिए पुनः आए। उस समय उनका तेज बढ़ गया था ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ।

शीघ्रतापूर्वक वालिकी किष्किन्धा नगरीमें जाकर और वृक्षोंकी ओटमें अपनेको छिपाकर वे सब-के-सब बैठ गए ॥१॥ वनसे प्रेम करनेवाले सुग्रीवने वनमें चारो ओर देखा और लम्बी गरदनवाले उन सुग्रीवने बहुत अधिक क्रोध किया ॥ २ ॥ अनन्तर अपने साथियोंके साथ सुग्रीवने घोर गर्जन करके

गर्जन्निव महामेघो वायुवेगपुरःसरः । अथ बालार्कसदृशो दृप्तसिंहगतिस्ततः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा रामं क्रियादक्षं सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् । हरिवागुरया व्याप्तां तदा काञ्चनभूषणाम् ॥ ५ ॥
प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ।प्रतिज्ञा या कृता वीर त्वया वालिवधे पुरा॥६॥
सफलां कुरु तां क्षिप्रं लतां काल इवागतः । एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सुग्रीवेण स राघवः ॥ ७ ॥
तमेवोवाच वचनं सुग्रीवं शत्रुसूदनः । कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वमनया गजसाह्वया ॥ ८ ॥
लक्ष्मणेन समुत्पाट्य एषा कण्ठे कृता तव । शोभसेऽप्यधिकं वीर लतया कण्ठसक्तया ॥ ९ ॥
विपरीत इवाकाशे सूर्यो नक्षत्रमालया । अद्य वालिसमुत्थं ते भयं वैरं च वानर ॥१०॥
एकेनाहं प्रमोक्ष्यामि बाणमोक्षेण संयुगे । मम दर्शय सुग्रीव वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ॥११॥
वाली विनिहतो यावद्वने पांसुषु चेष्टते । यदि दृष्टिपथं प्राप्तो जीवन्स विनिवर्तते ॥१२॥
ततो दोषेण मा गच्छेत्सद्यो गर्हेच्च मां भवान् । प्रत्यक्षं सप्त ते ताला मया बाणेन दारिताः ॥१३॥
ततो वेत्सि बलेनाद्य वालिनं निहतं रणे । अनृतं नोक्तपूर्वं मे चिरं कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता ॥१४॥
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कथंचन । सफलां च करिष्यामि प्रतिज्ञां जहि संभ्रमम् ॥१५॥
प्रसूतं कलमक्षेत्रं वर्षेणेव शतक्रतुः । तदाह्वाननिमित्तं च वालिनो हेममालिनः ॥१६॥

वालिको युद्धके लिए बुलाया । उनके गर्जनसे आकाश फटता हुआ मालूम पड़ा ॥ ३ ॥ वायु वेगसे उड़नेवाले महामेघके समान गर्जता हुआ, मतवाले सिंहके समान चलनेवाला और बालसूर्यके समान तेजस्वी सुग्रीव कार्यदक्ष रामचन्द्रको देखकर बोला—वीर, हमलोग किष्किन्धा नगरीमें आ गए, जो वानरोंको फँसानेके लिए जाल है, जिसमें सोनेका काम किया गया है । ध्वजा और शतघ्नी आदि यंत्र जिसमें लगे हैं, यही वालिकी नगरी किष्किन्धा है । वालि-वधके लिए पहले आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसे आज शीघ्र सफल कीजिए । जिस प्रकार मौसिम पुष्पित लताओंको सफल करता है । सुग्रीवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा रामचन्द्र उससे बोले—इस नागपुष्पीके (माला) द्वारा तुम चिन्हित कर दिए गए हो, अतएव तुम पहचान लिए जाओगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ लक्ष्मणने उखाड़कर जो यह लता तुम्हारे गलेमें लगाई है, वीर, उससे तुम बहुत अधिक शोभते हो, जिस प्रकार आकाशमें नक्षत्रमालासे घिरा हुआ सूर्य शोभित होता है । आज वालिसे उत्पन्न वैर और भयको युद्धमें एकही बाण छोड़कर नष्ट कर दूँगा । भाईके नामसे प्रसिद्ध अपना वह शत्रु तुम मुझे दिखाओ ॥९॥१०॥ ॥११॥ वालि मारा जाकर शीघ्र ही भूमिमें लोटता दिखाई देगा । यदि वह मेरे सामने आकर जीता लौट जाय तब तुम मुझे दोषी समझो और मेरी निन्दा करो । तुम्हारे सामने ही एक बाणसे मैंने सात शाल वृक्षोंको बेधा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जिससे तुम वालिके वध करने योग्य मुझको बलवान् समझ सके हो । बड़े कष्टके समय भी मैं झूठ नहीं बोलता ॥ १४ ॥ धर्मके नष्ट होनेके भयसे मैं कभी झूठ बोलूँगा भी नहीं । मैं अपनी प्रतिज्ञा सफल करूँगा । तुम घबड़ाहट दूर करो ॥ १५ ॥ जिस प्रकार फल लगे हुए धानसे खेतको पानी बरसाकर इन्द्र सफल करता है ॥ १६ ॥ सुग्रीव, सोनेकी मालावाले

सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद्येन वानरः ।जितकाशी जयश्लाघी त्वया चाधर्षितः पुरात्॥१७॥
निष्पतिष्यत्यसङ्गेन वाली स प्रियसंयुगः । रिपूणां धर्षितं श्रुत्वा मर्षयन्ति न संयुगे ॥१८॥
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः । स तु रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ॥१९॥
ननर्द क्रूरनादेन विनिर्भिन्दन्निवाम्बरम् । तत्र शब्देन वित्रस्ता गावो यान्ति हतप्रभाः॥२०॥
राजदोषपरामृष्टाः कुलस्त्रिय इवाकुलाः । द्रवन्ति च मृगाः शीघ्रं भग्ना इव रणे हयाः ॥
पतन्ति च खगा भूमौ क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥२१॥

ततः स जीमूतकृतप्रणादो नादं ह्यमुञ्चत्त्वरया प्रतीतः ।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



पंचदशः सर्गः १५

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः । शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु तस्य निनदं सर्वभूतप्रकम्पनम् । मदश्चैकपदे नष्टः क्रोधश्चापादितो महान् ॥ २ ॥

वालिको बुलानेके लिए तुम गर्जन करो, जिससे वालि चला आवे, तुम्हारा शब्द सुनकर वालि अवश्य आवेगा, क्योंकि वह विजयका इच्छुक है । पहले तुमसे उसने कभी हार भी नहीं खाई है, युद्धसे भी उसका बड़ा प्रेम है, अतएव वह बिना विलम्ब आवेगा । शत्रुओंके शब्द सुनकर वीर क्षमा नहीं करते ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ अपने पराक्रमको जाननेवाले शत्रुकी ललकारको नहीं सहते, विशेषकर स्त्रीके पास होनेपर । सुवर्णके समान पीले सुग्रीवने रामचन्द्रका वचन सुनकर आकाशको गुँजाते हुए भयानक गर्जन किया । उस शब्दसे गायें डर गयीं और घबड़ा गयीं ॥ १९ ॥ २० ॥ राजाकी ओरसे रक्षाके प्रबन्ध न होनेके कारण परपुरुषके आक्रमणसे जिस प्रकार कुलस्त्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं उसी प्रकार गौ भी व्याकुल हुईं । युद्धसे भागे हुए घोड़ोंके समान मृगा भाग गए, क्षीणपुण्य तारोंके समान पक्षी आकाशसे गिर पड़े ॥ २१ ॥ मेघका भ्रम उत्पन्न करनेवाला गर्जन सुग्रीवने शीघ्रतापूर्वक किया । उन्हें रामचन्द्रका विश्वास था । उनकी वीरता बढ़ रही थी । जिस प्रकार चंचल तरंगोंवाला समुद्र बढ़ता है ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ।



क्रोधी वालिने अपने भाई सुग्रीवका वह गर्जन सुना । वालि उस समय अपने अन्तःपुरमें था । ॥ १ ॥ सब प्राणियोंको कम्पित करनेवाला वह गर्जन सुनकर वालिका नशा उतर गया और वह

ततो रोषपरीताङ्गो वाली स कनकप्रभः। उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥ ३ ॥
वाली दंष्ट्राकरालस्तु क्रोधाद्दीप्ताग्निलोचनः। भात्युत्पतितपद्माभः समृणाल इव ह्रदः ॥ ४ ॥
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः। वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ५ ॥
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा। उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥ ६ ॥
साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्। शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम् ॥७॥
काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि च वानर। वीर ते शत्रुबाहुल्यं फल्गुता वा न विद्यते ॥ ८ ॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते। श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥ ९ ॥
पूर्वमापतितः क्रोधात्स त्वामाह्वयते युधि। निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशोगतः ॥१०॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः। इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥११॥
दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः। निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥१२॥
नासहायमहं मन्ये सुग्रीव तमिहागतम्। अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥१३॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः। नापरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सख्यमेष्यति ॥१४॥
पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः। अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१५॥

बड़ा क्रोधित हुआ ॥ २ ॥ सोनेके समान पीला वालि क्रोधसे भर गया और ग्रहण लगे सूर्यके समान प्रभाहीन होगया ॥ ३ ॥ लम्बे दाँतोंके कारण उसका मुख भयानक होगया था और क्रोधसे आँखें लाल होगयी थीं। अतएव वह मृणालयुक्त उस तालाबके समान मालूम पड़ता था जिसमें लाल कमल खिले हों ॥ ४ ॥ असह्य शब्द सुनकर वालि बड़े वेगसे निकला। उसके चलनेसे पृथ्वी मानों दबी जाती है ॥ ५ ॥ स्नेहसे हितकामना प्रकट करती हुई, डरी और घबड़ायी हुई तारा वालिका आलिंगन करके हितकारी यह वचन बोली ॥ ६ ॥ वीर, नदीके वेगके समान आए हुए इस क्रोधका आप त्याग करें, जिस प्रकार रातमें भोग की हुई माला प्रातःकाल छोड़ दी जाती है। ॥ ७ ॥ वानर, कल प्रातःकाल आप युद्ध करें। यद्यपि युद्धमें कोई शत्रु तुमसे अधिक नहीं है और न तुमही किसी शत्रुसे छोटे हो ॥ ८ ॥ पर इस समय सहसा तुम्हारा जाना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता। जिस कारण मैं तुम्हें रोक रही हूँ वह सुनो ॥ ९ ॥ सुग्रीव क्रोध करके पहले आया था और युद्धके लिये उसने तुम्हें बुलाया था, तब जाकर तुमने उसे हराया और तुम्हारे द्वारा पीटे जानेपर भाग गया ॥ १० ॥ इस प्रकार तुम्हारे द्वारा पराजित पीड़ित होनेपर उसका पुनः यहाँ आना मुझे शंकित कर रहा है ॥ ११ ॥ अहंकार, उसका घोर युद्धके लिए उद्योग, उसके गर्जनमें भयानकता इन सबका कोई बड़ा कारण होना चाहिए ॥ १२ ॥ बिना किसीकी सहायताके सुग्रीव यहाँ नहीं आया है। सहायता पाकर ही वह यहाँ आकर गर्ज रहा है ॥ १३ ॥ वह स्वभावसे ही निपुण है और बुद्धिमान् है। बिना बलकी परीक्षा किये उसने किसीसे मैत्री न की होगी ॥ १४ ॥ वीर, कुमार अंगदसे मैंने पहले ही यह बात सुनी है। आज तुम्हारे कल्याणके लिए कहती हूँ ॥ १५ ॥

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः । प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥१६॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ । इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥१७॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ । स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥१८॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः । निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ॥१९॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२०॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् । तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना ॥२१॥
दुर्जयेनाप्रमेयेण रामेण रणकर्मसु ।शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्॥२२॥
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् । यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥२३॥
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा । अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२४॥
सुग्रीवेण च संप्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः । लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः ॥२५॥
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते । नहि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन ॥२६॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् । वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥२७॥
सुग्रीवो विपुलग्रीवो महाबन्धुर्मतस्तव । भ्रातृसौहृदमालम्ब्य नान्या गतिरिहास्ति ते ॥२८॥

कुमार अंगद एक दिन वनमें गए थे, वहीं दूतोंने उनसे यह बात कही थी ॥ १६ ॥ अयोध्याधिपतिके दो पुत्र जो वीर हैं । समरमें दुर्जय हैं । वे इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राम और लक्ष्मण वनमें आए हैं ॥ १७ ॥ वे पराजित होनेके अयोग्य राम और लक्ष्मण सुग्रीवका हित करनेके लिए आए हैं । वे ही रामचन्द्र युद्धमें तुम्हारे भाईके सहायक हैं ॥ १८ ॥ रामचन्द्र शत्रु-सेनाको नष्ट करनेमें उठी हुई प्रलयकी अग्निके समान हैं । वे साधुओंके आश्रयदाता तथा पीड़ितोंके रक्षक हैं ॥ १९ ॥ वे दुखियोंके आश्रय-स्थान हैं, यशके भाजन हैं, ज्ञान-विज्ञानसे युक्त हैं तथा पिताकी आज्ञा पालनेवाले हैं ॥ २० ॥ हिमवान् जैसे धातुओंका आकर हैं वैसे ही रामचन्द्र गुणोंके आकर हैं । अतएव उन महात्माके साथ विरोध उचित नहीं ॥ २१ ॥ रणमें अजेय और यथार्थ रूप जाननेके योग्य रामचन्द्रसे तुम्हारा विरोध अच्छा नहीं । वीर, मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। कृपया आप क्रोध न करें ॥ २२ ॥ सुनिए, और आपके हितकी बात जो मैं कहती हूँ उसे कीजिए । शीघ्र ही सुग्रीवका युवराज पदपर अभिषेक कराइए ॥ २३ ॥ राजन्, छोटे भाईसे विरोध मत करो । मैं तो समझती हूँ कि उन रामचन्द्रसे तुम्हें मैत्री करनी चाहिए ॥ २४ ॥ वैरको हटाकर सुग्रीवसे भी तुम्हें प्रेम करना चाहिये । वह तुम्हारा छोटा भाई है उसका आदर करना ही उचित है ॥ २५ ॥ वह यहाँ रहे चाहे ऋष्यमूक-पर रहे,तुम्हारा तो भाई ही है । उसके समान भाई पृथ्वीमें मैं दूसरा नहीं देखती ॥ २६ ॥ दान मान आदि सत्कारोंके द्वारा उसे आप अपनेमें मिला लीजिए । उससे विरोध छोड़ दीजिए । वह यहीं आपके पास रहे ॥ २७ ॥ लम्बी गर्दनवाला सुग्रीव तुम्हारा बड़ा प्रिय बन्धु है । भ्रातृ-प्रेमके अलावा इस समय तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है ॥२८॥ यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हों,

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् । याच्यमानः प्रियत्वेन साधुवाक्यं कुरुष्व मे ॥२९॥
प्रसीद पथ्यं शृणु जल्पितं हि मे न रोषमेवानुविधातुमर्हसि ।
क्षमो हि ते कोशलराजसूनुना न विग्रहः शक्रसमानतेजसा ॥३०॥
तदा हि तारा हितमेव वाक्यं तं वालिनं पथ्यमिदं बभाषे ।
न रोचते तद्वचनं हि तस्य कालाभिपन्नस्य विनाशकाले ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥



षोडशः सर्गः १६

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् । वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः । मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥ २ ॥
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् । धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥
सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे । सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥ ४ ॥
न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥
निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि । सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥ ६ ॥

यदि आप मुझे अपनी हितकारणी समझते हों तो मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरी बात मानें ॥ २९ ॥ प्रसन्न हूजिए, हितकारी मेरे वचन सुनिये, क्रोध करना उचित नहीं है । इन्द्र-के समान तेजस्वी रामचन्द्रसे विरोध करना अनुचित है ॥ ३० ॥ ताराने ये हितकारी वचन वालिसे कहे, पर उसे ये अच्छे न लगे । क्योंकि उसका विनाशकाल उपस्थित था । उसपर मृत्युकी छाया पड़ चुकी थी ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पन्द्रहवां सर्ग समाप्त ।



चन्द्रमुखी ताराकी ये बातें सुनकर वालिने उसे फटकारा और वह इस प्रकार बोला ॥ १ ॥ गर्जते हुए, विशेषकर शत्रु भाईका गर्व किस प्रकार मैं सह सकता हूँ ? ॥ २ ॥ जो कभी पराजित नहीं हुआ, जो युद्धमें पीछे नहीं मुड़ा, ऐसे वीरके लिए शत्रुकी ललकार सहना मृत्युसे भी दुखदायी है ॥३॥ उस हीनग्रीव सुग्रीवका गर्जन और गर्व, जो मुझसे युद्ध करना चाहता है, सहन करनेमें असमर्थ हूँ ॥ ४ ॥ रामचन्द्रकी ओर देखकर तुम्हें मेरे लिए विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे धर्मज्ञ और कृतज्ञ हैं, वे पाप क्यों करेंगे ? ॥ ५ ॥ स्त्रियोंके साथ तुम लौट जाओ । क्यों तुम पुनः मेरे पीछे आ रही हो ? तुमने अपना प्रेम दिखलाया और भक्ति भी ॥ ६ ॥ तुम घबड़ाहट छोड़ दो ।

प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम्। दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥
अहं ह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामि यदीप्सितम्। वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति ॥ ८ ॥
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान्। कृतं तारे सहायत्वं दर्शितं सौहृदं मयि ॥ ९ ॥
शपितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च। अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥१०॥
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी। चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥११॥
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी। अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१२॥
प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम्। नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥१३॥
स निःश्वस्य महारोषो वाली परमवेगवान्। सर्वतश्चारयन्दृष्टिं शत्रुदर्शनकांक्षया ॥१४॥
स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम्। सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥१५॥
तं स दृष्ट्वा महाबाहुः सुग्रीव पर्यवस्थितम्। गाढं परिदधे वासो वाली परमकोपनः ॥१६॥
स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान्। सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥१७॥
श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः। सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥१८॥
तं वाली क्रोधताम्राक्षं सुग्रीवं रणकोविदम्। आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
एष मुष्टिर्महान्बद्धो गाढः सुनियतांगुलिः। मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति ॥२०॥

मैं जाकर सुग्रीवसे युद्ध करूँगा पर उसके प्राण न लूँगा ॥ ७ ॥ रणक्षेत्रमें जो वह चाहेगा वही मैं करूँगा ।. वृक्षों और मुष्टियोंके प्रहारसे भयभीत होकर वह स्वयं भाग जायगा ॥८॥ गर्वयुक्त मेरे युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नोंको वह दुरात्मा नहीं सह सकेगा । तारा, तू ने, सहायता दी और अपना प्रेम भी दिखाया ॥ ९ ॥ मैं अपनी शपथ तुमको देता हूं । आदमियोंके साथ लौट जाओ । उस भाईको रणमें जीतकर मैं आता ही हूँ ॥ १० ॥ प्रियवादिनी ताराने वालिका आलिंगन करके रोते रोते उसकी प्रदक्षिणा की ॥ ११ ॥ मंत्र जाननेवाली और वालिकी विजय चाहनेवाली ताराने स्वस्त्ययन किया और शोकसे पीड़ित होकर स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गयी ॥ १२ ॥ स्त्रियोंके साथ अपने भवनमें ताराके जानेपर महासर्पके समान साँस छोड़ता हुआ वालि नगरीसे निकला ॥ १३ ॥ क्रोधमें भरा हुआ स्वास छोड़ता हुआ, शीघ्रताके लिये उत्कण्ठित वालि चारो ओर देखने लगा ॥ १४ ॥ उसने सुवर्णके समान पीले सुग्रीवको देखा, जो लंगोट पहने हुए था और मजबूत भूमिपर खड़ा हुआ था । वह जलते हुए अग्नि-भूमिके समान मालूम पड़ता था ॥ १५ ॥ परमक्रोधी, महाबाहु, वालिने सुग्रीवको पास ही खड़ा देखकर अपने वस्त्र बड़े मजबूतीसे बांधे ॥ १६ ॥ वस्त्र समेटकर और मुक्का तानकर वालि सुग्रीवकी ओर चला, क्योंकि उसके लिए यह युद्धरूपी उत्सव हो रहा था ॥ १७ ॥ सुग्रीव भी सोनेकी मालावाले वालिकी ओर दृढ़ मुष्टि तानकर वेगसे आया ॥ १८ ॥ रणचतुर, क्रोधसे लाल आँखोंवाले और वेगपूर्वक सामने आते हुए सुग्रीवसे वालि यह बोला ॥ १९ ॥ यह बँधी हुई मुट्ठी जिसमें ये अंगुलियां खूब गठ गयी हैं, मैं वेगसे तुमपर चलाऊँगा और ये तुम्हारे प्राण लेकर

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत् । तव चैष हरन्प्राणान्मुष्टिः पततु मूर्धनि ॥२१॥
ताडितस्तेन तं क्रुद्धः समभिक्रम्य वेगतः । अभवच्छोणितोद्गारी सापीड इव पर्वतः ॥२२॥
सुग्रीवेण तु निःशङ्कं सालमुत्पाट्य तेजसा । गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः ॥२३॥
स तु वृक्षेण निर्भग्नः सालताडनविह्वलः । गुरुभारभराक्रान्ता नौःससार्थेव सागरे ॥२४॥
तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगितौ । प्रयुद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥२५॥
परस्परममित्रघ्नौ छिद्रान्वेषणतत्परौ । ततोऽवर्धत वाली तु बलवीर्यसमन्वितः ॥२६॥
सूर्यपुत्रो महावीर्यः सुग्रीवः परिहीयत । वालिना भग्नदर्पस्तु सुग्रीवो मन्दविक्रमः ॥२७॥
वालिनं प्रति सामर्षो दर्शयामास राघवम् । वृक्षैः सशाखैः शिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥२८॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥२९॥
तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ । मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम् ॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् । प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥३१॥
ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् । स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वधकाङ्क्षया॥३२॥
ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् । पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥३३॥

लौट आवेंगी ॥ २० ॥ वालिके कहनेपर क्रोधकर सुग्रीवने भी उससे कहा—मेरी मुठ्ठी तुम्हारे माथेपर गिरे और तुम्हारे प्राण ले ले ॥२१॥ वालिके प्रहारसे क्रुद्ध होकर सुग्रीव वेगपूर्वक चला । उसके शरीरसे रुधिरकी धारा वह रही थी । वह धारा बहनेवाले पर्वतके समान मालूम होता था ॥ २२ ॥ सुग्रीवने निःशंक शाल वृक्ष उखाड़कर वालिके शरीरपर मारा, जिस प्रकार पर्वतपर वज्र मारा गया हो ॥२३॥ शालके मारनेसे वालि व्याकुल होगया । समुद्रमें बहुत भारवाली उस नौकाके समान उसकी दशा हुई जिसपर व्यापारी बैठे हों ॥२४॥ वे भंयकर बल पराक्रम रखनेवाले, गरुड़के समान वेगवान्, भंयकर शरीरवाले, दोनों युद्ध करने लगे । मानों आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य युद्ध करते हों ॥ २५ ॥ दोनोंही अपने शत्रुको मार डालना चाहते थे । दोनोंहो दूसरेकी कमजोरी ढूँढ़ रहे थे, पर वालि पराक्रममें अधिक मालूम होने लगा ॥२६॥ सूर्य-पुत्र महाबली सुग्रीवका वालिने गर्व चूर्ण कर दिया, अतएव उसका पराक्रम भी शिथिल पड़ने लगा ॥ २७ ॥ वालिके प्रति क्रोध करके सुग्रीवने रामचन्द्र-को अपनी हानि दिखाई । शाखावाले वृक्षों, पर्वतके शिखरों, वज्रके समान पैने नखों, मुट्ठियों, घुटनों, पैरों और बहुओंसे उन दोनोंका भयानक युद्ध होने लगा, जिस प्रकार इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ था ॥ २९ ॥ वनचारी दोनों वानर रुधिरसे भींगे हुए युद्ध करने लगे । दोनों मेघोंके समान घोर शब्दसे एक दूसरेको ललकारने लगे ॥३० ॥ वानराधिपति सुग्रीव कमजोर पड़ रहा है, बराबर इधर-उधर देखता है, यह रामचन्द्रने देखा ॥३१॥ महातेजस्वी रामचन्द्र सुग्रीवको दुखी देखकर वालिके वधके लिए अपना बाण ढूँढ़ने लगे ॥ ३२ ॥ सर्पके समान बाण धनुषपर चढ़ाकर उन्होंने खींचा, जिस प्रकार यमराज कालचक्र चलाता है ॥ ३३ ॥ धनुषके शब्दसे बड़े बड़े पक्षी

तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः । प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः ॥३४॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥३५॥
ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥३६॥
इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले । आश्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ।
वाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली चार्तस्वरः शनैः । ॥३७॥

नरोत्तमः काल इवान्तकोपमं शरोत्तमं काञ्चनरूपभासितम् ।
ससर्ज दीप्तं तममित्रमर्दनं सधूममग्निं मुखतो यथा हरः ॥३८॥
अथोक्षितः शोणिततोयविस्रवैः प्रपुष्पिताशोक इवाचलोद्गतः ।
विचेतनो वासवसूनुराहवे प्रभ्रंशितेन्द्रध्वजवत्क्षितिं गतः ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः १७

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः । पपात सहसा वाली निकृत्त इव पादपः ॥ १ ॥
स भूमौ न्यस्तसर्वाङ्गस्तप्तकाञ्चनभूषणः । अपतद्देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः ॥ २ ॥
अस्मिन्निपतिते भूमौ हर्यक्षाणां गणेश्वरे । नष्टचन्द्रमिव व्योम न व्यराजत मेदिनी ॥ ३ ॥

डर गए और प्रलयकाल आया हुआ समझकर मृगा भाग गए ॥३४॥ जलते हुए वज्रके समान गर्जन करनेवाला अपना बाण रामचन्द्रने वालिके कलेजेमें मारा ॥३५॥ उस बाणके लगनेसे कपिराज बली वालि पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥३६॥ आश्विन पूर्णिमाके उठाए हुए इन्द्रध्वजके समान अचेतन होकर वालि पृथ्वीमें गिर पड़ा । उसका गला रुक गया और उसने आर्त शब्द धीरेसे कहा ॥३७॥ प्रलयकालके समान सोने और चाँदीका बना हुआ शत्रुको नष्ट करनेवाला बाण नरश्रेष्ठ रामने चलाया । जिस प्रकार महादेवने धूमके साथ प्रदीप्त अग्निका आविष्कार किया था ॥३८॥ रुधिर और पसीनेके बहनेसे वालिका समस्त शरीर भींग गया था । अतएव पर्वत पर उत्पन्न पुष्पित अशोकके समान वह मालूम होता था । वह इन्द्रका पुत्र वालि गिराए हुए इन्द्रध्वजाके समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्तः ।



रणमें कर्कश वालि रामके बाण लगने से कटे वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥१॥ सोनेके भूषणवाले वालिका समस्त शरीर पृथ्वीपर पड़ा था । रस्सीके टूट जानेसे इन्द्रकी ध्वजाके समान वह पृथ्वी पर गिरा पड़ा था ॥ २ ॥ वानर और भालुके राजा वालिके पृथ्वीपर गिरनेपर चन्द्रहीन आकाशके

भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः । न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥ ४ ॥
शक्रदत्ता वरा माला काञ्चनी रत्नभूषिता । दधार हरिमुख्यस्य प्राणांस्तेजः श्रियं च सा ॥ ५ ॥
स तया मालया वीरो हैमया हरियूथपः । संध्यानुगतपर्यन्तः पयोधर इवाभवत् ॥ ६ ॥
तस्य माला च देहश्च मर्मघाती च यः शरः । त्रिधेव रचिता लक्ष्मीः पतितस्यापि शोभते ॥ ७ ॥
तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम् । रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमां गतिम् ॥ ८ ॥
तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम् । ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकादिह च्युतम् ॥ ९ ॥
आदित्यमिव कालेन युगान्ते भुवि पातितम् । महेन्द्रमिव दुर्धर्षमुपेन्द्रमिव दुःसहम् ॥१०॥
महेन्द्रपुत्रं पतितं वालिनं हेममालिनम् । व्यूढोरस्कं महाबाहुं दीप्तास्यं हरिलोचनम् ॥११॥
लक्ष्मणानुचरो रामो ददर्शोपससर्प च । तं तथा पतितं वीरं गतार्चिषमिवानलम् ॥१२॥
बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव । उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥
तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥१४॥
स भूमावल्पतेजोऽसुर्निहतो नष्टचेतनः । अर्थसंहितया वाचा गर्वितं रणगर्वितम् ॥१५॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः । यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥१६॥

समान पृथ्वी शोभित नहीं होती थी ॥ ३ ॥ उस महात्माके शरीरको पृथ्वीपर गिरनेपर भी शोभा, प्राण, तेज और पराक्रम नहीं छोड़ते थे ॥ ४ ॥ इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला, जिसमें रत्न जड़े थे, वालिके प्राण, तेज, शोभा आदिकी रक्षा करती थी ॥५॥ वह वानराधिपति उस सोनेकी मालासे सन्ध्यारागरक्त मेघके समान मालूम पड़ता था ॥ ६ ॥ उस माला, शरीर और मर्मभेद करनेवाले उस बाण इन तीनों की पृथ्वीमें गिरनेपर भी अलग अलग शोभा हुई ॥ ७ ॥ वह अस्त्र उस वीरको स्वर्गमें ले जानेवाला हुआ । रामके धनुषसे छूटे हुए बाणने उसको उत्तम गति दी ॥ ८ ॥ इस प्रकार गिरा हुआ वालि प्रभाहीन अग्निके समान मालूम पड़ता था । पुण्यकी समाप्ति पर देवलोकसे गिरे ययातिके समान मालूम पड़ता था ॥ ९ ॥ प्रलयकालमें कालके द्वारा पृथ्वीपर गिराए सूर्यके समान, इन्द्रके समान पराजित होनेके अयोग्य, उपेन्द्रके समान सहन करनेमें अशक्य, सोनेकी माला धारण करनेवाले इन्द्रके पुत्र वालिको रामचन्द्रने देखा । उसकी लम्बी छाती, लम्बी बाँह, चमकीला मुँह और पीली आँखें, लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने देखीं और वे उसके पास गए । वह उस प्रकार गिरा हुआ वीर प्रभाहीन अग्निके समान मालूम पड़ता था ॥१०, ११, १२॥ धीरेसे उसकी ओर देखकर महापराक्रमी राम और लक्ष्मणने उसका सम्मान किया और वे उसके पास गए ॥१३॥ वालिने बलवान् राम और लक्ष्मणको देखकर धर्मयुक्त, कठोर और विनययुक्त वचन कहे ॥१४॥ भूमिमें पड़ा हुआ चेतना और चेष्टाहीन वालि रणगर्वित रामचन्द्रसे अर्थयुक्त वचन बोला ॥१५॥ छिपकर वध करनेवाले आपने कौनसा गुण देखा जो दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ मैं आपके कारण मारा गया ॥१६॥

कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः । रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः ॥१७॥
सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः । इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥१८॥
दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्त्वं पराक्रमः । पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥१९॥
तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव । तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥२०॥
न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि । इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥२१॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम् । जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥२२॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् । नाहं त्वमभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥२३॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम् । नचत्वामवजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम् ॥२४॥
फलमूलाशनं नित्यं वानरं वनगोचरम् । मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम् ॥२५॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः । लिङ्गमप्यस्ति ते राजन्दृश्यते धर्मसंहितम् ॥२६॥
कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः । धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत् ॥२७॥
त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः । अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे ॥२८॥
साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृतिपराक्रमौ । पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥२९॥
वयं वनचरा राम मृगा मूलफलाशिनः । एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वं नरेश्वर ॥३०॥

कुलीन, बलवान्, तेजस्वी, चरित्रवान्, दुखियोंका दुःख जाननेवाले और प्रजाका हित करनेवाले रामचंद्र हैं ॥१७॥ रामचन्द्र दयालु, उत्साही, उचितानुचित जाननेवाले और दृढ़ संकल्प करनेवाले हैं। यह तुम्हारा यश सब प्राणी पृथ्वीमें कहते हैं ॥१८॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्व और पराक्रम ये राजाओंके गुण हैं। अपकारियोंको दण्ड देना भी राजगुण है ॥१९॥ आपके उन सद्गुणोंको तथा आपके श्रेष्ठकुलको जानकर ही ताराके निषेध करनेपर भी मैं सुग्रीवसे लड़ने आया ॥२०॥ दूसरोंसे युद्धमें लगे हुए, अतएव असावधान मुझको आप नहीं मारेंगे—यह बात आपको बिना देखे ही मैंने समझ ली थी ॥२१॥ अब मैं तुमको आत्माको हनन करनेवाला, धर्मका चिह्न धारण करनेवाला, वस्तुतः अधार्मिक और पापी समझता हूँ। तुम तृणसे ढँके कूँएके समान भयानक हो ॥२२॥ सज्जनोंका वेश धारण करनेवाले, पर पापी तुम, छिपे अग्निके समान हो। धर्मके चिह्नसे छिपे हुए तुमको मैं नहीं जान सका ॥२३॥ मैंने तुम्हारे देशमें या नगरमें कोई उपद्रव नहीं किया, मैंने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया, अतएव मुझ निरपराधीको तुमने क्यों मारा ? ॥२४॥ मैं वानर हूँ, वनमें रहता हूँ, सदा फल मूल खाता हूँ। मैं तुमसे युद्ध नहीं करता था, किन्तु दूसरे से युद्ध कर रहा था। फिर तुमने मुझे क्यों मारा ? ॥२५॥ आप राजाके पुत्र हैं, सर्वप्रिय प्रसिद्ध हैं। आपमें धर्मके चिह्न भी वर्तमान हैं ॥२६॥ कौन क्षत्रिय-कुल-में उत्पन्न शास्त्रवेत्ता सन्देहरहित तथा धर्मका चिह्न धारण करनेवाला ऐसा क्रूर कर्म कर सकता है ? ॥२७॥ तुम रघुवंशमें उत्पन्न हुए हो। धर्मात्माके नामसे प्रसिद्ध हो। तुम क्रूर हो, पर पृथ्वीमें सौम्य रूप धारण कर घूम रहे हो। यह क्यों ? ॥२८॥ साम, दाम, क्षमा, धर्म, सत्य, धैर्य और पराक्रम राजाओंके ये गुण हैं। अपकारियोंको दण्ड देना भी राजगुण है ॥२९॥ रामचन्द्र, हम वनवासी पशु हैं। फल

भूमिर्हिरण्यं रूपं च निग्रहे कारणानि च । तत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा ॥३१॥
नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि । राजवृत्तिरसंकीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥३२॥
त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः । राजवृत्तेषु संकीर्णः शरासनपरायणः ॥३३॥
न तेऽस्त्यपचितिर्धर्मे नार्थे बुद्धिरवस्थिता । इन्द्रियैः कामवृत्तः सन्कृष्यसे मनुजेश्वर ॥३४॥
हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् । किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥३५॥
राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः । नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥३६॥
सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः । लोकं पापात्मनामेते गच्छन्ते नात्र संशयः ॥३७॥
अधार्यं चर्म मे सद्भी रोमाण्यस्थि च वर्जितम् । अभक्ष्याणि च मांसानि त्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥३८॥
पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव । शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः ॥३९॥
चर्म चास्थि च मे राम न स्पृशन्ति मनीषिणः । अभक्ष्याणि च मांसानि सोऽहं पञ्चनखो हतः ॥४०॥
तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम् । तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः ॥४१॥
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुंधरा । प्रमदा शीलसंपूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥४२॥
शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः । कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥४३॥

मूल खाते हैं। यही हम लोगोंका स्वभाव है। पर महाराज आप तो पुरुष हैं ॥३०॥ पृथ्वी, सोना और रूप वधके कारण कहे गए हैं। मेरे अधीनके इस वनमें आपको किसका लोभ है? मेरे फलोंके लिए आपको क्यों लोभ हो सकता है? ॥३१॥ नीति और नम्रता, निग्रह और अनुग्रह ये राज-धर्म हैं और इनका उचित उपयोग करना राजाका धर्म है। राजा यथेच्छाचारी नहीं होता ॥३२॥ तुम तो अपनी इच्छाके अनुसार काम करते हो। लोभी और चंचल हो। राजधर्मका ज्ञान तुमको नहीं है। तुम्हें केवल धनुषका सहारा है ॥३३॥ धर्ममें तुम्हारी श्रद्धा नहीं है और न अर्थ ही की ओर तुम्हारा ध्यान है। तुम यथेच्छाचारी हो अतएव इन्द्रियोंके अधीन होकर काम करते हो ॥३४॥ काकुत्स्थ, अनपराधी मुझको बाणसे मारकर सज्जनोंके बीचमें क्या कहोगे? इस निन्दित कर्मका समर्थन कैसे करोगे? ॥३५॥ राजा, ब्राह्मण और गौकी हत्या करनेवाला, चोर, प्राणिवधमें निरत, नास्तिक, और परिवेत्ता (बड़े भाईके पहले व्याह करनेवाला) ये सब नरकगामी होते हैं ॥३६॥ चुगल, लोभी, मित्रघाती और गुरु-स्त्रीगामी ये पापियोंके लोकमें जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥३७॥ आपके समान धर्मात्मा सज्जन मेरा चर्म भी तो धारण नहीं करते। बाल और हड्डियाँ भी अस्पृश्य समझी जाती हैं और मांस भी अभक्ष्य है ॥३८॥ ब्राह्मण और क्षत्रियको पञ्चनख संज्ञक इन पाँचोका ही माँस खानेका विधान है, शल्यक, श्वाविध, गोधा, शश और कूर्म ॥३९॥ मेरा चाम मेरी हड्डियाँ सज्जनोंके द्वारा अस्पृश्य समझी जाती हैं और मेरा मांस भी अभक्ष्य है, फिर भी आपने मुझ पंचनखको मारा है ॥४०॥ सचमुच सर्वज्ञ ताराने मुझे हितका उपदेश दिया था। मोहसे उसे न मानकर मैं कालवश हुआ ॥४१॥ विधर्मी पतिको पाकर शीलवती स्त्रीके समान, हे काकुत्स्थ! तुमको स्वामी पाकर यह पृथ्वी सनाथ नहीं हुई ॥४२॥ छिपकर पाप करनेवाला, दूसरेका अपकार करनेवाला, ओछा, अपने अन्तःकरणपर अधिकार न रखनेवाला, तुम्हारे समान

छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना । त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना ॥४४॥
अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम् । वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः ॥४५॥
उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः । अपकारिषु ते राम नैवं पश्यामि विक्रमम् ॥४६॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज । अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥४७॥
त्वयाऽदृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः । प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पापवशं गतः ॥४८॥
सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया । मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः ।
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान्भवेः ॥४९॥
राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम् । कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥५०॥
न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् । आनयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥५१॥
युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि । अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥५२॥
काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते । क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम् ॥५३॥

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघाताद्व्यथितो महात्मा ।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥



पापी पुत्र महाराज दशरथने कैसे उत्पन्न किया ॥४३॥ चरित्रकी मर्यादा जिसने तोड़ दी है, सज्जनोंके धर्मका जिसने उल्लंघन किया है, धर्मके अंकुशको जिसने हरा दिया है, उस राम नामक हाथीके द्वारा मैं मारा गया ॥४४॥ अमंगल, अनुचित और सज्जनोंके द्वारा निन्दित ऐसा काम करके सज्जनोंसे मिलने पर तुम क्या कहोगे।४५। उदासीनके प्रति आपने जो यह विक्रम दिखलाया है, आपका वैसा विक्रम अपकारियोंके प्रति मैं नहीं देखता ॥४६॥ राजपुत्र रणमें सामने आकर यदि तुम मुझसे युद्ध करते तो मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यदेवका दर्शन करते ॥४७॥ तुमने तो छिपकर युद्धमें मुझे मारा है, जिस-प्रकार सोया हुआ मनुष्य साँपके द्वारा काट दिया जाता है और मर जाता है ॥४८॥ सुग्रीवके हितके लिए जो तुमने मुझे मारा है, अपना वह अभिप्राय यदि तुम मुझसे कहते तो एकही दिनमें मैं जानकीको ला देता ॥४९॥ तुम्हारी स्त्रीके हरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणका गला बाँधकर तुम्हारे सामने जीता उपस्थित कर देता ॥५०॥ समुद्रके जलमें या पातालमें भी यदि जानकी होती तो मैं ला देता, जिस प्रकार श्वेताश्वतरकी श्रुति लाई गई थी ॥५१॥ मेरे स्वर्ग जानेपर यह राज्य सुग्रीव पावेगा, यह उचित है, पर अधर्मसे मेरा वध किया यह अनुचित हुआ ॥५२॥ हमारे समान मनुष्य कालसे हटाए ही जाते हैं, अर्थात् उनकी मृत्यु होती है; पर छिपकर मारना आपके लिए उचित हो तो आप इसका उत्तर सोचें ॥५३॥ पश्चात् ऐसा कहकर सूर्यके समान तेजस्वी रामको देखकर वालि चुप हो गया। उसका मुँह सूख गया था और बाण लगनेके कारण वह व्याकुल हो रहा था ॥५४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ।

अष्टादशः सर्गः १८

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् । परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा ॥ १ ॥
तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम् । उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशान्तमिवानलम् ॥ २ ॥
धर्मार्थगुणसंपन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् । अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् । अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ ४ ॥
अपृष्ट्वा बुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसंमतान् । सौम्य वानरचापल्यात्त्वं मां वक्तुमिहेच्छसि ॥ ५ ॥
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना । मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः । धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ७ ॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् । विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥ ८ ॥
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः । चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ॥ ९ ॥
यस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले । पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥१०॥
ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः । भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि ॥११॥
त्वं तु संक्लिष्टधर्मा च कर्मणा च विगर्हितः । कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥१२॥
ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति । त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ॥१३॥
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः । पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥१४॥

बाणसे आहत अचेत वालिने रामचन्द्रसे कठोर, धर्मार्थयुक्त, हितकारी और विनीत वचन कहे ॥१॥ प्रभाहीन आदित्यके समान, जलहीन मेघके समान, बुझी अग्निके समान, श्रेष्ठ वानरेश्वरके धर्म-अर्थयुक्त वचनसे तिरस्कृत होकर रामचन्द्र उससे बोले ॥३॥ धर्म अर्थ काम और लौकिक आचारको बिना जाने लड़कपनके कारण तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो ? ॥४॥ बुद्धिमान्, आचार्य-सम्मत वृद्धों-से बिना पूछे वानरी चंचलतासे प्रेरित होकर तुम मुझे उपदेश देना चाहते हो ? ॥५॥ पर्वत वन आदिसे युक्त यह समस्त पृथ्वी इक्ष्वाकुओं की है। अतएव पशु पक्षी तथा मनुष्यों पर दया और दण्ड देनेका उन्हें अधिकार है ॥६॥ धर्मात्मा, सत्यवादी, सरल भरत उस पृथ्वीका पालन करते हैं। धर्म, काम और अर्थके तत्त्वोंको जाननेवाले वे निग्रह, अनुग्रह भी करते हैं ॥७॥ नय, विनय, सत्य, शास्त्रानुकूल विक्रम, जिसमें हैं, वही देश-काल जाननेवाला भरत राजा है ॥८॥ हम तथा अन्य राजा लोग धर्मकी वृद्धिके लिए राजाके द्वारा धार्मिक कृत्योंको देखनेके लिए नियुक्त हुए हैं और इसी लिए समस्त पृथ्वी-का परिभ्रमण करते हैं ॥९॥ राजश्रेष्ठ, धर्मवत्सल भरतके शासनकालमें कौन धर्म-विरुद्ध काम कर सकता है ? ॥१०॥ हमलोग अपने धर्ममें स्थित होकर भरतकी आज्ञासे धर्म-विरुद्ध चलनेवालेका विधि-पूर्वक विचार करते हैं ॥११॥ तुमने धर्मका नाश किया है। तुम्हारे कर्म भी निन्दित हैं। तुम कामको पुरुषार्थ समझनेवाले हो। राजधर्मके अनुसार नहीं चलते ॥१२॥ ज्येष्ठ भाई, पिता या जो विद्या देता है, ये तीनों धर्मानुकूल चलनेवालोंके लिए पिताके समान हैं ॥१३॥ छोटा भाई, पुत्र, गुणवान् शिष्य

सूक्ष्मः परमविज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम । हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥१५॥
चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः । जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन्प्रेक्षसे नु किम् ॥१६॥
अहं तु व्यक्ततामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते । नहि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥१७॥
तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः । भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥१८॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१९॥
तद्व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर । भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादितः ॥२०॥
नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः । दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥२१॥
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः । औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ॥२२॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः । भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ॥२३॥
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् । गुरुधर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन् ॥२४॥
भरतः कामयुक्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः । वयं तु भरतादेशावधिं कृत्वा हरीश्वर ।
त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुं व्यवस्थिताः ॥२५॥
सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा । दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसकरः स मे ॥२६॥
प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ । प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥२७॥

ये तीनों पुत्रके समान हैं। ऐसा समझनेका भी कारण धर्म ही है ॥१४॥ हे वानर, सज्जनोंका धर्म सूक्ष्म है, अतएव दुर्ज्ञेय है; किन्तु सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला आत्मा ही पाप पुण्य जान सकता है ॥१५॥ जन्मान्धके साथ बातचीत करके जन्मान्ध क्या जान सकता है, उसी प्रकार अस्वस्थचित्त चपल वानरोंके साथ बात करके तुम चपल वानर धर्मकी बात क्या जान सकते हो ? ॥१६॥ मैं अपनी इस बातको साफ साफ कहता हूँ, तुम केवल क्रोध करके मेरी निन्दा नहीं कर सकते ॥१७॥ सनातन-धर्मका त्याग कर तुम छोटे भाईकी स्त्रीका उपभोग करते हो, यही कारण है जिसके लिए मैंने तुम्हें मारा है ॥१८॥ महात्मा सुग्रीवके जीते जी उनकी स्त्री और अपनी पतोहू रुमाके साथ तुम पाप-कर्म करते हो ॥१९॥ तुम धर्मका त्यागकर स्वेच्छानुसार आचरण करते हो। भाईकी स्त्रीके उपभोगके लिए प्राणदण्डकी आज्ञा है ॥२०॥ लोक-विरुद्ध सज्जनोचित व्यवहारसे निन्दित कार्यके लिए दण्डके अलावा और कोई प्रायश्चित्त मैं नहीं देखता ॥२१॥ मैं क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मैं तुम्हारे इस पापाचरण-को नहीं सह सकता। कन्या, बहिन और छोटे भाईको स्त्री ॥२२॥ इनके साथ जो कामका व्यवहार करता है उसका दण्ड प्राणवध है। भरत राजा हैं और हम लोग उनके आज्ञापालक हैं ॥२३॥ तुमने धर्मकी मर्यादा तोड़ी है। तुम्हें क्षमा कैसे किया जा सकता है। श्रेष्ठ धर्मका उल्लंघन करनेवालेको दण्ड देकर, धर्म-पूर्वक प्रजाका पालन करते हुए भरत यथेच्छाचारियोंको दण्ड देनेके लिए तैयार हैं और हम लोग उनकी आज्ञाके अनुसार तुम्हारे समान धर्मद्रोहियोंको दण्ड देनेके लिए उद्यत हैं ॥२४, २५॥ जिस प्रकार लक्ष्मणसे मेरी मैत्री है, सुग्रीवसे भी वैसी ही है। स्त्री और राज्य पाने पर मेरे कल्याणके लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं ॥२६॥ मैंने उनके सामने प्रतिज्ञा की है। हमारे समान मनुष्य प्रतिज्ञाकी उपेक्षा कैसे

तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः । शासनं तव यद्युक्तं तद्भवाननुमन्यताम् ॥२८॥
सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः । वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥२९॥
शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता । श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ॥३०॥
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥३१॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते । राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम्॥३२॥
आर्येण मम मांधात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् । श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥३३॥
अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः । प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ॥३४॥
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः । वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥३५॥
शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुंगव । तच्छ्रुत्वा हि महद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि ॥३६॥
न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरिपुंगव । वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ॥३७॥
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून्मृगान् । प्रधावितान्वा वित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान्॥३८॥
प्रमत्तानप्रमत्तान्वा नरा मांसाशिनो भृशम् । विध्यन्ति विमुखांश्चापि न च दोषोऽत्र विद्यते॥३९॥
यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः । तस्मात्त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर ।
अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि ॥४०॥

कर सकते हैं ॥ २७ ॥ धर्मविहित इन कारणोंसे तुम्हारा जैसा शासन करना उचित था, तुम्हें जैसा दण्ड दिया जाना चाहिए था, वैसा मैंने दिया । वह शास्त्रनुकूल है, यह बात तुम भी मानो ॥२८॥ मैंने जो तुम्हें दण्ड दिया है वह केवल धर्मकी दृष्टिसे । मित्रका उपकार करना भी धर्म ही है ॥२९॥ धर्म-पालन करनेके लिए तुमको भी ऐसी बात करनी ही पड़ती । मनुने चरित्र रक्षाके दो श्लोक कहे हैं । बुद्धि-मानोंने उन्हें माना है । मैंने वही किया है ॥३०॥ मनुष्य पाप करके राजाके द्वारा उसका दण्ड भोग कर निर्मल हो जाते हैं और पुण्यात्माओंके समान स्वर्ग जाते हैं ॥३१॥ शारीरिक दण्डसे अथवा निर्वा-सनसे चोर आदि पापी पापमुक्त हो जाते हैं, राजा यदि दण्ड न दे तो वह उस पापका अपराधी होता है ॥३२॥ जैसा पाप तुमने किया है वैसा पाप करने पर, एक श्रवण (जैन वा बौद्ध सन्यासी) को मेरे पूर्वज मान्धाताने शास्त्रानुकूल कठोर दण्ड दिया था ॥३३॥ अन्य राजाओंने भी पाप करनेपर लोगोंको दण्ड दिये हैं और उन लोगोंने प्रायश्चित भी किए हैं, जिनसे उनके पाप दूर हुए हैं ॥३४॥ अतएव वानरराज, पश्चा-त्ताप न करो । तुम्हारा वध शास्त्रकी आज्ञासे धर्मरक्षाके लिए हुआ है; क्योंकि हम लोग अपने अधीन नहीं हैं ॥३५॥ वानरश्रेष्ठ, अब दूसरा भी कार्य सुनो, जिसके सुननेसे तुम्हारा क्रोध दूर हो सकेगा ॥३६॥ तुमको छिपकर जो मैंने मारा है उसके विषयमें न तो मुझे पश्चात्ताप है और न किसी प्रकारका दुःख है ॥३७॥ जाल, पाश तथा अनेक प्रकारके छलसे छिपकर या प्रत्यक्ष होकर मनुष्य पक्षियों और मृगों-को मारते हैं । वे दौड़ते हों, डरे हों, चुपचाप बैठे हों अथवा अनेक पालित मृगोंसे लड़ाई करते हों ।३८। मांस खानेवाले मनुष्य प्रमत्त, अप्रमत्त अथवा भागते हुए मृगोंका वध करते हैं और इसमें कोई दोष

दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च । राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥४१॥
तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् । देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥४२॥
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः । विदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥४३॥
एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् । न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥४४॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः । यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥४५॥
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात् । यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ॥४६ ।
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव । त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ च प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥४७॥
मामप्यवगतं धर्माद्व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम् । धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥४८॥
बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः । उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥४९॥
न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् । यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥५०॥
स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः । तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥५१॥
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः । तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥५२॥

नहीं समझा जाता ॥३९॥ राजर्षि लोग भी आखेट करने जाते हैं, इस कारण मैंने भी युद्धमें तुम्हें मारा है । चाहे तुम मुझसे लड़ते थे या नहीं लड़ते थे, क्योंकि तुम वानर हो ॥४०॥ दुर्लभ धन जीवन और कल्याणके देनेवाले राजा ही होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥४१॥ राजाओंकी हिंसा न करे, उनकी निन्दा न करे, उनका तिरस्कार न करे, उनके प्रतिकूल न बोले, क्योंकि राजा देवता हैं, मनुष्यरूप धरकर पृथिवीमें विचरते हैं ॥४२॥ तुम्हें तो धर्मका ज्ञान नहीं है, क्रोधके वशवर्ती होकर पिता पितामहसे चले आते हुए धर्मका पालन करनेवाले मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥४३॥ रामके ऐसा कहनेपर वालि बहुत व्यथित हुआ, धर्मके विषयमें उसको निश्चय हो गया; अतएव उसने रामचन्द्रको दोषी नहीं समझा ॥४४॥ वानरराज वालिने हाथ जोड़कर कहा—नरश्रेष्ठ, आप जो कह रहे हैं वह ठीक है ॥४५॥ श्रेष्ठ मनुष्यके सामने छोटा मनुष्य बोल नहीं सकता । पहले अज्ञानवश जो अप्रिय वचन मैंने कहे हैं उसमें भी आप मेरा दोष न समझिएगा । आप तो तत्त्वोंके यथार्थ ज्ञाता हैं । प्रजाके हितकारी हैं । कार्य कारणके जाननेमें आपकी बुद्धि निर्मल है ॥४७॥ सबसे बड़ा धर्मत्यागी मैं भी आपके यहाँ आया हूँ । हे धर्मज्ञ, धर्मयुक्त वचनसे आप मेरी रक्षा करें ॥४८॥ वालिका गला रुक गया, पांकमें फँसे हाथीके समान बड़े कष्टसे रामकी ओर देखकर वह बोला ॥४९॥ अपने लिए, ताराके लिए तथा बान्धवोंके लिए मुझे शोक नहीं है । मुझे शोक है सुवर्णका अंगद (हाथका एक गहना) पहननेवाले गुणवान् अंगदके लिए ॥५०॥ बाल्यावस्थासे ही वह मेरे द्वारा लालित पालित हुआ है । अब मुझे न देखकर वह अवश्य ही दुःखित होगा । जलके उपयोग करनेसे जिस प्रकार तालाब सूख जाता है उसी प्रकार वह भी सूख जायगा ॥५१॥ वह अभी बालक है, अल्प बुद्धि है और ताराका प्रधान पुत्र है । अतएव आप उसकी

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् । त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः॥५३॥
या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या । सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥५४॥
मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम् । सुग्रीवो नावमन्येत तथावस्थातुमर्हसि ॥५५॥
त्वया ह्यनुगृहीतेन शक्यं राज्यमुपासितुम् । त्वद्वशे वर्तमानेन तव चित्तानुवर्तिना ॥५६॥
शक्यं दिवं चार्जयितुं वसुधां चापि शासितुम् । त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन्वार्यमाणोऽपि तारया॥५७॥
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः । इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः ॥५८॥
स तमाश्वासयद्रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम् । साधुसंमतया वाचा धर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥५९॥
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम । वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥६०॥
दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते । कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥६१॥
तद्भवान्दण्डसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः । गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥६२॥
त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् । त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥६३॥
यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर । तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥६४॥

स तस्य वाक्यं मधुरं महात्मनः समाहितं धर्मपथानुवर्तितम् ।
निशम्य रामस्य रणावमर्दिनो वचः सुयुक्तं निजगाद वानरः ॥६५॥

रक्षा कीजिएगा ॥५२॥ सुग्रीव और अंगदके विषयमें आप समान भाव रक्खें, क्योंकि आप रक्षक हैं, शासक हैं, कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान रखनेवाले हैं ॥५३॥ राजन्, भरत और लक्ष्मणमें जो आपके भाव हैं, वे ही सुग्रीव और अंगदमें भी आप रक्खें ॥५४॥ मेरे दोषसे दोषिणी विचारी ताराका सुग्रीव तिरस्कार न करे इसकी व्यवस्था आप कीजिएगा ॥५५॥ आपके अनुग्रहसे, आपके वशमें रहनेसे तथा आपकी इच्छाके अनुकूल चलनेसे सुग्रीव राज्य कर सकेगा ॥५६॥ आपकी अनुकूलतासे स्वर्ग और पृथ्वीका राज्य प्राप्त हो सकता है । आपके द्वारा अपने वधकी इच्छासे ही तारा द्वारा रोके जाने पर भी सुग्रीवसे युद्ध करने-के लिए आया । रामसे ऐसा कहकर वालि चुप हो गया ॥॥५७,५८॥ रामचन्द्रने सौम्य होकर सज्ज-नोचित तथा धर्मकी यथार्थ व्याख्याके द्वारा वालिको समझाया ॥५९॥ आपको हम लोगोंके लिये चिन्तित नहीं होना चाहिए, अपने लिए भी चिन्तित नहीं होना चाहिए, क्योंकि आपके प्रति प्रेमके कारण हम लोगोंने, आपके कहनेके अनुसार पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा है ॥६०॥ जो राजा दण्डनीय-को दण्ड देता है और जो दण्डनीय दण्ड पाता है, कार्य कारणके सिद्ध होनेसे, ये दोनों दुखी नहीं होते ॥६१॥ इस कारण दण्ड पानेसे आपका पाप दूर हो गया, और दण्डके बतलाए मार्गके द्वारा आपने अपनी धार्मिक गति पाई ॥६२॥ शोक, मोह तथा हृदयके भयका त्याग कीजिए । हे वानरश्रेष्ठ, आप प्रारब्धको उलट नहीं सकते ॥६३॥ हे वानरेश्वर, अंगद आपके साथ जैसा व्यवहार करता था, वह सुग्रीवके साथ तथा मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार करेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥६४॥ महात्मा रामचंद्र-का धर्मानुमोदित मधुर वचन सुनकर वालि उचित वचन बोला ॥६५॥ शरके आघातसे बेहोश मैंने जो बातें

शराभितप्तेन विचेतसा मया प्रभाषितस्त्वं यदजानता विभो।
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम प्रसादितस्त्वं क्षम मे हरीश्वर ॥६६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टादशः सर्गः।

एकोनविंशः सर्गः १९

स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः। प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥
अश्मभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम्। रामबाणेन चाक्रान्तो जीवितान्ते मुमोह सः ॥ २ ॥
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे। हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥ ३ ॥
सा सपुत्राऽप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम्। निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकंदरात् ॥ ४ ॥
ये त्वङ्गदपरीवारा वानरा हि महाबलाः। ते सकार्मुकमालोक्य रामं त्रस्ताः प्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥
सा ददर्श ततस्त्रस्तान्हरीनापततो द्रुतम्। यूथादेव परिभ्रष्टान्मृगान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥
तानुवाच समासाद्य दुःखितान्दुःखिता सती। रामवित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥
वानरा राजसिंहस्य यस्य यूयं पुरःसराः। तं विहाय सुवित्रस्ताः कस्माद्द्रवत दुर्गताः ॥ ८ ॥
राज्यहेतोः स चेद्भ्राता भ्रात्रा क्रूरेण पातितः। रामेण प्रसृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥
कपिपत्न्या वचः श्रुत्वा कपयः कामरूपिणः। प्राप्तकालमविश्लिष्टमूचुर्वचनमङ्गनाम् ॥१०॥

कही हैं, हे इन्द्रतुल्य, हे भीम विक्रम, मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उनके लिए आप मुझे क्षमा करें ॥६६॥
आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त।

शरसे पीड़ित वानरराज वालि जमीनमें पड़ा हुआ था। हेतुयुक्त वचनोंसे रामचन्द्रके द्वारा उत्तर पाकर पुनः उसने कुछ प्रत्युत्तर न दिया ॥१॥ पत्थरोंसे उसके अंग कट गए थे, वृक्षोंके आघातसे कुचल गए थे, रामचन्द्रके बाणसे वह भिदा था, अतएव प्राणान्तके समय वह मूर्छित हो गया ॥२॥ रामचन्द्रके बाणसे युद्धमें वालि मारा गया—यह खबर उसकी स्त्री ताराने सुनी ॥३॥ पतिका भयंकर और अप्रिय वधका समाचार सुनकर, पुत्रके साथ वह उस पर्वतकी कन्दरासे निकली ॥४॥ जो महाबली वानर अंगदके रक्षक थे, वे रामचन्द्रको धनुष लिए देखकर डर गए और भाग गए ॥५॥ ताराने डरकर शीघ्रतापूर्वक लौटे हुए वानरोंको देखा। यूथपतिके मारे जानेपर यूथसे निकलकर भागे हुए मृगोंके समान उसने देखा ॥६॥ बाणसे बिंधनेके समान रामसे डरे हुए उन दुखी वानरोंके पास जाकर तारा दुखसे बोली ॥७॥ हे वानरो, जिस श्रेष्ठ राजाके आगे आप चलते थे, उसको छोड़कर डरेहुए आपलोग क्यों भाग रहे हैं? ॥८॥ क्रूर भाईने यदि राज्यके लिए दूर जानेवाले बाणोंसे रामचन्द्र द्वारा उस वीरको मरवा दिया है तो इससे आप लोग क्यों डरते हैं? ॥९॥ वालिकी स्त्री ताराकी बात सुनकर

जीवपुत्रे निवर्तस्व पुत्रं रक्षस्व चाङ्गदम् । अन्तको रामरूपेण हत्वा नयति वालिनम् ॥११॥
क्षिप्तान्वृक्षान्समाविध्य विपुलाश्च तथा शिलाः। वाली वज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेव निपातितः ॥१२॥
अभिभूतमिदं सर्वं विद्रुतं वानरं बलम् । अस्मिन्प्लवगशार्दूले हते शक्रसमप्रभे ॥१३॥
रक्ष्यतां नगरी शूरैरङ्गदश्चाभिषिच्यताम् । पदस्थं वालिनः पुत्रं भजिष्यन्ति प्लवङ्गमाः॥१४॥
अथवा रुचितं स्थानमिह ते रुचिरानने । आविशन्ति च दुर्गाणि क्षिप्रमद्यैव वानराः ॥१५॥
अभार्याः सहभार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिणः । लुब्धेभ्यो विप्रलब्धेभ्यस्तेभ्योनः सुमहद्भयम्॥१६॥
अल्पान्तरगतानां तु श्रुत्वा वचनमङ्गना । आत्मनः प्रतिरूपं सा बभाषे चारुहासिनी ॥१७॥
पुत्रेण मम किं कार्यं राज्येनापि किमात्मना । कपिसिंहे महाभागे तस्मिन्भर्तरि नश्यति ॥१८॥
पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः । योऽसौ रामप्रयुक्तेन शरेण विनिपातितः ॥१९॥
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदती शोकमूर्छिता । शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती ॥२०॥
सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि । हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥२१॥
क्षेप्तारं पर्वतेन्द्राणां वज्राणामिव वासवम् । महावातसमाविष्टं महामेघौघनिःस्वनम् ॥२२॥
शक्रतुल्यपराक्रान्तं वृष्ट्वेवोपरतं घनम् । नर्दन्तं नर्दतां भीमं शूरं शूरेण पातितम् ॥२३॥
शार्दूलेनामिषस्यार्थे मृगराजमिवाहतम् ॥

इच्छानुसार रूप धरनेवाले वे वानर समयोचित और स्पष्ट वचन उनसे बोले ॥१०॥ हे जीवितपुत्रे, लौट चलो, अपने पुत्र अंगदकी रक्षा करो । रामका रूप धरकर यमराज वालिको ले जा रहा है ॥११॥ वालिके फेंके वृक्षों और बड़े-बड़े पत्थरोंको हटाकर वज्रके समान बाणसे शीघ्रही उसने वालिको गिरा दिया ॥१२॥ इन्द्रके समान हमारे वानरराजके मारे जानेपर यह हमारी समस्त सेना पराजित हो गई और इधर-उधर भाग गई ॥१३॥ वीरोंके द्वारा नगरीकी रक्षा करो । अंगदका राज्याभिषेक करो । राज्यारूढ़ वालिके पुत्रके अधीन रहेंगे ॥१४॥ हे सुमुखि, यद्यपि आपको यह स्थान पसंद है, पर सुग्रीव पक्षके वानर अब शीघ्र ही हमलोगोंके किलेमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ ब्याहे, अनब्याहे, सुग्रीव पक्षके अनेक वानर इस किलेमें आवेंगे । जो लोग राज्य चाहनेवाले थे, और जिन्हें हम लोगोंने सर्वदा सफल होनेसे वंचित किया था, उनसे हमलोगोंको बड़ा भय है ॥१६॥ पास आए हुए अथवा रास्तेमें मिले हुए उन वानरोंसे तारा अपने अनुकूल वचन बोली ॥१७॥ कपिश्रेष्ठ पतिके मारे जानेपर अब हमें पुत्रसे, राज्यसे और स्वयं अपनेसे क्या काम ॥१८॥ जो वे रामचन्द्रके छोड़े बाणसे गिराए गए हैं, उन्हीं महात्माके चरणोंमें मैं जाऊँगी ॥१९॥ दुखसे सिर और छाती अपने हाथोंसे पीटती हुई, शोकसे पीड़ित, रोती हुई तारा पतिकी ओर चली ॥२०॥ युद्धसे न मुड़नेवाले दानवोंके हन्ता वालिको जमीनमें पड़ा हुआ जाते जाते ताराने देखा ॥२१॥ इन्द्र जिस प्रकार वज्रको फेंकता है, उसी प्रकार जो पर्वतोंको फेंकता था, जिसका जोश वायुके समान था और शब्द मेघके समान था, ॥२२॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमी था वही जल बरसाकर गर्जनेवाले मेघके समान गर्जन करनेवाले वानरोंमें श्रेष्ठ वीर वालि, वीरके द्वारा मारा गया, जिस प्रकार मोटे मृगाको बाघ मांसके लिए मारता है ॥२३॥ सबसे पूजित,

अर्चितं सर्वलोकस्य सपताकं सवेदिकम् । नागहेतोः सुपर्णेन चैत्यमुन्मथितं यथा ॥२४॥
अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् । रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम् ॥२५॥
तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे । समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह ॥२६॥
सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी । रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा संवीतं मृत्युदामभिः ॥२७॥
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव । विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमातरम् ॥२८॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि काव्ये किष्किन्धाकाण्ड एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०

रामचापविसृष्टेन शरेणान्तकरेण तम् । दृष्ट्वा विनिहतं भूमौ तारा ताराधिपानना ॥ १ ॥
सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी । इषुणाभिहतं दृष्ट्वा वालिनं कुञ्जरोपमम् ॥ २ ॥
वानरं पर्वतेन्द्राभं शोकसंतप्तमानसा । तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयतातुरा ॥ ३ ॥
रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर । किमिदानीं पुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम् । नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥
अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप । गतासुरपि तां गात्रैर्मां विहाय निषेवसे ॥ ६ ॥
व्यक्तमद्य त्वया वीर धर्मतः संप्रवर्तता । किष्किन्धेव पुरी रम्या स्वर्गमार्गे विनिर्मिता॥ ७ ॥

पताका और वेदिकासे युक्त देवालयको सर्पके लिए जैसे गरुड़ तोड़ फोड़ देता है उसी तरह रामने वालिको मारा है ॥२४॥ ताराने विशाल धनुष लेकर बैठे हुए रामचंद्र लक्ष्मण तथा सुग्रीवको देखा ॥२५॥ उनसे आगे बढ़कर रणमें मारे गए अपने पतिके पास पहुँची । उन्हें देखकर दुःखित और उद्विग्न होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥२६॥ सोकर उठीहुईके समान वह 'आर्यपुत्र', कहकर मृत्युपाशसे बँधे पतिको देखकर रोने लगी ॥२७॥ कुररीके समान रोती हुई ताराको देखकर तथा अंगदको आया देख कर सुग्रीव दुखी हुआ ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ।

रामके छोड़े हुए मारक बाणसे मारे गए अपने पतिको पाकर चंद्रमुखी ताराने आलिंगन किया। हाथीके समान बड़े और पर्वतके समान वालिको बाणसे मारा हुआ देखकर ताराका मन शोकसे संतप्त हो गया और वह आतुर होकर उखड़े वृक्षके समान वालिको पड़ा देखकर रोने लगी ॥१, २, ३॥ हे वानरश्रेष्ठ वीर, रणमें घोर पराक्रम करनेवाले, आज तुम मुझको अपराधिनी समझकर नहीं बोल रहे हो क्या ? ॥४॥ वानरश्रेष्ठ, उठो, अच्छे बिछौनेपर सोओ । आपके समान राजा पृथ्वीपर नहीं सोते ॥५॥ हे वसुधाधिप, पृथ्वी आपको बहुत प्यारी है अतएव मरनेपर मुझे छोड़कर शरीरसे पृथ्वी पर आप पड़े हुए हैं ॥६॥ वीर, धर्मपूर्वक युद्ध करके तुमने अवश्यमेव किष्किन्धाके समान ही स्वर्गमें

यान्यस्माभिस्त्वया सार्धं वनेषु मधुगन्धिषु । विहृतानि त्वया काले तेषामुपरमः कृतः ॥ ८॥
निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोकसागरे । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने महायूथपयूथपे ॥ ९ ॥
हृदयं सुस्थिरं मह्यं दृष्ट्वा निपतितं भुवि । यन्न शोकाभिसंतप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा ॥१०॥
सुग्रीवस्य त्वया भार्या हृता स च विवासितः । यत्तत्तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं प्लवगाधिप ॥११॥
निःश्रेयसपरा मोहात्त्वया चाहं विगर्हिता । यैषाब्रुवं हितं वाक्यं वानरेन्द्र हितैषिणी ॥१२॥
रूपयौवनदृप्तानां दक्षिणानां च मानद । नूनमप्सरसामार्य चित्तानि प्रमथिष्यसि ॥१३॥
कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव । बलाद्येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशी ॥१४॥
अस्थाने वालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च । न संतप्यति काकुत्स्थः कृत्वा कर्म सुगर्हितम् ॥१५॥
वैधव्यं शोकसंतापं कृपणाकृपणा सती । अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥१६॥
लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः । वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्च्छिते ॥१७॥
कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् । दुर्लभं दर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ॥१८॥
समाश्वासय पुत्रं त्वं संदेशं संदिशस्व मे । मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥१९॥
रामेण हि महत्कर्म कृतं त्वामभिनिघ्नता । आनृण्यं तु गतं तस्य सुग्रीवस्य प्रतिश्रवे ॥२०॥
सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे । भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव ॥२१॥

रमणीय नगरी बना ली है ॥७॥ तुम्हारे साथ उत्तम गन्धवाले वनोंमें हम लोगोंने जो विहार किए हैं उनको तुमने समाप्त कर दिया ॥८॥ बड़े बड़े यूथपतियोंके स्वामी आपके मरनेपर मेरा आनन्द नष्ट हो गया। मेरी आशा जाती रही। मैं शोक-समुद्रमें डूब गई। मेरा मन बड़ा ही दृढ़ है, जो आपको पृथ्वीमें पड़ा देखकर भी शोकतप्त होकर हजारों टुकड़ेमें नहीं फट जाता ॥१०॥ सुग्रीवकी स्त्री आपने हर ली, उसे निकाल दिया, हे वानरराज, उसीका आपने यह फल पाया है ॥११॥ तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे हित चाहनेवाली मैंने जो बातें कहीं, मोहवश आपने उसका तिरस्कार किया ॥१२॥ रूप यौवनसे गर्वीली चतुर अप्सराओंका मन तुम अवश्य ही हरण करोगे ॥१३॥ यह काल अवश्य ही आपका मृत्युकाल था, जिसने स्वाधीनता होनेपर भी आपको सुग्रीवके अधीन किया ॥१४॥ दूसरेसे युद्ध करते हुए, वालिको मारकर रामचन्द्र क्या पश्चात्ताप नहीं करते? यह निन्दित काम करके वे जो पश्चात्ताप नहीं करते यह अनुचित है! ॥१५॥ पहले मैंने दुख नहीं देखा, कष्ट नहीं सहे, अब मैं अनाथके समान दुखदायी वैधव्यके दुख दीनतापूर्वक सहूँगी ॥१६॥ सुकुमार अंगदका मैंने बहुत लालन किया है। अब चाचाके क्रोधसे इसकी कैसी अवस्था होगी? ॥१७॥ पुत्र, धर्मवत्सल पिताको खूब देख लो। बेटा, उनका दर्शन अब दुर्लभ होगा ॥१८॥ आप अपने पुत्रको आश्वासन दीजिए। आप पुत्रका शिर सूँघ कर इसको आश्वासन दीजिए और मेरे लिए संदेश दीजिए; क्योंकि आप तो प्रवासमें जा रहे हैं ॥१९॥ रामचन्द्रने सुग्रीवसे जो प्रतिज्ञा की थी उसका ऋण आपको मारकर उन्होंने चुका दिया। रामचन्द्रने यह बहुत बड़ा काम किया ॥२०॥ हे सुग्रीव, तुम्हारा भाई मारा गया। स्वस्थ होकर राज्य

किं मामेवं प्रलपतीं प्रियां त्वं नाभिभाषसे । इमाः पश्य वरा बह्वयो भार्यास्ते वानरेश्वर ॥२२॥
तस्या विलपितं श्रुत्वा वानर्यः सर्वतश्च ताः । परिगृह्याङ्गदं दीना दुःखार्ताः प्रतिचुक्रुशुः ॥२३॥

किमङ्गदं साङ्गदवीरबाहो विहाय यातोऽसि चिरं प्रवासम् ।
न युक्तमेवं गुणसन्निकृष्टं विहाय पुत्रं प्रियचारुवेषम् ॥२४॥
यद्यप्रियं किंचिदसंप्रधार्य कृतं मया स्यात्तव दीर्घबाहो ।
क्षमस्व मे तद्धरिवंशनाथ व्रजामि मूर्ध्ना तव वीर पादौ ॥२५॥
तथा तु तारा करुणं रुदन्ती भर्तुः समीपे सह वानरीभिः ।
व्यवस्यत प्रायमनिन्द्यवर्णा उपोपवेष्टुं भुवि यत्र वाली ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात् । शनैराश्वासयामास हनुमान्हरियूथपः ॥ १ ॥
गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम् । अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥ २ ॥
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे । कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन्बुद्बुदोपमे॥३॥

भोग करो । क्षमा भी तुम्हें मिलेगी । तुम सफल मनोरथ हो ॥२१॥ इस प्रकार विलाप करती हुई अपनी प्रियासे आप क्यों नहीं बोलते ? वानरेश्वर, आप अपनी अनेक इन सुंदरी स्त्रियोंको देखें ॥२२॥ ताराका विलाप सुनकर, और अंगदको साथ लेकर वे सब विलाप करने लगीं ॥२३॥ हे वीरोंको हनन करनेवाले वीर, अंगदको छोड़कर इतना लम्बा प्रवास आपने क्यों किया ? गुणी और सुन्दर पुत्रको छोड़कर आपका जाना उचित नहीं है।॥२४॥ हे दीर्घबाहो, मेरे द्वारा किए गए, किसी अप्रिय कार्यको देखकर यदि आपने प्रवास किया हो तो मुझे क्षमा करें। मैं मस्तकसे आपके पैरोंपर पड़ती हूँ ॥२५॥ वानरियोंके साथ, पतिके पास, इस प्रकार दीनतापूर्वक विलाप करती हुई ताराने भूमिपतित वालिके पास प्रयोपवेशन करना निश्चित किया । (बिना खाए प्राण त्याग करनेको प्रायोपवेशन कहते हैं) ॥२६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बीसवां सर्ग समाप्त ।

आकाशसे गिरी ताराके समान तारा पृथिवीपर गिर गई, यह देखकर हनुमान धीरे-धीरे उसे समझाने लगे ॥१॥ मनुष्य अच्छे और बुरे कर्मोंका फल सुख और दुख दूसरे लोकमें जाकर भी भोगता है ॥२॥ पाप कर्मोंसे बढ़ी हुई तुम स्वयं शोचनीय हो, फिर दूसरेके लिए तुम शोक क्या करोगी । तुम कर्मफलोंके कारण स्वयं दुखिनी हो फिर किसी दुखी पर तुम क्या दया करोगी । यह

अंगदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया। आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय ॥ ४ ॥
जानस्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्। तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्हरिसहस्राणि शतानि नियुतानि च। वर्तयन्ति कृताशानि सोऽयं दिष्टान्तमागतः ॥ ६ ॥
यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः। गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥
सर्वे च हरिशार्दूलाः पुत्रश्चायं तवाङ्गदः। हर्यृक्षपतिराज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दते ॥ ८ ॥
ताविमौ शोकसंतप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि। त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शास्तु मेदिनीम् ॥ ९ ॥
संततिश्च यथा दृष्टा कृत्यं यच्चापि सांप्रतम्। राज्ञस्तत्क्रियतां सर्वमेष कालस्य निश्चयः ॥१०॥
संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम्। सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥११॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता। अब्रवीदुत्तरं तारा हनूमन्तमवस्थितम् ॥१२॥
अङ्गदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम्। हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम् ॥१३॥
न चाहं हरिराज्यस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा। पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः ॥१४॥
न ह्येषा बुद्धिरास्थेया हनूमन्नङ्गदं प्रति। पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥१५॥

शरीर बुद्बुदके समान है। कौन किसको सोचेगा ॥३॥ तुम्हारा पुत्र जीवित है। कुमार अंगदका तुम्हें पालन करना चाहिए। आगेके लिए इसकी भलाईके जो काम हैं वे ही तुम्हें करने चाहिए। उन्हींका तुम विचार करो ॥४॥ प्राणियोंका जीवन मरण अनिश्चित है, इस कारण तुम्हारी समान बुद्धिमतीको पारलौकिक, शुभकर्म ही करने चाहिए, लौकिक नहीं ॥५॥ जिसके अधीन हजारों करोड़ वानर रहते थे और अपने निर्वाहकी आशा रखते थे, वही आज अपनी आयुकी अवधि पूरा कर चुका। अपने किए पुण्योंका फल भोगनेके लिए चला गया ॥६॥ नीतिके अनुसार जिसने राज्य का पालन किया है। साम, दाम, और क्षमासे व्यवहार किया है वह धर्मात्माओंके लोकमें गया। उसके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥७॥ ये सब श्रेष्ठ वानर तथा तुम्हारा पुत्र यह अंगद तुम्हारे अधीन हैं। वानरों और भालुओंका यह राज्य भी तुम्हारे ही आधीन है, अर्थात् तुम अनाथ नहीं हो ॥८॥ महारानी, शोक और सन्तापको आप धीरे धीरे कम करें। आपके आधीन रहकर अंगद पृथिवीका पालन करे ॥९॥ इस समय पुत्रके लिए शास्त्रोंमें जो कर्तव्य बतलाया गया है और राजा वालिके लिए जो कार्य करना उचित है, इस समय वही सब कीजिए। वही वर्तमान समयके लिए उचित है ॥१०॥ वानर राजाका अन्तिम संस्कार कीजिए। अंगदका अभिषेक कीजिए। पुत्रको राजसिंहासनपर देखकर आपको शान्ति मिलेगी ॥११॥ पतिवियोगसे पीड़ित तारा ये वचन सुनकर पास बैठे हनुमानसे बोली ॥१२॥ अंगदके समान सौ सुपुत्र एक ओर और मृत इस वीरका आलिंगन एक ओर। इन दोनोंमें इस वीरका आलिंगन ही मेरे लिए श्रेष्ठ है ॥१३॥ मैं वानर-राज्यका प्रभु नहीं हो सकती और न अंगद ही। इसके चाचा इसके सब कार्योंमें समर्थ हैं। वे ही इसके नजदीकी भी हैं ॥१४॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान, अंगदके विषयमें तुम लोगोंको यह न समझना चाहिए कि पिता ही पुत्रका बन्धु है, माता नहीं ॥१५॥ वानर राजा

नहि मम हरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्ति परत्र चेह वा ।
अभिमुखहतवीरसेवितं शयनमिदं मम सेवितुं क्षमम् ॥१६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१



द्वाविंशः सर्गः २२

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् । आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥ १ ॥
तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् । आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥२॥
सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्विषात् । कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात्॥ ३ ॥
युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः । सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥ ४ ॥
प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् । मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा । प्रजहाम्येषु वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥ ६ ॥
अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः । यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥ ७ ॥
सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् । बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥ ८ ॥
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् । मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ ९ ॥

वालिके निवास स्थानके अतिरिक्त मेरे लिए इस लोक तथा परलोकमें सुखकर कोई स्थान नहीं है । सामने मरा हुआ यह वीर जिस आसनपर सो रहा है वही मेरे योग्य है ॥ १६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ।



वालि शिथिल हो गया था । धीरे-धीरे स्वास ले रहा था और चारो ओर देख रहा था । उसने सबसे पहले अपने छोटे भाई सुग्रीवको सामने देखा ॥१॥ विजयी वानरेश्वर सुग्रीवको स्पष्ट शब्दोंमें सम्बोधित करके स्नेहपूर्वक वह बोला ॥ २ ॥ सुग्रीव, पूर्व जन्मके पापोंके कारण तथा भावीवश दुर्बुद्धिसे जो मैंने तुम्हारे प्रति व्यवहार किया है, उसके लिए तुम मुझे दोषी न समझना ॥३॥ तात, हम दोनोंको एक साथ भ्रातृ-प्रेम और राज्य-सुख नहीं था, इसीलिए यह विपरीत घटना हुई ॥४॥ मैं आज ही यमपुर जा रहा हूँ, यह तुम समझो । अतएव इन वानरोंका राज्य तुम आज ही ग्रहण करो ॥५॥ मैं जीवन, राज्य, विपुल-सम्पत्ति तथा अनिन्दित यश इन सबका आज ही त्याग करता हूँ ॥६॥ वीर, इस अवस्थामें जो वचन मैं कहूँगा, यद्यपि उसका करना कठिन है, तथापि तुम अवश्य ही वह करना ॥७॥ सुख पानेके योग्य, सुखसे पले हुए, इस बुद्धिमान् बालक अंगदको देखो, यह भूमिमें पड़ा है और रो रहा है ॥८॥ प्राणोंसे भी प्रिय मेरे इस पुत्रको तुम अपने निजी पुत्रके समान समझना । इसकी इच्छाएँ पूरी कर सब प्रकार इसका पालन करो ॥९॥ तुम भी मेरे समान इसके

त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः । भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥१०॥
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः । रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥११॥
अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान्रणे । करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः ॥१२॥
सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये । औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥१३॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् । नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ॥१४॥
राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया । स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥१५॥
इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्। उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि॥१६॥
इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् । हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१७॥
तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः । जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥१८॥
तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम्। संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥१९॥
देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये । सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥२०॥
यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया । न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मन्यते ॥२१॥
नास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिंदम । भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥२२॥
न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते । उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदृग्भव ॥२३॥

पिता, दाता, रक्षक और भयके समय अभय देनेवाले होओ ॥१०॥ यह ताराका श्रीमान् पुत्र तुम्हारे समान पराक्रमी है। राक्षसोंके वधके समय यह तुम्हारे आगे-आगे रहेगा ॥११॥ बली और तेजस्वी ताराका यह जवान पुत्र अंगद रणमें जाकर मेरे समान काम करेगा। १२॥ सुषेणकी कन्या यह तारा सूक्ष्म विषयोंके निर्णय करने तथा नाना प्रकारके उत्पातसूचक चिन्होंको जाननेमें अत्यन्त निपुण है ॥१३॥ जिस कामके लिए यह अच्छा कह दे, अवश्य ही वह काम सिद्ध होता है। ताराकी सम्मति कभी विपरीत नहीं होती ॥१४॥ रामचन्द्रके कार्योंको भी तुम निशंक होकर करना। नहीं करोगे तो पाप होगा और तिरस्कृत होनेपर रामचन्द्र तुम्हें मार भी डालेंगे ॥१५॥ सुग्रीव, यह दिव्य सोनेकी माला लो, इसमें प्रशस्त विजयलक्ष्मी वर्तमान है। मेरे मरनेपर इसकी श्री नष्ट हो जायगी, अतएव इसे तुम धारण करो ॥१६॥ भ्रातृ-प्रेमसे वालिने सुग्रीवसे ये बातें कहीं। उसकी प्रसन्नता जाती रही। राहु-ग्रस्त चन्द्रमाके समान वह मलिन हो गया ॥१७॥ वालिके वचनोंसे उसका वैर शान्त हो गया। तत्पर होकर उचित कार्य वह करने लगा। भाईकी आज्ञासे सोनेकी माला उसने ले ली ॥१८॥ सोनेकी माला देकर मरनेके लिए निश्चय करके सामने खड़े अंगदसे वालि स्नेहपूर्वक बोला ॥१९॥ देश-कालको समझो, इष्ट अनिष्टको तथा समयपर सुख दुःखको सहो और सुग्रीवके अधीन रहो ॥२०॥ जिस प्रकार मैंने तुम्हारा लालन किया है, उस प्रकार रहनेसे सुग्रीव तुम्हारा आदर नहीं करेगा। सुग्रीवके शत्रुओंके साथीसे मित्रता मत करो। शत्रुओंसे भी मित्रता मत करो ॥२१॥ स्वामीके हितका साधन करो और जितेन्द्रिय बनो। सुग्रीवके अधीन रहो ॥२२॥ बहुत प्रेम या बिलकुल प्रेमका अभाव न करो; क्योंकि

इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसंपीडितो भृशम् । विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥२४॥
ततो विचुक्रुशुस्तत्र वानरा हतयूथपाः । परिदेवयमानास्ते सर्वे प्लवगसत्तमाः ॥२०॥
किष्किन्धा ह्यद्य शून्या च स्वर्गते वानरेश्वरे । उद्यानानि च शून्यानि पर्वताः काननानि च॥२६॥
हते प्लवगशार्दूले निष्प्रभा वानराः कृताः । येन दत्तं महद्युद्धं गन्धर्वस्य महात्मनः ॥२७॥
गोलभस्य महाबाहोर्दश वर्षाणि पञ्च च । नैव रात्रौ न दिवसे तद्युद्धमुपशाम्यति ॥२८॥
ततः षोडशमे वर्षे गोलभो विनिपातितः । तं हत्वा दुर्विनीतं तु वाली दंष्ट्राकरालवान् ।
सर्वाभयंकरोऽस्माकं कथमेष निपातितः ॥२९॥

हते तु वीरे प्लवगाधिपे तदा वनेचरास्तत्र न शर्म लेभिरे ।
वनेचराः सिंहयुते महावने यथा हि गावो निहते गवां पतौ ॥३०॥
ततस्तु तारा व्यसनार्णवप्लुता मृतस्य भर्तुर्वदनं समीक्ष्य सा ।
जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनं महाद्रुमं छिन्नमिवाश्रिता लता ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥



इन दोनोंमें दोष है । अतएव मध्य भावसे रहो ॥२३॥ इतना कहकर शरके आघातसे व्यथित वालिने आंखें खोल दीं । भयानक दांतवाला उसका मुँह खुल गया और उसके प्राण निकल गए ॥२४॥ यूथपतिके मारे जानेसे सभी श्रेष्ठ वानर रो रोकर वहां विलाप करने लगे ॥२५॥ वानराधिपतिके आज स्वर्ग जानेसे किष्किन्धा शून्य हो गई। उद्यान, पर्वत और वन शून्य हो गए ॥२६॥ वानराधिपतिके मारे जानेसे वानरोंकी शोभा जाती रही । उसने महात्मा गन्धर्वके साथ बड़ा भारी युद्ध किया था ॥२७॥
वह गोलभ नामक गन्धर्वके साथका युद्ध पन्द्रह वर्षों तक हुआ था । दिन और रातमें कभी उस युद्धकी समाप्ति न होती थी ॥२८॥ सोलहवें वर्षमें गोलभ गिराया गया । उस दिन भयानक दाढ़वाले उस दुर्विनीतको मारकर हमलोगोंका अभय किया था । वह वालि कैसे मारा गया ॥२९॥ वानराधिपति वीर वालिके मारे जाने पर वनचारी वानरोंको सुख नहीं हुआ, जिस प्रकार गौओंके स्वामीके मारे जाने पर सिंहयुक्त महावनमें गौओंको सुख नहीं होता ॥३०॥ दुःखसमुद्रमें मग्न तारा पतिका मुँह देखकर वालिको आलिंगन करके कटे वृक्षमें लिपटी लताके समान भूमिपर गिर पड़ी ॥३१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बाईसवां सर्ग समाप्त ।



त्रयोविंशः सर्गः २३

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम्। पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम। उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले ॥ २ ॥
मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव। शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे ॥ ३ ॥
सुग्रीवस्य वशं प्राप्तो विधिरेष भवत्यहो। सुग्रीव एव विक्रान्तो वीर साहसिकप्रिय ॥ ४ ॥
ऋक्षवानरमुख्यास्त्वां बलिनं पर्युपासते। तेषां विलपितं कृच्छ्रमङ्गदस्य च शोचतः ॥ ५ ॥
मम चेमा गिरः श्रुत्वा किं त्वं न प्रतिबुध्यसे। इदं तद्वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि ॥ ६ ॥
शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा। विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय ॥ ७ ॥
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद। शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता ॥ ८ ॥
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्। अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः ॥ ९ ॥
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे। अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् ॥१०॥
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम्। सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः ॥११॥
प्रहारे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः। पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ॥१२॥

कपिराजका मुँह सूँघती हुई लोक-प्रसिद्ध तारा मृत-पतिसे यह बोली ॥१॥ पथरीली और दुख देनेवाली, इस ऊबड़ खाबड़ पृथ्वीपर तुम मेरी बात न मानकर इस समय सो रहे हो ॥२॥ वानरेन्द्र, यह पृथ्वी तुम्हें मुझसे भी अधिक प्रिय है, ऐसा मालूम होता है; क्योंकि तुम मुझे छोड़कर उसपर सो रहे हो और मुझसे बातें भी नहीं करते ॥३॥ ऐ साहसिक कार्योंसे प्रेम रखनेवाले वीर, भाग्यने सुग्रीवका साथ दिया। अर्थात् भाग्यरूपी रामचन्द्र सुग्रीवके पक्षमें हुए। अतएव इस समय सुग्रीव ही पराक्रमी हुए ॥४॥ जो श्रेष्ठ भालु और वानर, तुम्हारी उपासना करते थे उनका तथा दुखी अंगदका विलाप सुनकर तथा मेरे इन वचनोंको सुनकर तुम क्यों नहीं जागते ? यह वीर शयन है अर्थात् वीरोंके सोनेकी शय्या है, जहाँ मारे जाकर तुम सो रहे हो ॥५, ६॥ हे मेरे प्रिय, हे युद्धसे प्रेम करनेवाले, हे कपटरहित पुरुषोंका साथ करनेवाले जिस शय्यापर पहले तुमने शत्रुओंको शयन कराया है, आज उसपर तुम स्वयं सो रहे हो ॥७॥ हे मानद, मुझे अकेली और अनाथ छोड़कर चले गए। अतएव विद्वान्को चाहिए कि वे वीरको कन्यादान न करें ॥८॥ वीरोंकी स्त्री मरी हुई ही है। देखो, मैं आजही विधवा हो गई। मेरा सत्कार नष्ट हो गया और मेरा सुख जाता रहा ॥ ९ ॥ अगाध और विशाल शोक-सागरमें मैं डूब रही हूँ। अवश्यही मेरा यह हृदय पत्थरका बना हुआ बड़ाही कठोर है ॥ १० ॥ जो ऐसे पतिको मृत देखकर आज सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाता। जो स्वभावसे ही मेरे मित्र और प्रिय थे ॥११॥ शत्रुओंपर पराक्रमपूर्वक प्रहार करनेवाला वीर आज मर गया। पति-हीन स्त्री, भलेही पुत्रवती हो, भलेही धनधान्यसे पूरी हो, विद्वान् उसे विधवा कहते हैं। लाहके रंगे अपने बिछौनेके समान अपने शरीरसे निकले रुधिर पर तुम इस समय सो रहे हो। धूल और लोहूसे तुम्हारा समस्त

धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते बुधैः। स्वगात्रप्रभवे वीर शेषे रुधिरमण्डले ॥१३॥
कृमिरागपरिस्तोमे स्वकीये शयने यथा। रेणुशोणितसंवीतं गात्रं तव समन्ततः ॥१४॥
परिरब्धुं न शक्नोमि भुजाभ्यां प्लवगर्षभ। कृतकृत्योऽद्य सुग्रीवो वैरेऽस्मिन्नतिदारुणे ॥१५॥
यस्य रामविमुक्तेन हृतमेकेषुणा भयम्। शरेण हृदि लग्नेन गात्रसंस्पर्शने तव ॥१६॥
वार्यामि त्वां निरीक्षन्ती त्वयि पञ्चत्वमागते। उद्बबर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा ॥१७॥
गिरिगह्वरसंलीनं दीप्तमाशीविषं यथा। तस्य निष्कृष्यमाणस्य बाणस्यापि बभौ द्युतिः॥१८॥
अस्तमस्तकसंनद्धरश्मेर्दिनकरादिव। पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥१९॥
ताम्रगैरिकसंपृक्ता धारा इव धराधरात्। अवकीर्णं विमार्जन्ती भर्तारं रणरेणुना ॥२०॥
अस्रैर्नयनजैः शूरं सिषेचास्त्रसमाहतम्। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् ॥२१॥
उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना। अवस्थां पश्चिमां पश्य पितुः पुत्र सुदारुणाम् ॥२२॥
संप्रसक्तस्य वैरस्य गतोऽन्तः पापकर्मणा। बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम् ॥२३॥
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम्। एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः ॥२४॥
भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन्। अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा ॥२५॥
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे। अहं पुत्रसहाया त्वामुपासे गतचेतनम्।
सिंहेन पातितं सद्यो गौः सवत्सेव गोवृषम् ॥२६॥
इष्ट्वा सङ्ग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा। तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥२७॥

शरीर सना हुआ है ॥१२,१३,१४॥ मैं अपनी भुजाओंसे तुम्हारा आलिंगन नहीं कर सकती। इस भयानक वैरमें सुग्रीवही कृतकृत्य हुआ ॥१५॥ जिसके भयको रामके छोड़े एक बाणने दूर करा दिया, हृदयमें लगे बाणके कारण तुम्हारे गात्रस्पर्श करनेसे रोकी जाती हूँ ॥१६॥ तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हें देख रही हूँ, पर तुम्हारा गात्रस्पर्श नहीं कर सकती। उस समय नील नामक वानरने वालिके शरीरसे वह बाण निकाल लिया ॥१७॥ निकालते समय उस बाणकी वैसी ही शोभा हुई जैसी गुप्त गुफासे निकलते हुए सूर्यकी होती है॥१८॥ अस्ताचलके शिखर पर ठहरे सूर्यकी निकलने वाली किरणोंके समान वालिके बाणके रुधिरकी धारा निकली ॥१९॥ मानों पर्वतसे लाल गेरु-युक्त धारा निकल रही हो ॥२०॥ रणकी धूलसे भरे हुए पतिको पोंछती हुई, अस्त्रसे आहत और रुधिरसे सर्वांगसिक्त मृत पतिको आँसूओंसे सिक्त करने लगी ॥२१॥ तारा पीली आंखवाले पुत्र अंगदसे बोली—पुत्र, पिताकी यह भयानक अन्तिम अवस्था देखो ॥२२॥ प्राक्तन, पापके कारण उत्पन्न वैरका आज अन्त हो गया। बालसूर्यके समान प्रकाशमान शरीर आज यमराजके यहां चला गया ॥२३॥ पुत्र, राजा अपने पिताको प्रणाम करो। ऐसा कहनेपर उसने पिताके चरण पकड़े ॥२४॥ मोटी और गोली भुजाओंसे चरण पकड़कर, मैं अंगद हूँ ऐसा कहते हुए, प्रणाम किया, जब अंगद आपको पहले प्रणाम करता था तब, आर्य पुत्र, दीर्घायु हो ऐसा कहते थे, आज वैसा क्यों नहीं कहते? मैं पुत्रके साथ आपके शवके समीप हूँ। जिस प्रकार सिंहके मारे सांढ़के पास बच्छेके साथ गौ रहती है ॥२५,२६॥ तुमने संग्राम-यज्ञ किया, उसमें रामके अस्त्र-

या दत्ता देवराजेन तव तुष्टेन संयुगे । शातकौम्भीं प्रियां मालां तां ते पश्यामि नेह किम् ॥२८॥
राज्यश्रीर्न जहाति त्वां गतासुमपि मानद । सूर्यस्यावर्तमानस्य शैलराजमिव प्रभा ॥२९॥
न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव ।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥



चतुर्विंशः सर्गः २४

तामाशु वेगेन दुरासदेन त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन ।
पश्यंस्तदा वाल्यनुजस्तरस्वी भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन तेपे ॥ १ ॥
स बाष्पपूर्णेन मुखेन पश्यन्क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी ।
जगाम रामस्य शनैः समीपं भृत्यैर्वृतः संपरिदूयमानः ॥ २ ॥
स तं समासाद्य गृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम् ।
यशस्विनं लक्षणलक्षिताङ्गमवस्थितं राघवमित्युवाच ॥ ३ ॥
यथा प्रतिज्ञातमिदं नरेन्द्र कृतं त्वया दृष्टफलं च कर्म ।
ममाद्य भोगेषु नरेन्द्रसूनो मनो निवृत्तं हतजीवितेन ॥ ४ ॥

रूपी जलसे मुझे छोड़कर अकेले स्नान क्यों किया ॥२७॥ इन्द्रने युद्धमें प्रसन्न होकर तुम्हें जो सोनेकी माला दी, उसे मैं नहीं देख रही हूँ ॥२८॥ मानद, मरनेपर भी राज्यलक्ष्मी तुम्हारा त्याग नहीं करती। जिस प्रकार परिभ्रमण करनेवाले सूर्यकी प्रभा मेरुपर्वतका त्याग नहीं करती ॥२९॥ तुमने मेरा 'हितकारी' वचन नहीं माना और मैं भी तुम्हें रोक नहीं सकी। रणमें तुम्हारे मारे जानेसे पुत्रके साथ मैं भी मारी गई। तुम्हारे साथही मुझे और पुत्रको राजलक्ष्मीने छोड़ दिया ॥३०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेईसवां सर्ग समाप्त



ताराको वेगके साथ शोक-समुद्रमें डूबी हुई देखकर वालिका छोटा भाई अति वेगवान् सुग्रीव अप्रतिम भाईके वधसे दुखी हुआ ॥१॥ आंसूसे उसका मुँह भर गया। ताराको देखकर खिन्न होकर भीतरसे दुखी होता हुआ, अपने भृत्योंके साथ धीरे-धीरे रामचन्द्रके समीप गया ॥ २ ॥ रामचन्द्र धनुष और सर्पके समान बाण लिए हुए थे। सब लक्षणोंसे लक्षित उदास यशस्वी और बैठे हुए रामचन्द्रसे सुग्रीव बोला, ॥३॥ नरेन्द्र, आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी की और उसका फल भी देखा गया। अर्थात् आपने वालिको मारा और मुझे राज्य मिला। परन्तु राजपुत्र आज इस निन्दित जीवनके भोगोंसे

अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां पुरेऽतिविक्रोशति दुःखतप्ते ।
हते नृपे संशयितेऽङ्गदे च न राम राज्ये रमते मनो मे ॥ ५ ॥
क्रोधादमर्षादतिविप्रधर्पाद्भ्रातुर्वधो मेऽनुमतः पुरस्तात् ।
हते त्विदानीं हरियूथपेऽस्मिन्सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवर प्रतप्स्ये ॥ ६ ॥
श्रेयोऽद्य मन्ये मम शैलमुख्ये तस्मिन्हि वासश्चिरमृष्यमूके ।
यथा तथा वर्तयतः स्ववृत्त्या नेमं निहत्य त्रिदिवस्य लाभः ॥ ७ ॥
न त्वा जिघांसामि चरेति यन्मामयं महात्मा मतिमानुवाच ।
तस्यैव तद्राम वचोऽनुरूपमिदं वचः कर्म च मेऽनुरूपम् ॥ ८ ॥
भ्राता कथं नाम महागुणस्य भ्रातुर्वधं राम विरोचयेत ।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं विचिन्तयन्कामपुरस्कृतोऽपि ॥९॥
वधोहिमेमतोनासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात् । ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारी व्यतिक्रमः॥१०॥
द्रुमशाखावभग्नोऽहं मुहूर्तं परिनिष्टनन् । सान्त्वयित्वा त्वनेनोक्तो न पुनः कर्तुमर्हसि॥११॥
भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षितः । मया क्रोधश्च कामश्च कपित्वं च प्रदर्शितम् ॥१२॥
अचिन्तनीयं परिवर्जनीयमनीप्सनीयं स्वनवेक्षणीयम् ।
प्राप्तोऽस्मि पाप्मानमिदं वयस्य भ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेन्द्रः ॥१३॥

मेरा मन टूट गया ॥ ४॥ इस महारानीके अधिक रोनेसे, पुरवासियोंके विलापसे और अंगदके जीवन-संशय उपस्थित होनेसे अब मेरा मन राज्यमें नहीं लगता ॥ ५ ॥ क्रोधसे भाईके दुःसह तिरस्कारसे पहले मैं इनका वध चाहता था, पर अब उनके मारे जानेपर मैं बहुत अधिक दुखी हो रहा हूँ ॥६॥ आज मैं पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक पर्वत परही सदा निवास करना अच्छा समझता हूँ। मैं किसी प्रकार अपना काम चला लेता। भाईको मारनेसे मुझे स्वर्ग नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् महात्मा वालिने जो मुझसे कहा कि मैं तुमको मारना नहीं चाहता, तुम यहांसे चले जाओ, हे राम, यह काम इन्हींके अनुरूप है और मैंने जो उनका वध कराया यह मेरे अनुरूप है ॥ ८ ॥ अत्यन्त स्वार्थी भाई भी, राज्यके सुख तथा भ्रातृ-वधके अनन्तर होनेवाले दुख—इन दोनोंका तारतम्य विचार कर भाईका वध करना कभी न चाहेगा ॥९॥ वालि मेरा वध करना नहीं चाहता था, क्योंकि उसे अपने गौरवमें कलंक लगनेका भय था। और दुर्जनताके कारण मैं भाईका प्राण लेना चाहता था ॥१०॥ जब उसने वृक्षकी शाखासे मुझे मारा और थोड़ी देर तक दीनतापूर्वक मैं तुम्हें पुकारने लगा। उस समय वालिने मुझे समझाकर कहा था, 'फिर' तुम ऐसा न करना ॥११॥ वालिने भ्रातृत्व, अपनी महत्ता और धर्मकी रक्षा की और मैंने क्रोध, स्वार्थ तथा अपना वानरी चांचल्य दिखलाया है ॥१२॥ अचिन्तनीय सज्जनोंके द्वारा त्याज्य अनीप्सित तथा न देखने योग्य जो मैंने भाईके वधसे यह पाप किया है वह त्वाष्ट्रके वधसे इन्द्रके

पाप्मानमिन्द्रस्य मही जलं च वृक्षाश्च कामं जगृहुः स्त्रियश्च ।
को नाम पाप्मानमिमं सहेत शाखामृगस्य प्रतिपत्तुमिच्छेत् ॥१४॥
नार्हामि संमानमिमं प्रजानां न यौवराज्यं कुत एव राज्यम् ।
अधर्मयुक्तं कुलनाशयुक्तमेवंविधं राघव कर्म कृत्वा ॥१५॥
पापस्य कर्तास्मि विगर्हितस्य क्षुद्रस्य लोकापकृतस्य लोके ।
शोको महान्मामभिवर्ततेऽयं वृष्टेर्यथा निम्नमिवाम्बुवेगः ॥१६॥
सोदर्यघातापरगात्रवालः संतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ।
एनोमयो मामभिहन्ति हस्ती दृप्तो नदीकूलमिव प्रवृद्धः ॥१७॥
अंहो बतेदं नृवराविषह्यं निवर्तते मे हृदि साधु वृत्तम् ।
अग्नौ विवर्णं परितप्यमानं किट्टं यथा राघव जातरूपम् ॥१८॥
महाबलानां हरियूथपानामिदं कुलं राघव मन्निमित्तम् ।
अस्याङ्गदस्यापि च शोकतापादर्धस्थितप्राणमितीव मन्ये ॥१९॥
सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः कुतस्तु पुत्रः सदृशोऽङ्गदेन ।
न चापि विद्येत स वीर देशो यस्मिन्भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥२०॥
अद्याङ्गदो वीरवरो न जीवेज्जीवेत माता परिपालनार्थम् ।
विना तु पुत्रं परितापदीना सा नैव जीवेदिति निश्चितं मे ॥२१॥

पापके समान है ॥१३॥ इन्द्रके पापको पृथिवी जल, वृक्ष तथा स्त्रियोंने इच्छापूर्वक बाँट लिया था, पर मुझ वानरके किए इस पापको कौन लेना चाहेगा ॥१४॥ अधर्म-युक्त तथा कुलनाशी ऐसा कर्म करके, हे रामचन्द्र, प्रजाओंका यह सम्मान मैं नहीं चाहता । युवराज बनना भी नहीं चाहता । राज्य लेना तो चाहता ही नहीं ॥१५॥ निन्दित, छोटे आदमियोंके योग्य तथा लोकोपकारी पाप मैंने किया है । जिस प्रकार वृष्टिकी जलधारा नीचेकी ओर जाती है, उसी प्रकार यह महान् शोक मेरे यहाँ आता है ॥१६॥ यह पाप-रूपी मतवाला हाथी नदी-तीरके समान मुझे आघात पहुँचा रहा है । भाईका वधही इसकी पूँछके बाल हैं और अनेक प्रकारके संताप इसकी सूँड़, आंख, कान, मस्तक तथा दांत हैं ॥१७॥ हे नरश्रेष्ठ, इस असह्य पापसे मेरे हृदयकी सज्जनता नष्ट हो रही है, जिस प्रकार अग्निमें तपाए जानेपर कुत्सित मल सोनेका साथ छोड़ देता है । अर्थात् बलवान् अधर्मका साथ दुर्बल उत्तम छोड़ देता और बलवान उत्तमका साथ दुर्बल अधम छोड़ देता है ॥१७॥ हे राजा, महाबली वानर राजाओंका यह कुल शोकतापके कारण अंगदका भी आधाही प्राण मैं समझता हूँ और इसका कारण मैं ही हूँ ॥१९॥ पुत्र मिल सकता है, वह सज्जन और वशमें रहनेवाला भी हो सकता है; पर अंगदके समान पुत्र कहां मिलेगा । वीर, वह देश भी नहीं है जहां जानेसे भाईका साक्षात्कार हो ॥२०॥ वीरवर, अंगद शायद न जीवें । वह यदि जीता तो उसका पालन करनेके लिए उसकी माता भी जीती । पुत्रके बिना अत्यन्त खेदसे क्षीण होकर तारा

सोऽहं प्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निं भ्रात्रा च पुत्रेण च सख्यमिच्छन् ।
इमे विचेष्यन्ति हरिप्रवीराः सीतां निदेशे परिवर्तमानाः ॥२२॥
कृत्स्नं तु ते सेत्स्यति कार्यमेतन्मय्यप्यतीते मनुजेन्द्रपुत्र ।
कुलस्य हन्तारमजीवनार्हं रामानुजानीहि कृतागसं माम् ॥२३॥
इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः श्रुत्वा वचो वालिजघन्यजस्य ।
संजातबाष्पः परवीरहन्ता रामो मुहूर्तं विमना बभूव ॥२४॥
तस्मिन्क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणः क्षितिक्षमावान्भुवनस्य गोप्ता ।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम् ॥२५॥
तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम् ।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां मन्त्रिप्रधानाः कपिराजपत्नीम् ॥२६॥
सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः समीपादपनीयमाना ।
ददर्श रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम् ॥२७॥
सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा ।
अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानमयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे ॥२८॥
तस्येन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महानुभावस्य समीपमार्या ।
आर्तातितूर्णं व्यसने प्रपन्ना जगाम तारा परिविह्वलन्ती ॥२९॥
तं सा समासाद्य विशुद्धसत्त्वं शोकेन संभ्रान्तशरीरभावा ।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ॥३०॥

जी न सकेगी यह मेरा निश्चय है ॥२१॥ अब मैं भाई और पुत्रके सदृश होनेके लिए अर्थात् मरनेके लिए जलती हुई आगमें प्रवेश करूंगा। ये वानर वीर घूमकर सीताका पता लगावेगें ॥२२॥ हे राजपुत्र राम, मेरे मरनेपर भी आपके समस्त कार्य सिद्ध हों। कुलके नाश करनेवाले, जीनेके अयोग्य, अपराधी मुझको मरनेकी आज्ञा दें ॥२३॥ इस प्रकार वालिके छोटे भाई दुःखी सुग्रीवके वचन सुनकर रामचन्द्रकी आंखोंमें आंसू आगए। शत्रुहन्ता रामचन्द्र थोड़ी देरके लिए उदास हो गए ॥२४॥ उस समय पृथिवीके समान क्षमा वाले और संसारके रक्षक रामचन्द्रने बार-बार देखते हुए दुखमें मग्न ताराको देखा ॥२५॥ सुन्दर आंखों-वाली कपिराजकी पत्नी तारा मृत पतिका आलिंगन कर पड़ी थी। प्रधान मन्त्रियोंने उसको वहांसे उठाया ॥२६॥ पतिका आलिंगन करके सोती हुई, धीरे-धीरे कांपती हुई पतिके समीपसे हटाई जानेपर धनुषबाणधारी रामचन्द्रको ताराने देखा जो अपने सूर्यके समान प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे ॥२७॥ राजलक्षणोंसे युक्त, सुन्दर नेत्रवाले, पहले न देखे हुए एक श्रेष्ठ पुरुषको देखकर ताराने समझा कि यही रामचन्द्र हैं ॥२८॥ इन्द्रके समान पराजित होनेके अयोग्य महानुभाव रामचन्द्रके पास अति दुखित चल सकनेमें असमर्थ, घोर विपत्तिमें फंसी हुई तारा धीरे धीरे गई ॥२९॥ तारा शोकके कारण अपने शरीरका ज्ञान भूल गई थी। मनस्विनी वह, शुद्ध सत्व रणनिपुणताके कारण लक्ष्य वेधनेमें चतुर रामसे

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥३१॥
त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलः संहननोपपन्नः ।
मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः ॥३२॥
येनैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि ।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मां विना वीर रमेत वाली ॥३३॥
स्वर्गेऽपि पद्मामलपत्रनेत्र समेत्य संप्रेक्ष्य च मामपश्यन् ।
न ह्येष उच्चावचताम्रचूडा विचित्रवेषाप्सरसोऽभजिष्यत् ॥३४॥
स्वर्गेऽपि शोकं च विवर्णतां च मया विना प्राप्स्यति वीर वाली ।
रम्ये नगेन्द्रस्य तटावकाशे विदेहकन्यारहितो यथा त्वम् ॥३५॥
त्वं वेत्थ तावद्वनिताविहीनः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः ।
तत्त्वं प्रजानञ्जहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥३६॥
यच्चापि मन्येत भवान्महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम् ।
आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥३७॥
शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः ।
दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत्प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥३८॥

बोली, ॥३०॥ आपका प्रभाव परिमित नहीं है । आपको कोई परास्त नहीं कर सकता । आप श्रेष्ठ धर्मके पालक हैं, आपकी कीर्ति कभी लुप्त नहीं होती । आप निपुण हैं । पृथिवीके समान क्षमावान हैं, आपकी आंखे लाल हैं ॥३१॥ आपने हाथोंमें धनुष-बाण धारण किया है । आप महाबली है । आपका शरीर गठा हुआ है । मनुष्य शरीरसे मिलनेवाले सुखोंके अतिरिक्त दिव्य देहके प्राप्त सुखोंसे आप युक्त हैं ॥३२॥ जिस बाणसे आपने मेरे प्रियको मारा है, उसी बाणसे मुझे भी मारिए । मैं मरकर उसके समीप जाऊँगी । वीर, मेरे विना वालि प्रसन्न न होगा ॥३३॥ हे निर्मल कमलपत्रके समान नेत्रवाले राम, स्वर्गमें भी वह अप्सराओंके साथ मिलेगा और देखेगा । वहां मुझे न देखकर, ऊँची नीची लाल चोटी वाली तथा विचित्र वेष धारण करनेवाली अप्सराओंसे प्रसन्न न होगा ॥३४॥ वालि स्वर्गमें भी मेरे विना दुखी और उदासीन होगा, जिस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत के लम्बे मैदानमें सीताके विना तुम दुखी होते हो ॥३५॥ स्त्रीके विना युवा पुरुष जितना दुख पाता है यह तुम्हें मालूम है । इस बातको जानकर तुम मुझे मारो, जिससे मेरे न देखनेका दुख वालिको न हो ॥३६॥ यदि, महात्मा ! आप यह समझते हों कि मुझे स्त्री-वधका पाप लगेगा तो यह (मैं) वालिकी आत्मा है यह समझकर मारिए । इस प्रकार आपको स्त्री वधका पाप नहीं होगा ॥३७॥ शास्त्रीय प्रयोगोंमें, वैदिक कार्यों में, तथा श्रुतियोंमें स्त्रियां पुरुषसे अभिन्न कही गई हैं । लोकमें ज्ञानियोंके लिए स्त्रीदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है ॥३८॥

त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे धर्ममवेक्ष्य वीर ।
अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥३९॥
आर्तामनाथामपनीयमानामेवंगतां नार्हसि मामहन्तुम् ।
अहं हि मातङ्गविलासगामिना प्लवंगमानामृषभेण धीमता ॥४०॥
विना वरार्होत्तमहेममालिना चिरं न शक्ष्यामि नरेन्द्र जीवितुम् ।
इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य हितं बभाषे ॥४१॥
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ।
तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोकोऽब्रवीत्तेन कृतं विधात्रा ॥४२॥
त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ॥४३॥
धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति ।
आश्वासिता तेन महात्मना तु प्रभावयुक्तेन परंतपेन ।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन सुवेषरूपा विरराम तारा ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥



हे वीर, धर्म समझकर यदि तुम मुझे वालिको प्रदान करोगे तो इस दानसे मेरे वधका पाप तुमको न होगा ॥३९॥ दुःखिनी, अनाथा पतिके आलिंगनसे हटाई गई मेरा वध तुम्हें अवश्य करना चाहिए। रामचन्द्र, मतवाले हाथीके समान चलनेवाले वानरोंके राजा और श्रेष्ठ सुवर्णकी माला धारण करनेवाले वालिके विना मैं बहुत दिनों तक जी नहीं सकती। ताराके ऐसे कहने पर महात्मा रामने ताराको आश्वासन देकर उसको हितका उपदेश दिया ॥४०,४१॥ हे वीर-पत्नि, तुम मृत्युकी कामना मत करो। सबको विधाताने बनाया है और उसी विधाताने सबके साथ सुख दुखका संयोग कर दिया है—ऐसा वेदका उपदेश है। तीनों लोकके निवासी निश्चित विधानका अतिक्रमण नहीं कर सकते क्योंकि सभी उसके अधीन हैं। तुम्हारा पुत्र युवराज होगा और तुम पहलेहीके समान अत्यन्त प्रसन्न होओगी ॥४२,४३॥ विधाताका ऐसाही विधान है। वीरोंकी स्त्रियां रोती नहीं। प्रभावशाली, परन्तप महात्मा रामचन्द्रके समझाने पर वीर-पत्नी ताराने विलाप करना छोड़ दिया। उसके हृदयमें शान्ति हुई जो मुखकी सुन्दरताके रूपसे प्रकाशित हुई ॥४४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त।



पञ्चविंशः सर्गः २५

स सुग्रीवं च तारां च सांगदां सहलक्ष्मणः । समानशोकःकाकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत्॥ १ ॥
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः । यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥ २ ॥
लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वो बाष्पमोक्षणम् । न कालादुत्तरं किंचित्परं कर्म उपासितुम् ॥ ३ ॥
नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् । नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्॥ ४ ॥
न कर्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे नापि चेश्वरः । स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम्॥ ५ ॥
न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते । स्वभावं च समासाद्य न किंचिदतिवर्तते ॥ ६ ॥
न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः । न मित्रज्ञातिसंबन्धः कारणं नात्मनोऽवशः ॥ ७ ॥
किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता । धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥ ८ ॥
इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् । सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः ॥ ९ ॥
स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना । स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥१०॥
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः । तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥११॥
वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा । अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥१२॥

सुग्रीव, तारा और अंगदको समझाते हुए रामचन्द्र बोले, रामचन्द्र और लक्ष्मण भी उन्हींके समान दुखी थे ॥ १ ॥ दुख शोक करनेसे मृतका कल्याण नहीं होता । आगेका जो कर्तव्य है वह तुमको करना चाहिए ॥ २ ॥ जैसा लौकिक व्यवहार है वह तुमलोगोंको करना चाहिए । अब रोना व्यर्थ है । मरणके बाद कोई उपाय नहीं रह जाता, जिससे मरनेवाला लौटे ॥ ३ ॥ नियति (कालकृत व्यवस्था) कारण है, सब कर्मोंमें करनेवाली नियति ही है । कार्यसिद्धिका कारण भी नियति है ॥४॥ कोई मनुष्य कोई काम करनेमें स्वाधीन नहीं है और न वह किसीको किसी काममें लगा देनेमें ही समर्थ है ॥ ५ ॥ मनुष्य अपने स्वभावके अधीन है और वह स्वभाव कालके अधीन है । कालरूपी भगवान् भी अपनी बनाई व्यवस्थाके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते और वह काल किसी प्रकार भी नष्ट नहीं होता । स्वभावके अनुसार ही सब काम होता है, उसके विपरीत कुछ काम नहीं होता ॥ ६ ॥ कालका कोई मित्र नहीं है । अपनी व्यवस्था उलटनेका कोई कारण भी नहीं है । उसके विरुद्ध कोई पराक्रम भी किसी काम नहीं आता । अधिक मित्रों और जातियोंसे भी रक्षा नहीं होती । ईश्वर जीवके अधीन नहीं है ॥ ७ ॥ तत्वज्ञानियोंको सावधानीसे कालका परिणाम देखना चाहिए । धर्म, अर्थ और काम कालके अनुसारही होते हैं ॥ ८ ॥ अपने किए साम, दाम आदिके उचित समयमें अनुष्ठान करनेके कारण वानरराज वालि पवित्र क्रियाफल अर्थात् स्वर्गको गया, वही उसका स्वभाव था ॥ ९ ॥ अपने धर्मके कारण उस महात्माने स्वर्ग जीत लिया है और प्राण-त्याग करके उसको पाया है ॥१०॥ यह उत्तम नियति थी जिसको वानर-राज वालिने पाया है । अतएव उसके लिए शोक करना व्यर्थ है । अब आगेका कर्तव्य किया जाना चाहिए ॥११॥ रामचन्द्रके बोलनेपर शत्रुहन्ता लक्ष्मण अचेत सुग्रीवसे

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् । ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥१३॥
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च । चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात् ॥१४॥
समाश्वासय दीनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम् । मा भूर्वालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम् ॥१५॥
अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च । घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥१६॥
त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् । त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः ॥१७॥
सज्जीभवन्तु प्लवगाः शिबिकावाहनोचिताः । समर्था बलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम् ॥१८॥
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः । तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा ॥१९॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः संभ्रान्तमानसः । प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः ॥२०॥
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः । वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः ॥२१॥
दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् । पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥२२॥
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः । विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम् ॥२३॥
सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां शिल्पिभिः कृताम् । दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥२४॥
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् । गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दनभूषिताम् ॥२५॥
पुष्पाढ्यैः समभिच्छन्नां पद्ममालाभिरेव च । तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥२६॥

विनीत वाक्य बोले, ॥१२॥ सुग्रीव, वालिका तारा अंगदके साथ तुम अन्तिम संस्कार करो । इनके दाहकी व्यवस्था करो ॥१३॥ वालिके संस्कारके लिए चन्दन तथा अन्य दिव्य वृक्षोंके सूखे काठ लानेकी आज्ञा दो ॥१४॥ दुखी अंगदको समझाओ । तुम बुद्धिहीन न बनो, क्योंकि यह नगर इस समय तुम्हारेही अधीन है ॥१५॥ माला, अनेक प्रकारके वस्त्र, घृत, तैल, सुगन्धित वस्तुएँ तथा अन्य जिन जिन चीजोंकी आवश्यकता हो उन्हें अंगद शीघ्र ले आवें ॥१६॥ तार (सुग्रीवके सचिवका नाम), शीघ्र एक पालकी लेकर आओ । इस समय शीघ्रता आवश्यक है । जितनी शीघ्रता की जाय वही अच्छा ॥१७॥ सवारी ले चलनेके योग्य वानर तयार हो जाँय । वालिको स्मशानमें ले जानेवाले वानरोंको बलवान् होना चाहिए ॥१८॥ सुग्रीवसे ऐसा कहकर सुमित्राके पुत्र, शत्रुहन्ता लक्ष्मण अपने भाईके पास जाकर बैठ गए ॥१९॥ लक्ष्मणके वचन सुनकर तार नामका वानर शीघ्रतापूर्वक पालकी लानेके लिए गुहामें गया ॥२०॥ पालकी ढोनेमें समर्थ, बलवान् वानरों के द्वारा पालकी लिवा कर वह शीघ्रही लौट आया ॥२१॥ उस पालकीमें राजाके बैठनेके योग्य आसन बना था । वह रथके समान था । उसमें पक्षियों और वृक्षोंके चित्र बने हुए थे ॥२२॥ उसपर पैदल सिपाहियोंके चित्र बने हुए थे । बहुतही सुन्दर वह बनी थी । सिद्धोंके विमानके समान उसमें खिड़कियां थीं, जो जालसे छिपी हुई थीं ॥२३॥ वह बहुत मजबूत थी । कारीगरोंने बहुत बड़ी बनाई थी । अतएव बहुत अच्छी थी । लकड़ीके छोटे छोटे पर्वत तथा और कारीगरीके चित्र उसमें बने थे । ॥२४॥ उत्तम आभरण और हार उसमें रक्खे थे । अनेक प्रकारकी मालाओंके उसमें चित्र बने हुए थे । गुहा और वनके भी चित्र उसपर थे और रक्त चन्दनसे शोभित की गई थी ॥२५॥ उसपर बहुत पुष्पसे रक्खे गए थे । कमलकी मालाएँ जो तरुण सूर्यके समान वर्णवाली और उज्वल थीं पालकी

ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥२७॥
ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा । आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु ॥२८॥
आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् । अलंकारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥२९॥
आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ॥३०॥
विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च । अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका तदनन्तरम् ॥३१॥
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः । तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥३२॥
तादृशं वालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् । अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा ॥३३॥
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः । ततः प्रणिहिताः सर्वा वानर्योऽस्य वशानुगाः॥३४॥
चुक्रुशुर्वीर वीरेति भूयः क्रोशन्ति ताः प्रियम् । ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः ॥३५॥
अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः । तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे ॥३६॥
वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः । पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ॥३७॥
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः । अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वानरोत्तमाः ॥३८॥
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः । ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् ॥३९॥
आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता । हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल ॥४०॥
हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम् । जनं न पश्यसीमं त्वं कस्माच्छोकाभिपीडितम्॥४१॥

के चारो ओर लटकाई गई थीं ॥२६॥ ऐसी पालकी देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि वालिको शीघ्र ही यहाँसे ले जाँय और इसका अन्तिम संस्कार करें ॥२७॥ इसके अनन्तर अंगदके साथ हाथोंसे वालिको उठाकर रोते हुए सुग्रीवने पालकी पर रक्खे ॥२८॥ अनेक अलंकारों, मालाओं और वस्त्रोंसे वालिका शव शोभित किया गया ॥२९॥ तब वानरोंके राजा सुग्रीवने आज्ञा दी कि आर्यका अन्तिम संस्कार नदीके तीरपर किया जाय ॥३०॥ विविध रत्नोंको लुटाते हुए वानर आगे जाँय और उनके पीछे पालकी जाय ॥३१॥ राजाओंका चिता-संस्कार जिस धूमधामसे होता है उसी प्रकार आर्य वालिका संस्कार होना चाहिए ॥३२॥ तार आदि वानरोंने अंगदको लेकर राजाओंके समान वालिका अन्तिम संस्कार करना प्रारम्भ किया ॥३३॥ हतबन्धु सभी वानर रोते हुए चले। उनके पीछे वालिकी वशवर्तिनी स्त्रियाँ चलीं और तारा आदि सब वानरियाँ प्रिय वालिके पास 'वीर' 'वीर' कहकर अधिक विलाप करने लगीं ॥३४,३५॥ करुण स्वरमें रोती हुई पतिके साथ साथ चलीं। उन वानरियोंके रोनेके शब्दसे वनकी भूमि, वन और पर्वत मानों रोने लगे। जलपूर्ण पहाड़ी नदीके तीरपर एकान्त स्थानमें वनचारी अनेक वानरोंने मिलकर चिता बनाई। और कन्धेसे पालकी नीचे उतारी ॥३६,३७,३८॥ वे सब एकान्त स्थानमें जाकर बैठ गए। वे सबके सब दुखी थे। पालकीपर पड़े पतिको देखकर ताराने उसका सिर गोदमें ले लिया और वह दुखसे विलाप करने लगी। हा वानर, महाराज, हा मेरे प्रिय, ॥३९,४०॥ हा उत्तम भोग भोगनेके योग्य महाबाहो, हा मेरे प्रिय, मुझे देखो। शोक-पीड़ित

प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद । अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवतो यथा ॥४२॥
एष त्वां रामरूपेण कालः कर्षति वानर । येन स्म विधवाः सर्वाः कृता एकेषुणा रणे ॥४३॥
इमास्तास्तव राजेन्द्र वानर्योऽप्लवगास्तव । पादैर्विकृष्टमध्वानमागताः किं न बुध्यसे ॥४४॥
तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः । इदानीं नेक्षसे कस्मात्सुग्रीवं प्लवगेश्वर ॥४५॥
एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव । पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति ॥४६॥
विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिंदम । ततः क्रीडामहे सर्वा वनेषु मदनोत्कटाः ॥४७॥
एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीप्लुताम् । उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः ॥४८॥
सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन् । चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥४९॥
ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह । पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥५०॥
संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः । आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम् ॥५१॥
ततस्ते सहितास्तत्र अंगदं स्थाप्य चाग्रतः । सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम् ॥५२॥
सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः । समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥५३॥

ततोऽथ तं वालिनमग्र्यपौरुषं प्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणा हतम् ।
प्रदीप्य दीप्ताग्निसमौजसं तदा सलक्ष्मणं राममुपेयिवान्हरिः ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥२५॥



इस प्राणीको क्यों नहीं देखते ॥४१॥ प्राणोंके चले जाने परभी हे मानद, तुम्हारा मुँह प्रसन्न दीख पड़ता है। अस्त होते हुए सूर्यके समान तुम्हारे मुँहकी शोभा है। जैसी शोभा जीवित कालमें थी ॥४२॥ हे वानर, यह काल रामका रूप धरकर उठा ले गया, जिसके एक बाणसे हम सब लोग विधवा हो गईं ॥४३॥ हे राजेन्द्र, ये आपकी वानरियाँ, जिन्हें चलनेका अभ्यास नहीं हैं वे, पैरोंसे चलकर इतनी दूर आई हैं। क्या आपको यह मालूम नहीं है ॥४४॥ चन्द्रमुखी ये सब स्त्रियाँ आपकी प्यारी हैं। हे वानरराज, आप सुग्रीवकी ओर इस समय क्यों नहीं देखते ॥४५॥ राजन् तार, आदि ये सब सचिव तथा ये सब पुरवासी आपके चारो ओर खड़े शोक कर रहें हैं ॥४६॥ जिस प्रकार पहले इन सचिवोंको जानेकी आप आज्ञा देते थे उसी प्रकार आज भी आज्ञा दें। तब हमलोग इस वनमें क्रीड़ा करें ॥४७॥ इस प्रकार पतिशोकसे व्याकुल विलाप करती हुई ताराको शोकपीड़ित वानरियोंने उठाया ॥४८॥ शोकसे पीड़ित रोते हुए अंगदने सुग्रीवके साथ पिताको चितापर रक्खा ॥४९॥ पिता लम्बी यात्राके लिए प्रस्थित हुआ है—यह जानकर अंगद व्याकुल हुआ। इसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। उसने विधिपूर्वक चितामें आग लगाई और बाईं ओरसे चिताकी प्रदक्षिणा की ॥५०॥ सब वानर विधिपूर्वक वालिका संस्कार करके स्वच्छ जलवाली नदीके तीरपर प्रेतको जल देनेके लिए आए ॥५१॥ उन सब वानरोंने मिलकर सुग्रीव ताराके साथ अंगदको आगे करके तर्पण किया ॥५२॥ सुग्रीवके दुखसे दुखी महाबली रामचन्द्रने सब प्रेत कार्य करवाए। रामचन्द्र भी सुग्रीवके समानही

षड्विंशः सर्गः २६

ततः शोकाभिसंतप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् । शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥
अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥ २ ॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥
भवत्प्रसादात्काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत् । वानराणां सुदंष्ट्राणां संपन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥
महात्मानां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो । भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ॥ ५ ॥
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः । स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ॥ ६ ॥
अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः । इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि ॥ ७ ॥
कुरुष्व स्वामिसंबन्धं वानरान्संप्रहर्षय । एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ॥ ८ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः । चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ॥ ९ ॥
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपारगः । सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ॥१०॥
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् । एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥११॥
वृत्तज्ञो वृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् । इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥१२॥

दुखी थे ॥५३॥ अनन्तर रामचन्द्रके बाणसे मारे गए प्रसिद्ध पराक्रमी वालिको जला कर प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी लक्ष्मणके साथ बैठे हुए रामचन्द्रके समीप सुग्रीव आया ॥५४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ।



भीगे वस्त्र पहने हुए शोकतप्त सुग्रीवके साथ प्रधान प्रधान वानर चले ॥१॥ पुण्यकर्मा महाबाहु रामचन्द्रके पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए, जैसे ब्रह्माके पास ऋषि खड़े होते हैं ॥ २ ॥ अनन्तर सुवर्णपर्वतके समान विशाल तरुण सूर्यके समान मुखवाले वायुपुत्र हनुमान हाथ जोड़कर बोले ॥ ३ ॥ रामचन्द्र तीखे दाँतवाले बलशाली महात्मा वानरोंका पिता पितामहोंसे चला आया हुआ यह विशाल राज्य आपकी कृपासे प्राप्त हुआ । आपकी आज्ञासे नगरमें जाकर अपने मित्रोंके साथ समस्त कार्योंको ये करेंगें । अनेक प्रकारकी सुगन्धित औषधियों से विधिपूर्वक ये स्नान करेंगे । मालाओं और रत्नोंसे विशेषकर आपकी पूजा करेंगें । आप कृपाकर पर्वतकी इस रमणीय गुहामें चलें ॥४,५,६,७॥ सुग्रीवको स्वामी बनाकर आप वानरोंको प्रसन्न करें । शत्रुहन्ता रामचन्द्र हनुमानके ऐसा कहनेपर बोले ॥ ८ ॥ बुद्धिमान्, बोलनेमें निपुण रामचन्द्रने हनुमानसे कहा—वीर, चौदह वर्षों तक ग्राममें या नगरमें पिताकी आज्ञाके कारण मैं प्रवेश नहीं करूँगा । वानरश्रेष्ठ सुग्रीव इस सजी हुई गुफामें जाय । तुम लोग इनका अभिषेक करो । हनुमानसे ऐसा कहकर रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले ॥९,१०,११॥ सुग्रीव, तुम लोकव्यवहार जाननेवाले हो । यह अंगद चरित्रवान् है, बली और पराक्रमी है । इसका यौवराज्यके

ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च । अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥१३॥
पूर्वोयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः॥१४॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः॥१५॥
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ॥१६॥
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः । एप नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥१७॥
अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः संप्रहर्षय । इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः ॥१८॥
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम् । तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम् ॥१९॥
अभिवार्य प्रविष्टानि सर्वतः प्लवगेश्वरम् । ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम् ॥२०॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः ।सुग्रीवःप्रकृतीःसर्वाःसंभाष्योत्थाप्य वीर्यवान्॥२१॥
भ्रातुरन्तःपुरं सौम्यं प्रविवेश महाबलः । प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥२२॥
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः । तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ॥२३॥
शुक्ले च वालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे । तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च ॥२४॥
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च । शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ॥२५॥
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च। चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून्॥२६॥
अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गुमधुसर्पिषी । दधि चर्म च वैयाघ्रं परार्ध्यौ चाप्युपानहौ ॥२७॥

पदपर तुम अभिषेक करो ॥१२॥ यह तुम्हारे बड़े भाईका बड़ा पुत्र है और पराक्रममें अपने पिताके समान है । इसकी आत्मा श्रेष्ठ है, अतएव यह युवराज होनेके योग्य है ॥१३॥ सौम्य, चौमासा आगया, जिसका पहला महीना यह श्रावण है, जब कि बरसात होती है ॥१४॥ यह किसी प्रकारके उद्योग करनेका समय नहीं है । अतएव तुम अपनी नगरीमें जाओ । मैं इस पर्वतपर लक्ष्मणके साथ रहूँगा ॥१५॥ यह पर्वतकी गुफा रमणीय है और बड़ी है । इसमें हवा भी आती है । यहाँ काफी जल है और कमल आदि भी हैं ॥१६॥ कार्तिक प्रारम्भ होनेपर तुम रावण-वधके लिए प्रयत्न करना । यही हमलोगोंका निश्चय है । इस समय अपने घर जाओ ॥१७॥ तुम राज्यपर अपना अभिषेक कराओ और मित्र वानरोंको प्रसन्न करो । रामकी आज्ञा पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव, वालिपालित रमणीय किष्किन्धा नगरीमें गए । वानरेश्वर, सुग्रीवके साथ-साथ हजारों वानरोंने उनको चारों ओरसे घेरकर नगरमें प्रवेश किया । वानरराज सुग्रीवको देखकर प्रजाओंने पृथ्वीमें सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। बलवान सुग्रीवने सब प्रजाओंसे कुशल प्रश्न पूछा ॥१८,१९,२०,२१॥ सुग्रीवने वालिके महलमें प्रवेश किया । परम पराक्रमी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवके महलमें आनेपर मित्रोंने उनका अभिषेक किया, जिस प्रकार देवताओंने इन्द्रका अभिषेक किया था । सोनेका काम किया हुआ पीला छत्र उनपर किया गया ॥२२,२३॥ श्वेत, सोनेके डंडेवाले दो चंवर, सब रत्न, सब बीजौषधियाँ, दूधवाले वृक्षोंके अंकुर और फूल, श्वेत वस्त्र और श्वेत अनुलेपन, सुगंधित स्थल और जलके पुष्पोंकी मालाएँ, दिव्य चन्दन

समालम्भनमादाय गोरोचनं मनःशिलाम् । आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश ॥२८॥
ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि । रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥२९॥
ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम् । मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥३०॥
ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते । प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते ॥३१॥
प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने । नदीनदेभ्यः संहृत्य तीर्थेभ्यश्च समन्ततः ॥३२॥
आहृत्य च समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यो वानरर्षभाः । अपः कनककुम्भेषु निधाय विमलं जलम् ॥३३॥
शुभैर्ऋषभशृङ्गैश्च कलशैश्चैव काञ्चनैः । शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥३४॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥३५॥
अभ्यषिञ्चत सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना । सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥३६॥
अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुंगवाः । प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टाः शतसहस्रशः ॥३७॥
रामस्य तु वचः कुर्वन्सुग्रीवो वानरेश्वरः । अङ्गदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥३८॥
अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः । साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन् ॥३९॥
रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः । प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥४०॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता । बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥४१॥

तथा और अनेक प्रकारकी सुगन्धियाँ, अक्षत, सोना, कांगुन, मधु, घी, दही, बाघका चर्म, मूल्यवान जूते, अनुलेपन, गोरोचन और मैनसिल आदि वस्तुएँ सुग्रीवके पास लायी गयीं। प्रसन्न और सुन्दरी सोलह कन्याएँ भी वहाँ आयीं ॥२४,२५,२६,२७,२८॥ अनन्तर विधिपूर्वक वानरश्रेष्ठ सुग्रीवका अभिषेक करनेके लिए रत्न, वस्त्र तथा भोजनसे श्रेष्ठब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया गया ॥२९॥ वेदीपर कुश बिछाए गए, उसपर जलती हुई आगमें मंत्रसे पवित्र हविका मंत्रजाननेवाले मनुष्योंने हवन किया ॥३०॥ चित्र और मालाओंसे शोभित रमणीय कोठेपर सुन्दर आसनपर जिसके पाए सोनेके बने हुए थे, और जिसपर अच्छा बिछौना बिछा हुआ था, मंत्रोके द्वारा विधिवत् पूर्व मुँह करके सुग्रीव बैठाये गए। नदी नदोंसे तथा सब तीर्थोंसे सब समुद्रोंसे लाया हुआ जल सोनेके घड़ोंमें रखा गया। मंगलमय, ऋषभकी सिंगों और सोनेके घड़ोंसे शास्त्रविधिके अनुसार और महर्षियोंकी आज्ञाके अनुसार गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान्ने स्वच्छ और सुगन्धित जलसे सुग्रीवका अभिषेक किया, जिस प्रकार आठ वसुओंने इन्द्रका अभिषेक किया था ॥३१,३२,३३,३४,३५,३६॥ सुग्रीवका अभिषेक होनेपर सैकड़ों हजारों प्रधान प्रधान वानर किल-किल करके अपनी प्रसन्नता प्रकाशित करने लगे ॥३७॥ रामचन्द्रके कहनेके अनुसार सुग्रीवने अंगदका आलिंगन करके युवराजके पदपर अभिषिक्त किया ॥३८॥ अंगदका अभिषेक होने पर दयालु महात्मा वानरोंने साधु साधु कहकर सुग्रीवकी प्रशंसाकी ॥३९॥ उस अभिषेकके समय प्रसन्न होकर राम और लक्ष्मणकी बार-बार वानरोंने प्रशंसा की ॥४०॥ गिरि गह्वरमें वर्तमान किष्किन्धा नगरी प्रसन्न मनुष्योंसे परिपूर्ण तथा, ध्वजा-पताकासे

निवेद्य रामाय तदा महात्मने महाभिषेकं कपिवाहिनीपतिः ।
रुमां च भार्यामुपलभ्य वीर्यवानवाप राज्यं त्रिदशाधिपो यथा ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम् । आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ १ ॥
शार्दूलमृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम् । नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसंकुलम् ॥ २ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम् । मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिकरं शिवम् ॥ ३ ॥
तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम् । प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह ॥ ४ ॥
कृत्वा च समयं रामः सुग्रीवेण सहानघः । कालयुक्तं महद्वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
विनीतं भ्रातरं भ्राता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् । इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ॥ ६ ॥
अस्यां वत्स्याव सौमित्रे वर्षरात्रमरिंदम । गिरिश्रृङ्गमिदं रम्यमुत्तमं पार्थिवात्मज ॥ ७ ॥
श्वेताभिः कृष्णताम्राभिः शिलाभिरुपशोभितम् । नानाधातुसमाकीर्णं नदीदर्दुरसंयुतम् ॥ ८ ॥
विविधैर्वृक्षखण्डैश्च चारुचित्रलतायुतम् । नानाविहगसंघुष्टं मयूरवरनादितम् ॥ ९ ॥

शोभित होनेके कारण रमणीय मालूम हुई ॥४१॥ वानरराज सुग्रीवने महात्मा रामचन्द्रको अभिषेककी बात बतलायी । अपनी भार्या रुमा पाकर राज्य पाया, जिस प्रकार इन्द्रने पाया था ॥४२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ।

अभिषेक होने पर और वानर सुग्रीवके गुहामें जाने पर रामचन्द्र भाईके साथ प्रस्रवण पर्वत पर आए ॥ १ ॥ बाघ और मृग वहाँ बोलते थे । भयंकर शब्द करनेवाले सिंह विचरते थे । अनेक लताओंसे युक्त बहुतसे वृक्ष वहां थे ॥ २ ॥ भालु, वानर, गोपुच्छ और बिलार आदि वहां रहते थे । मेघराशिके समान वह पर्वत पवित्र करनेवाला और मंगलमय था ॥ ३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर एक बड़ी गुहा, लक्ष्मणके साथ रहनेके लिए रामचन्द्रने ली ॥४॥ निष्पाप रामने सुग्रीवके साथ अवधिका निश्चय कर लिया था । समयानुसार वे बोले ॥ ५ ॥ विनीत भाई लक्ष्मणसे उन्होंने कहा—यह पर्वतकी गुहा रमणीय और बड़ी है । यहां हवा आती है ॥६॥ वर्षाकी रातमें हमलोग यहीं निवास करेंगे । राजपुत्र, यह गिरिशिखर बड़ा सुन्दर और रमणीय है ॥ ७ ॥ श्वेत, काले और लाल पत्थर यहां हैं । इस पर्वतपर अनेक प्रकारकी धातुएँ हैं । नदी और मेढ़क भी हैं ॥८॥ अनेक प्रकारके वृक्ष-समूह यहां हैं । चित्र विचित्र लताएँ हैं । अनेक प्रकारके पक्षी यहां गूँजते हैं । मयूरोंका भी शब्द सुन पड़ता है ॥ ९ ॥

मालतीकुन्दगुल्मैश्च सिन्दुवारैः शिरीषकैः । कदम्बार्जुनसर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभितम् ॥१०॥
इयं च नलिनी रम्या फुल्लपङ्कजमण्डिता । नातिदूरे गुहाया नौ भविष्यति नृपात्मज ॥११॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति । पश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति ॥१२॥
गुहाद्वारे च सौमित्रे शिला समतला शिवा । कृष्णा चैवायता चैव भिन्नाञ्जनचयोपमा ॥१३॥
गिरिशृङ्गमिदं तात पश्य चोत्तरतः शुभम् । भिन्नाञ्जनचयाकारमम्भोधरमिवोदितम् ॥१४॥
दक्षिणस्यामपि दिशि स्थितं श्वेतमिवाम्बरम् । कैलासशिखरप्रख्यं नानाधातुविराजितम् ॥१५॥
प्राचीनवाहिनीं चैव नदीं भृशमकर्दमाम् । गुहायाः परतः पश्य त्रिकूटे जाह्नवीमिव ॥१६॥
चन्दनैस्तिलकैः सालैस्तमालैरतिमुक्तकैः । पद्मकैः सरलैश्चैव अशोकैश्चैव शोभिताम् ॥१७॥
वानीरैस्तिमिदैश्चैव बकुलैः केतकैरपि । हिन्तालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैः कृतमालकैः ॥१८॥
तीरजैः शोभिता भाति नानारूपैस्ततस्ततः । वसनाभरणोपेता प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥१९॥
शतशः पक्षिसङ्घैश्च नानानादविनादिता । एकैकमनुरक्तैश्च चक्रवाकैरलंकृता ॥२०॥
पुलिनैरतिरम्यैश्च हंससारससेविता । प्रहसन्त्येव भात्येषा नानारत्नसमन्विता ॥२१॥
क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्ना भाति रक्तोत्पलैः क्वचित् । क्वचिदाभाति शुक्लैश्च दिव्यैः कुमुदकुड्मलैः ॥२२॥
पारिप्लवशतैर्जुष्टा बर्हिक्रौञ्चविनादिता । रमणीया नदी सौम्या मुनिसङ्घनिषेविता ॥२३॥

मालती, कुन्द, गुल्म, शृंगवार, सिरिस, कदम्ब, अर्जुन ये वृक्ष फूले हुए हैं, और इनसे इस पर्वतकी शोभा बढ़ रही है ॥१०॥ इस छोटे तालाबमें कमल खिले हुए हैं। यह हम लोगोंकी गुहासे बहुत दूर नहीं है ॥११॥ ईशान कोणमें नीची जगह होनेके कारण हम लोगोंकी यह गुहा बड़ी अच्छी है। पीछेसे ऊँची होनेके कारण, इसमें बरसाती हवा भी नहीं जा सकेगी ॥१२॥ लक्ष्मण, गुहाके द्वारपर सम-तल काली और लम्बी शिला है, जो अंजन-समूहके समान मालूम पड़ती है ॥१३॥ यह गिरिशिखर उत्तरकी ओर कितना सुन्दर मालूम पड़ता है। यह काले मेघके समान उठा हुआ दीख पड़ता है ॥१४॥ दक्षिण दिशामें भी श्वेत वस्त्रके समान, कैलाश शिखरके समान, नाना धातुओंसे शोभित शिखर है ॥१५॥ त्रिकूटपर बहनेवाली गंगाके समान गुहाके उस ओर बहनेवाली नदीको देखो। इसमें कीचड़ नहीं है ॥१६॥ चन्दन, तिलक, शाल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल और अशोक वृक्षोंसे यह नदी शोभित है। वानीर, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिस, कदम्ब और वेतस इन वृक्षोंकी माला नदीने धारण की है। तीरमें उत्पन्न अनेक वृक्षोंसे जहाँ तहाँ यह नदी शोभित होती है। वस्त्रालंकारादिसे युक्त स्त्रीके समान यह मालूम पड़ती है ॥१७,१८,१९॥ सैकड़ों पक्षि-समूहोंसे और परस्पर अनुरक्त चकवोंसे यह नदी अलंकृत है। यहां अनेक प्रकारके शब्द होते हैं। इसके तट रमणीय हैं। इसमें हंस, सारस आदि पक्षी हैं। अनेक रत्नोंसे युक्त यह नदी मालूम पड़ी है ॥२०,२१॥ कहीं यह नदी नीलकमलसे ढंकी हुई है, कहीं लाल कमलसे और कहीं सफेद कमलसे और कहीं कहीं कुमुदकी कोढ़ियोंसे ही सुशोभित है। ॥२२॥ जलपर चलनेवाले परिप्लव नामक सैकड़ों पक्षी यहां वर्तमान हैं। मयूर और क्रौंच इस नदीको

पश्य चन्दनवृक्षाणां पङ्क्तीः सुरुचिरा इव । ककुभानां च दृश्यन्ते मनसैवोदिताः समम् ॥२४॥
अहो सुरमणीयोऽयं देशः शत्रुनिषूदन । दृढं रंस्याव सौमित्रे साध्वत्र निवसावहे ॥२५॥
इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना । सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज ॥२६॥
गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर । नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह ॥२७॥
लब्ध्वाभार्यां कपिवरः प्राप्यराज्यं सुहृद्वृतः । ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः संप्राप्य महतीं श्रियम् ॥२८॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः । बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन्प्रस्रवणे गिरौ ॥२९॥
सुसुखे हि बहुद्रव्ये तस्मिन्हि धरणीधरे । वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पापि नाभवत् ॥३०॥
हृतां हि भार्यास्मरतःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् । उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशाङ्कं स विशेषतः ॥३१॥
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम् । तत्समुत्थेन शोकेन बाष्पोपहतचेतनम् ॥३२॥
तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम् । तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयं वचः॥३३॥
अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि । शोचतो ह्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते ॥३४॥
भवान्क्रियापरो लोके भवान्देवपरायणः । आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव ॥३५॥
नह्यव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः । समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमे जिह्मकारिणम् ॥३६॥

अलंकृत किये हुए हैं । मुनियोंका समूह यहाँ रहता है । यह नदी सौम्य और रमणीय है ॥२३॥ चन्दन वृक्षोंकी सुन्दर पाँत देखो । मनोरथके साथ उत्पन्न ककुभ वृक्षोंकी पंक्ति देखो, अर्थात् ये पंक्तियाँ मनके अनुसार उत्पन्न हुई थीं ॥२४॥ हे शत्रुसूदन, यह देश बड़ा ही रमणीय है । यहाँ हम लोग खूब आनन्द करेंगे और सुखपूर्वक रहेंगे ॥२५॥ सुन्दर वनवाली सुग्रीवकी रमणीय नगरी किष्किन्धा भी यहाँसे दूर न होगी ॥२६॥ मृदंग-ध्वनिके साथ नाद करनेवाले वानरोंके गाने-बजानेका शब्द सुन पड़ता है ॥ २७ ॥ स्त्री और राज्य पाकर तथा बहुत बड़ी सम्पत्ति पाकर निश्चय सुग्रीव अपने मित्रोंके साथ आनन्द कर रहा है ॥२८॥ ऐसा कहकर लक्ष्मणके साथ उस प्रस्रवण पर्वतपर रहने लगे, जिसमें अनेक गुफाएँ तथा लतासे घिरे कुंज थे ॥२९॥ उस पर्वतपर सुखके अनेक साधन थे । फिर भी रामचन्द्र-को वहाँ रहनेमें विशेष प्रेम न हुआ ॥ ३० ॥ प्राणोंसे भी प्रिय अपनी हरी हुई स्त्रीका स्मरण करनेसे, विशेषकर संध्याके समय चन्द्रोदय होने पर, रामचन्द्रको रात्रिमें बिछौनेपर जानेपर नींद नहीं आती थी; क्योंकि सीताके वियोगदुःखसे वे अधिक रोते और अचेत हो जाते थे ॥३१, ३२॥ इस प्रकार सदा शोकमग्न रहनेवाले रामचन्द्रसे उनके समान ही दुखी भाई लक्ष्मण बोले, ॥३३॥ वीर, चित्तको चंचल करना अच्छा नहीं । आपको शोक नहीं करना चाहिए । शोक करनेवाले दुखी होते हैं, यह बात आप जानते हैं ॥३४॥ रामचन्द्र, आप उद्योग करनेवाले हैं, देवताओंमें प्रेम रखनेवाले हैं । आप ईश्वर-विश्वासी और धर्मात्मा हैं, तथा आप उद्योगसिद्ध हैं ॥३५॥ बिना उद्योग किए शत्रु राक्षसको मारनेमें आप समर्थ नहीं हो सकते; क्योंकि पराक्रमके विषयमें वे प्रायः कपट करते हैं ॥३६॥ शोक दूर कीजिए और

समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरीकुरु। ततः सपरिवारं तं राक्षसं हन्तुमर्हसि ॥३७॥
पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम्। परिवर्तयितुं शक्तः किं पुनस्तं हि रावणम् ॥३८॥
शरत्कालं प्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः। ततः सराष्ट्रं सगणं रावणं तं वधिष्यसि ॥३९॥
अहं तु खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिबोधये। दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४०॥
लक्ष्मणस्य हि तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम्। राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च। सत्यविक्रमयुक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया ॥४२॥
एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः। विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम् ॥४३॥
शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव। सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ॥४४॥
उपकारेण वीरस्तु प्रतिकारेण युज्यते। अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्ववतां मनः ॥४५॥

तदेव युक्तं प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम्।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥४६॥
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता नचिरात्तु वानरः।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥४७॥

उद्योग करनेका निश्चय कीजिए, तभी आप परिवारके साथ राक्षसको अर्थात् रावणको मार सकेंगे ॥३७॥ आप पर्वत, वन और समुद्रके साथ इस पृथ्वीको भी उलट-पलट सकते हैं फिर रावण क्या है ? ॥३८॥ शरद् ऋतुको आने दीजिए, यह वर्षा ऋतु आ ही गई है। इसके बाद राज्य और परिवारके साथ रावणका वध कीजिएगा ॥३९॥ मैं भूले हुए आपके पराक्रमकी याद दिला रहा हूँ, जिस प्रकार भस्ममें छिपी आग आहुतिसे जगायी जाती है ॥४०॥ लक्ष्मणके हितकारी मंगल वचन सम्मानपूर्वक मानकर प्रिय मित्रसे रामचन्द्र इस प्रकार बोले ॥४१॥ अनुरागी, प्रिय और हितकारीको जो कहना चाहिए। लक्ष्मण सत्य पराक्रमी तुमने वही कहा है ॥४२॥ सब कार्योंको नष्ट करनेवाला शोक अब हमने छोड़ दिया। अब मैं पराक्रम सम्बन्धी अपने अप्रतिहत तेजका स्मरण करता हूँ ॥४३॥ मैं तुम्हारे वचनके अनुसार शरत्कालकी प्रतीक्षा करता हूँ। नदियों और सुग्रीवकी प्रसन्नता चाहता हूँ (नदियोंकी प्रसन्नताका अर्थ है उनका पार होनेके योग्य हो जाना) ॥४४॥ जिसका उपकार किया जाता है वह उपकारका बदला देता ही है अर्थात् प्रत्युपकार करता ही है। जो उपकारका बदला नहीं देता वह शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लंघन करता है ॥४५॥ रामचन्द्रका कहना ही उचित है। यह समझकर हाथ जोड़कर लक्ष्मणने रामचन्द्रकी बातोंकी प्रशंसा की और अपना सुंदर ज्ञान रामचन्द्रको बतलाते हुए वे उनसे बोले। रामचन्द्रको देखनेसे बड़ा ही आनन्द आता था ॥४६॥ नरेन्द्र, जैसा आपने कहा है, सुग्रीव अपने सब मनोरथोंको शीघ्र ही पूर्ण करेगा। अतएव यह बरसातका समय, शत्रुवधकी दृढ़ प्रतिज्ञा करनेवाले आपको बिताना ही पड़ेगा ॥४७॥ क्रोध हटाकर शरत्काल की प्रतीक्षा कीजिए। चार महीने मेरे साथ काटिए। सिंह-

नियम्य कोपं परिपाल्यतां शरत्क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ।
वसाचलेऽस्मिन्मृगराजसेविते संवर्तयञ्शत्रुवधे समर्थः ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च । वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥
अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः । संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥ २ ॥
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः । पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ ३ ॥
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः । कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥ ४ ॥
संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः। स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥
मन्दमारुतनिःश्वासं संध्याचन्दनरञ्जितम् । आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥ ६ ॥
एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता । सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥ ७ ॥
मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः । शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥ ८ ॥
एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः । सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥

सेवित इस पर्वतपर निवास कीजिए । यद्यपि आप सब समयमें शत्रुका वध कर सकते हैं फिर भी इस धर्मका पालन आपको करना ही चाहिए ।।४८।।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ।



वालिको मारकर और सुग्रीवका अभिषेक कर माल्यवानपर्वत पर निवास करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ।।१।। यह जल बरसनेका समय आ गया। पर्वतके समान मेघोंने आकाशको घेर लिया, तुम देखो ।।२।। सूर्यकी किरणोंसे समुद्रका जल पीकर आकाश नौ महीने गर्भ धारण करता है और पुनः रसायन स्वरूप जल बरसाता है ।।३।। मेघकी सीढ़ियोंसे आकाशपर चढ़कर कुटज अर्जुन आदि-की मालाएँ सूर्यको पहनायी जा सकती हैं ।।४।। आकाश सन्ध्या रागसे युक्त, अतएव लाल और अन्त भागमें श्वेत मेघ रूपी वस्त्रके टुकड़ोंसे घाव पर पट्टी बाँधे हुए के समान मालूम पड़ता है ।।५।। धीरे चलनेवाला वायु जिसका निश्वास है, संध्यारूपी चन्दन जिसने धारण किया है, थोड़ा पीला मेघ जिसमें वर्तमान है वह आकाश कामातुरके समान मालूम पड़ता है ।।६।। धूपसे तपायी हुई और नए जलसे सींची गई यह पृथ्वी शोक-सन्तप्त सीताके समान बाष्प त्याग कर रही है ।।७।। मेघके गर्भसे निकले हुए और कपूरके पत्तोंके समान शीतल, केतकी गन्धवाली वायु अंजलियोंसे पीने योग्य है ।।८।। इस पर्वत पर अर्जुन वृक्ष फूला हुआ है और केतकसे सुवासित है । नष्टशत्रु सुग्रीवके समान यह पर्वत

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥१०॥
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् । अन्तस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥११॥
नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥
इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः । अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥१३॥
क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् । कुटजान्पश्य सौमित्रे पुष्पितान्गिरिसानुषु ॥
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान्स्थितान् ॥१४॥

रजः प्रशान्तं स हिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥१५॥
संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति ॥१६॥
क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥ १७ ॥
व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥१८॥
रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥१९॥

जल-धारासे अभिषिक्त हो रहा है ॥९॥ मेघरूपी कृष्णमृगचर्मके धारण करनेवाले, जलधाराका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, वायुपूर्ण गुहावाले, इन पर्वतोंने मानों अध्ययन करना प्रारम्भ किया है ॥१०॥ विद्युतरूपी सोनेके कोड़ेसे पीटा गया और मेघके शब्दोंमें उसने आर्तनाद किया, अतएव आकाश किसी भीतरी पीड़ासे पीड़ित मालूम पड़ता है ॥११॥ नील मेघमें संयुक्त, चमकती हुई बिजली, रावणके अंकमें चमकनेवाली बिचारी सीताके समान मालूम पड़ती है ॥१२॥ मेघोंसे दिशाएँ लीप दी गयी हैं। ग्रह, चन्द्रमा आदिका पता नहीं है। पूर्व पश्चिमका भेद नहीं मालूम होता। अतएव ये दिशाएँ कामियोंके लिए हितकारी हैं ॥१३॥ लक्ष्मण, पर्वत शिखर पर फूले हुए कुटजोंको देखो। वर्षाके आगमनके लिए ये समुत्सुक हैं और वाष्पसे युक्त हैं। शोकपीड़ित मेरे कामको बढ़ानेवाले हैं ॥१४॥ धूल शान्त हो गयी। ठंडी हवा चलने लगी। गर्मीके जो दोष थे वे दूर हुए। राजाओंकी यात्रा रुक गयी। प्रवासी मनुष्य अपने-अपने घर लौटने लगे ॥१५॥ मानससरमें रहनेके लोभी चक्रवाकोंने अपनी स्त्रियोंके साथ प्रस्थान किया। अधिक वर्षाके कारण टूटे हुए मार्गोंमें रथोंका चलना बन्द हो गया ॥१६॥ आकाशमें मेघ चारो ओर बिखरे हुए हैं, जिससे कहीं प्रकाश और कहीं अप्रकाश मालूम पड़ता है, जिस प्रकार पर्वतोंसे रुके हुए शान्त समुद्रका रूप हो जाता है ॥१७॥ सर्ज और कदम्ब पुष्पोंसे मिश्रित, पर्वतकी धातुओंसे लाल, नए जलको नदियाँ शीघ्र बहा ले जाती हैं। जो जल मयूरके शब्दसे संयुक्त हुआ है ॥१८॥ रससे भरा हुआ, भँवरेके समान काला जामुनका फल खूब खाया जाता है। वायुसे गिराये

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ॥२०॥
वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति ॥२१॥
समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥२२॥
मेघाभिकामा परिसंपतन्ती संमोदिता भाति बलाकपंक्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य ॥२३॥
बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन ॥२४॥
निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥२५॥
जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥२६॥
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमाः ॥२७॥

गए पक्के अनेक रंगके आमफल पृथ्वी पर गिर रहे हैं ॥१९॥ विद्युत् इनकी पताका है, बगलोंकी पंक्ति इनकी माला है। पर्वत शिखरके समान विशाल घोर गर्जन करनेवाले ये मेघ रणक्षेत्रके मतवाले हाथी के समान गर्ज रहे हैं ॥२०॥ वर्षाके जलसे जिसकी घास धो दी गयी है, जहाँ मोरोंका नाच प्रारम्भ हो गया है, मेघोंने पानी बरसा दिया है, वे वन दोपहरके बाद कैसे सुंदर मालूम होते हैं, देखो ॥२१॥ जलका बड़ा भारी भार ढोनेवाले और बगुलोंकी पंक्तिसे युक्त ये मेघ गरजते हुए, और पर्वतोंके शिखरोंपर विश्रामकर करके, आगे बढ़ते हैं ॥२२॥ मेघोंसे अनुराग रखनेवाली और आकाशमें चलनेवाली प्रसन्न बक-पंक्ति वायुसे उड़ाई श्वेत कमलकी लम्बी मालाके समान शोभती है। मानों वह आकाशकी माला ही हो ॥२३॥ इन्द्रगोपसे बीच बीचमें चित्रित नई घाससे पृथिवी उस स्त्रीके समान मालूम होती है, जिसने शुकके रंगका कम्बल शरीरपर धारण किया हो और वह कम्बल बीच बीचमें लाहके रंगसे रंगा गया हो ॥२४॥ विष्णुके पास निद्रा जाती है (चातुर्मास्यमें विष्णुके सोनेकी प्रसिद्धि है), नदी वेगसे समुद्रके पास जाती है, प्रसन्न होकर बकपंक्ति मेघोंके पास जाती है और कामिनी स्त्रियां प्रियके पास जाती हैं ॥२५॥ वनकी भूमिमें मयूरोंका नाच होने लगा। कदम्ब वृक्षकी शाखाओंमें कदम्बके फूल लग गए। बैल, गौओं के समान सकाम हुए और पृथिवी शस्योंसे रमणीय हुई ॥२६॥ नदियां बहती हैं, मेघ बरसते हैं, मतवाले हाथी गरजते हैं, वनकी भूमि शोभती है। प्रियावियोगी ध्यान करते हैं,

प्रहर्षिताः केतकिपुष्पगन्धमाघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेन्द्राः सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ॥२८॥
धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥२९॥
अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीयमाना इव षट्पदौघैः ॥३०॥
तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥३१॥
मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः ॥३२॥
क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥३३॥
कदम्बसर्जार्जुनकन्दलाढ्या वनान्तभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमा विभाति ॥३४॥
मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥३५॥
षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवंगमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३६॥

मयूर नाचते हैं और वानर प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ केतकी पुष्पकी गन्ध सूंघकर हर्षित, झरनेके शब्द सुननेसे चंचलचित्त मतवाले हाथी झरनेके पास मयूरोंके साथ गरज रहे हैं ॥२८॥ धाराके गिरनेसे आहत, कदम्बकी शाखामें लटकनेवाले भ्रमर पुष्परसके पीनेसे उसी समय उत्पन्न मदका त्याग कर रहे हैं ॥२९॥ कोयलेके चूर्णके समान काले रसभरे अधिक फलोंके कारण जामुन वृक्षकी शाखा ऐसी मालूम होती है, कि मानों भ्रमर लिपट कर उसे पी रहे हों ॥३०॥ बिजली-रूपी पताकासे अलंकृत, दूर तक फैलनेवाला, गम्भीर शब्द करनेवाले मेघोंका रूप युद्धोत्सुक वानरोंके समान मालूम होता है ॥३१॥ पर्वतके वनमें भ्रमण करनेवाला और युद्धकी इच्छासे मार्गमें जाता हुआ मतवाला हाथी मेघका शब्द सुनकर पीछे लौट पड़ा । उसे दूसरे हाथीके शब्दका भ्रम हो गया ॥३२॥ वनकी भूमि अनेक प्रकारकी हो गयी। भ्रमरोंके समूहोंसे कहीं गाती हुई, मयूरोंके द्वारा कहीं नाचती हुई और मतवाले हाथियोंके द्वारा प्रमत्तके समान मालूम होती थी ॥३३॥ कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और स्थलकमलसे युक्त मीठे जलसे परिपूर्ण यह वनभूमि मयूरके मत्तशब्द और नृत्यसे मद्यपानकी भूमिके समान हो गयी है ॥३४॥ इन्द्रका दिया हुआ गिरनेवाला और पत्तोंमें लगा हुआ, मोतीके समान निर्मल जल, प्रसन्न बिखरे पंखोंवाले प्यासे पक्षी पी रहे हैं ॥३५॥ मालूम होता है कि वनमें संगीत होता हो । भ्रमरोंका शब्द सितारके गानेके

क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३७॥
स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम्।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥३८॥
नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगा द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयन्ति ॥३९॥
नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥४०॥
प्रमत्तसंनादितबर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि ॥४१॥
नवाम्बुधाराहतकेसराणि ध्रुवं परिष्वज्य सरोरुहाणि।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि हृष्टा भ्रमराः पिबन्ति ॥४२॥
मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥४३॥
मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥४४॥

समान है, मेढ़कोंका शब्द कण्ठताल है। मेघका गर्जन मृदंगका शब्द है। इस प्रकार वनमें मानों संगीत हो रहा है ॥३६॥ कहीं नाच रहे हैं, कहीं बोल रहे हैं और कहीं वृक्षोंकी शाखा पर बैठे हुए हैं। अतएव लम्बे बर्ह (मयूरकी चोटी) वाले मयूरोंके द्वारा संगीत प्रारम्भ हुआ सा मालूम पड़ता है ॥३७॥ बहुत देरसे सोए हुए वानर, मेघोंके शब्दसे उठे। अनेक रूप, अनेक आकार, अनेक वर्ण और अनेक प्रकारके शब्द-वाले वे वानर जलधारासे आहत होकर बोल रहे हैं ॥३८॥ नदियोंने चक्रवाकको अपनेमें ले लिया है। टूटे हुए तीरको बहा दिया है। नए पाए हुए पुष्पादि उपहारोंसे जिनका भोग पूर्ण हो गया है वे नदियाँ गर्वित होकर अपने पति समुद्रके पास शीघ्रतापूर्वक जा रही हैं ॥३९॥ नीले मेघोंमें जलपूर्ण नीले मेघ मिलकर शोभित होते हैं, दावाग्निसे जले हुए पर्वतोंमें मिलनेसे मेघ दावाग्निदग्ध पर्वतके समान मालूम पड़ते हैं ॥४०॥ जिसमें मतवाले मयूर बोल रहे हैं, इन्द्रगोपसे युक्त घास है, नीप और अर्जुन वृक्षसे जो सुवासित हुई है ऐसी रमणीय वनभूमिमें मतवाले हाथी विचर रहे हैं ॥४१॥ नवीन जलधारासे जिनके केशर आहत हुए हैं, ऐसे कमल पुष्पोंको छोड़कर, भ्रमर केशरयुक्त नए कदम्ब पुष्पोंका पान करते हैं ॥४२॥ गजेन्द्र मस्त हैं, बैल प्रसन्न हैं, मृगेन्द्र वनमें पराक्रमी हैं, नगेन्द्र (पर्वत) शोभित हैं, नरेन्द्र चुप हैं, सुरेन्द्र जलधारासे क्रीड़ा कर रहे हैं ॥४३॥ आकाशमें लटकनेवाले मेघोंने समुद्रके शब्दको तिरस्कृत कर दिया है और जलके प्रवाहसे नदी तालाब सर वापी और समस्त पृथिवीको भर रहे हैं ॥४४॥ अति

वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः ।
प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः ॥४५॥
नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥४६॥
घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥४७॥
महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥४८॥
शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु संनादितबर्हिणासु हारा विकीर्यन्त इवावभान्ति ॥४९॥
शीघ्रं प्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्सङ्गतलैर्ध्रियन्ते ॥५०॥
सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः । पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥५१॥
विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः । विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः॥५२॥
वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते । वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥५३॥
मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् । अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥५४॥

वेगसे निरंतर पानी बरस रहा है, बड़े वेगसे हवा चल रही हैं । तटोंको तोड़कर और नियत मार्ग छोड़कर नदियां शीघ्रतापूर्वक बह रही हैं ॥४५॥ मनुष्योंके द्वारा लाए हुए जलसे राजाके समान इन्द्रसे प्रेरित पवनसे लाए हुए मेघरूपी घड़ोंसे अभिषिक्त होनेवाले पर्वत अपना रूप और अपनी शोभा दिखा रहे हैं ॥४६॥ आकाश मेघोंसे ढँक गया है । तारा या सूर्यका दर्शन नहीं हो रहा है । नवीन जलसे पृथिवी तृप्त हो गयी है । अन्धकारसे लिपी हुई दिशाएँ साफ नहीं मालूम पड़तीं ॥४७॥ बहुत बड़े-बड़े अनेक मोतियोंके समूहके समान नीचे गिरनेवाले, झरनोंकी धारासे धोए हुए बड़े-बड़े पर्वतोंके शिखर बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं ॥४८॥ पर्वतके पत्थरोंपर टकरानेसे जिनका वेग कम हो गया है, ऐसे अनेक झरने, मयूरके शब्दोंसे जो गूंज रही है ऐसी पर्वतोंकी गुहाओंमें, टूटे हारके समान फैल रहे हैं ॥४९॥ बड़े वेगवान् अनेक शिखरके पासके स्थानको धोनेवाले, मुक्ता-समूहके समान, गिरते हुए पर्वतोंके झरने, बड़ी गुहाओंके गोदमें धारण किए जाते हैं ॥५०॥ स्वर्गकी स्त्रियोंके विहारमें झटकेसे टूटा हुआ, मौक्तिक हारके समान वारिधारा चारों ओर गिरती है ॥५१॥ पक्षियोंके दिखायी न पड़नेसे, कमलोंके बन्द हो जानेसे और मालतीके विकसित हो जानेसे सूर्यका अस्त होना जाना जाता है ॥५२॥ राजाओंकी यात्रा समाप्त हो गयी, सेना रास्तेमें पड़ी है, वैर और रास्ता दोनोंको जलने बराबर कर दिया ॥५३॥ भाद्र महीनेमें वेद पढ़नेवाले साम ब्राह्मणोंके लिए यह अध्यायका समय है, अर्थात् उपाकरण-

निवृत्तकर्मायतनो नूनं संचितसञ्चयः । आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोशलाधिपः ॥५५॥
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धते रयः । मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः॥५६॥
इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते । विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः॥५७॥
अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः । नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ॥५८॥
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः । रावणश्च महाञ्छत्रुरपारः प्रतिभाति मे ॥५९॥
अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान् । प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम् ॥६०॥
अपि चातिपरिक्लिष्टं चिराद्दारैः समागतम् । आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुं नेच्छामि वानरम्॥६१॥
स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् । उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥६२॥
तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण । सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमभिकाङ्क्षयन ॥६३
उपकारेण वीरो हि प्रतीकारेण युज्यते । अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः ॥६४॥

अथैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं प्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥६५॥
यदुक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिदं भवाञ्जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥६६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥



काल है । सामवेदका प्रारम्भ भादोंके महीनेमें होता है ॥५४॥ घरके छाने आदिका कर्म जिसने समाप्त कर दिया है, चार महीनेका उपयोगी सामानोंका संग्रह जिसने कर लिया है, उस कौशल के राजा भरतने आषाढ़ी पूर्णिमाको किसी व्रतका अवश्यही संकल्प किया होगा ॥५५॥ भरी हुई सरयूका वेग इस समय बढ़ रहा होगा, जिस प्रकार आते हुए मुझे देखकर अयोध्यामें शब्द बढ़ेगा ॥५६॥ अनेक गुणोंवाली यह वर्षा ऋतु है । शत्रुको जीतकर स्त्री और राज्य पाकर सुग्रीव सुख कर रहा है॥५७॥ मेरी तो स्त्री हरी गई, बड़े राज्यसे मैं निर्वासित हुआ, लक्ष्मण टूटे हुए नदीके तीरके समान इस समय मैं कष्ट पा रहा हूँ ॥५८॥ मेरा शोक बढ़ा हुआ है और वर्षाके हटानेका कोई उपाय नहीं । रावण बड़ा भारी शत्रु है अतएव मेरा यह शोक अपार मालूम पड़ता है ॥५९॥ मार्ग दुर्गम है, यात्रा करनेका समय नहीं है , इसीलिए सुग्रीवके अधीन होनेपर भी मैंने कुछ नहीं कहा ॥६०॥ बहुत कष्टोंके बाद, बहुत दिनोंपर सुग्रीव स्त्रीसे मिला है और हमारा कार्य बहुत दिनोंमें सिद्ध होने वाला है, अतएव मैं इस समय सुग्रीवसे कुछ कहना नहीं चाहता ॥६१॥ विश्राम करके समय आनेपर सुग्रीव स्वयं हमारे उपकारोंको समझेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥६२॥ हे शुभलक्षण, इस कारण कालकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं ठहरा हूँ । नदियों और सुग्रीवकी मैं प्रसन्नता चाहता हूँ ॥६३॥ वीर उपकारका बदला अवश्य देता है, जो अकृतज्ञ होता है वह उपकारके बदले प्रत्युपकार नहीं करता । वह शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन करता है ॥६४॥ रामके द्वारा ऐसा कहे जाने पर लक्ष्मणने हाथ जोड़कर उनकी बातें स्वीकार कीं और अपना मत बतलानेके लिए रामचन्द्रसे

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥
समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम् । अत्यर्थं चासतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ॥ २ ॥
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा । प्राप्तवन्तमभिप्रेतान्सर्वानेव मनोरथान् ॥ ३ ॥
स्वां च पत्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम् । विहरन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम् ॥ ४ ॥
क्रीडन्तमिव देवेशं गन्धर्वाप्सरसां गणैः । मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम् ॥ ५ ॥
उच्छिन्नराज्यसंदेहं कामवृत्तमिव स्थितम् । निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित् ॥ ६ ॥
प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः । वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥ ७ ॥
हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत् । प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥
हरीश्वरमुपागम्य हनूमान्वाक्यमब्रवीत् । राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता ॥ ९ ॥
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति । यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ॥१०॥

वे बोले ॥६५॥ नरेन्द्र, जो आपने कहा है वह सब आपका अभीष्ट सुग्रीव शीघ्र करेंगे। शरदकी प्रतीक्षा करते हुए शत्रुवधकी प्रतीज्ञा करनेवाले आपको यह बरसातका समय बिताना ही पड़ेगा ॥६६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अट्ठारहवां सर्ग समाप्त।



आकाश निर्मल हो गया है, विद्युत और बक-पंक्ति हट गयी है, सारसोंका दल आकाशमें बोलने लगा है, सुन्दर प्रकाश फैल गया है; यह देखकर तथा जिसका मनोरथ पूर्ण हो गया है, धर्म और अर्थके संग्रहमें जो शिथिल हो गया है, असज्जनोंके मार्गको जिसने अच्छी तरह ग्रहण किया है, काम भोगके योग्य एकान्त स्थानको जो बहुत अधिक पसन्द करता है, जिसका वालिवधरूप कार्य समाप्त हो चुका है, राज्य प्राप्त हो गया है, ईप्सित जिसके समस्त मनोरथ सिद्ध हो गए हैं, जो स्त्रियोंमें सदा अनुरक्त रहता है, अपनी प्रिय पत्नी और ईप्सित तारा जिसको प्राप्त हुई है, जो दिन रात विहार करता है, जिसके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है, गंधर्व और अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करनेवाले इन्द्रके समान, जो सदा क्रीड़ा करता है, जिसने मंत्रियोंको कार्य भार दे रखा है, जो उनके कामोंको स्वयं नहीं देखता, जिसके राज्यके नियम नष्ट हो गए हैं, जो यथेच्छाचारीके समान रहता है, वैसे वाक्यतत्वोंको समझनेवाले वानरराज सुग्रीवको हेतुयुक्त सुन्दर अनेक वाक्योंसे प्रसन्न करके विषयको ठीक-ठीक समझनेवाले, कर्तव्यके विषयसे सन्देह-रहित, समयको अच्छी तरह समझनेवाले, वायु-पुत्र हनुमान हितकारी, सत्य और उपकारी, साम, धर्म और नीतिसे युक्त, नम्रता और प्रेम सहित, शास्त्रोंमें विश्वास करनेवालोंके निश्चित वचन सुग्रीवके पास जाकर बोले, आपने राज्य और यश पाया, कुलक्रमसे आयी हुई लक्ष्मीको बढ़ाया ॥१,२,३,४,५,६,७,८,९॥ पर मित्रोंका कार्य अभी बाकी है, उसे आप करें।

तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते। यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ॥
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ॥११॥
तद्भवान्वृत्तसंपन्नः स्थितः पथि निरत्यये। मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति ॥१२॥
संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते। संभ्रमाद्विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥१३॥
यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते। स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥१४॥
तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिंदम। क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम् ॥१५॥
न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित्। त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन्वशानुगः ॥१६॥
कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः। अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ॥१७॥
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव। हरीश्वर कपिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥१८॥
नहि तावद्भवेत्कालो व्यतीतश्चोदनादृते। चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत्कालव्यतिक्रमः ॥१९॥
अकर्तुरपि कार्यस्य भवान्कर्ता हरीश्वर। किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च धनेन च ॥२०॥
शक्तिमानतिविक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर। कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सज्जसे॥२१॥

अवसर जाननेवाले मित्रोंके कार्यमें बहुत तत्पर रहते हैं। ॥१०॥ राजन्, जिसका, खजाना सेना, मित्र और अपना शरीर ये सब सामान समझे जाते हैं, अर्थात् इन सबका जहां परिपालन होता है वहां राज्य कीर्ति और प्रताप बढ़ते हैं ॥११॥ अतएव, सन्मार्गमें स्थित, चरित्रवान् आपको मित्रके कार्योंको अच्छी तरह सम्पन्न करना चाहिए ॥१२॥ जो सब कामोंको छोड़कर मित्रके कार्यके लिए आदरपूर्वक उद्योग नहीं करता है, उसका उत्साह नष्ट हो जाता है और वह अनर्थ पाता है ॥१३॥ समयके बीतनेपर जो मित्रके कार्यके लिए उद्योग करता है वह मित्रका बड़ा भारी कार्य करनेपर भी मित्रके लिए उसने कार्य किया है। ऐसा नहीं समझा जाता ॥१४॥ अतएव, शत्रुनाशन, हमलोगोंके मित्रके कार्यका भी समय बीत रहा है। रामचन्द्रके लिए 'सीता'का ढूँढ़ना हम लोगोंको प्रारम्भ करना चाहिए। वीर! हम लोगोंका यही कार्य है जिसके लिए समय बीत रहा है ॥१५॥ रामचन्द्र, काल जानते हैं, उन्हें जल्दी भी बहुत है; पर वे बुद्धिमान् हैं और तुम्हारे वशमें हैं, अतएव समय बीतनेकी बात उन्होंने तुमसे नहीं कही ॥१६॥ रामचन्द्र तुम्हारे बड़े कुलकी वृद्धिके हेतु हैं। बहुत दिनोंके लिए मित्र हैं, उनका प्रभाव अनुपम है, वे स्वयं भी गुणोंसे अतुलनीय हैं ॥१७॥ तुम अब उनका कार्य करो। उन्होंने तुम्हारा पहले कार्य किया है। हे वानरराज, अपने प्रधान वानरोंको आज्ञा दो ॥१८॥ जब तक रामचन्द्र हम लोगोंसे कुछ नहीं कहते, तब तक यदि हम लोग कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीतना नहीं समझा जायगा। रामचन्द्रके कहनेपर समयका बीतना समझा जायगा ॥१९॥ वानर-राज, जिसने आपका कोई काम नहीं किया है उसका भी राज्य और धनके द्वारा आप उपकार कर सकते हैं। फिर जिसने आपका उपकार किया है उसके लिए क्या कहा जाय ॥२०॥ आप शक्तिमान् हैं, बड़े पराक्रमी हैं, फिर रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए

कामं खलुः शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान् । वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥२२॥
प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन महत्प्रियम् । तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥२३॥
देवदानवगन्धर्वा असुराः समरुद्गणाः । न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमिव राक्षसाः ॥२४॥
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रतिकृतस्तथा । रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम्॥२५॥
नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे । कस्यचित्सज्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया ॥२६॥
तदाज्ञापय कः किं ते कुतो वापि व्यवस्यतु । हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोट्यग्रतोऽनघ ॥२७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निरूपितम् । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥२८॥
संदिदेशातिमतिमान्नीलं नित्यकृतोद्यमम् । दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे ॥२९॥
यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः । समागच्छन्त्यसंगेन सेनाग्रेण तथा कुरु ॥३०॥
ये त्वन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः । समानयन्तु ते शीघ्रं त्वरिताः शासनान्मम॥
स्वयं चानन्तरं कार्यं भवानेवानुपश्यतु ॥३१॥
त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः । तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा॥३२॥

वानरोंको आज्ञा देनेमें क्यों विलम्ब करते हैं ॥२१॥ यद्यपि रामचन्द्र बाणोंके द्वारा देवता, राक्षस और रावणको अपने वशमें अनायास कर सकते हैं। फिर भी वे तुम्हारी प्रतिज्ञा देख रहे हैं। वे जानना चाहते हैं कि तुम प्रतिज्ञाका पालन करते हो कि नहीं ॥२२॥ वालि-वधके विषयमें किसी प्रकारकी शंका न करके रामचन्द्रने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है। हम लोगोंको भी चाहिए कि पृथिवी तथा आकाशमें भी सीताको ढूंढ़े ॥२३॥ देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, वायु, गण और यक्ष युद्धमें उन रामचन्द्रको भयभीत नहीं कर सकते, फिर राक्षसोंकी क्या बात ॥२४॥ इस प्रकारके शक्तिमान् रामचन्द्रने पहले तुम्हारा उपकार किया है। हे कपिराज, उन रामचन्द्रका प्रिय आपको सब प्रकारसे करना चाहिए ॥२५॥ हे कपीश्वर आपकी, तथा हम लोगोंमेंके कई वानरोंकी गति पातालमें, पृथ्वीमें, जलमें और आकाशमें भी रुक नहीं सकती ॥२६॥ अतएव आप आज्ञा दें कि कौन आपकी किस आज्ञाका और कहाँसे पालन करे। करोड़से भी ऊपर आपके वानर हैं जो पराजित होनेके योग्य नहीं हैं ॥२७॥ हनुमानका ठीक समय पर कहा हुआ सुन्दर वचन सुनकर बलवान सुग्रीवने उस कार्यको सिद्ध करनेका निश्चय किया ॥२८॥ अत्यन्त बुद्धिमान् सुग्रीवने सब दिशाओंमें वर्तमान सैनिकोंको एकत्र करनेके लिए सदा उद्योग में रत रहनेवाले नलको आज्ञा दी ॥२९॥ सेना-नायकोंके साथ मेरी समस्त सेना तथा यूथपाद अविलम्ब जिस प्रकार यहां आजांय वैसा तुम करो ॥३०॥ सीमा पर रहनेवाले शीघ्रगामी और उद्योगी वानर मेरी आज्ञासे शीघ्र यहाँ आवें। उनके आज्ञाका कार्य आप स्वयं निश्चित करें ॥३१॥ पन्द्रह दिनके भीतर जो वानर यहां उपस्थित नहीं होगा, उसको निश्चित प्राण दण्ड दिया जायगा और

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो भवान्ममाज्ञामधिकृत्य निश्चितम् ।
इति व्यवस्थां हरिपुंगवेश्वरो विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान् ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशः सर्गः ३०

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः । वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥
पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ २ ॥
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥ ३ ॥
स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान्नृपः । मनःस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसारवसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥ ५ ॥
आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते । शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम् ॥ ६ ॥
सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी । याश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ॥ ७ ॥
पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान् । कथं सा रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ॥ ८ ॥

इस आज्ञा पर पुनः विचार न होगा ॥३२॥ मेरी आज्ञासे अंगदको लेकर बूढ़े वानरोंके पास आप स्वयं जांय । इस प्रकार आज्ञा देकर वानरराज सुग्रीव महलमें गया ॥३३॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका उनतीसवां सर्ग समाप्त ।

सुग्रीवके घर जा बैठने पर एवं मेघोंसे आकाशके शून्य होने पर पर्वतपर चतुर्मास बितानेवाले रामचन्द्र, जानकीके पानेकी उत्कट इच्छा और उनके न पानेके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हुए ॥१॥ आकाश स्वच्छ हो गया । चन्द्रमण्डल विमल हुआ । शरदकी रात्रिमें चांदनी छिटकी ॥ २ ॥ सुग्रीव काममें आसक्त हो गया । निश्चयका समय व्यतीत हो गया । यह देखकर और खोयी हुई सीताका स्मरणकर बहुत दुःखी हुए और बेहोश हो गए ॥३॥ थोड़ी देरमें बुद्धिमान् राजा राम होशमें आकर मनमें बसी हुई सीताका चिन्तन करने लगे ॥ ४ ॥ आकाश निर्मल हो गया है, विद्युत और बक-पंक्ति चली गयी हैं, सारस पक्षी बोल रहे हैं, यह देखकर रामचन्द्र दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ सुवर्ण-भूषित पर्वतके शिखरपर बैठे हुए रामचन्द्र शरदकी रात्रिको देखकर मनही मन सीताके पास पहुँचे, अर्थात् उनकी चिन्ता करने लगे ॥ ६ ॥ सारसके समान बोलनेवाली बाला सीता, सारसके शब्दोंसे आश्रममें मेरे साथ क्रीड़ा करती थी । आज वह कैसे क्रीड़ा करती होगी ॥७॥ सोनेके समान चमकीले आसन वृक्षके फूलोंको देखकर और मुझको न देखकर वह सीता कैसे प्रसन्न होती होगी ॥८॥ जो मधुर बोलने

या पुरा कलहंसानां कलेन कलभाषिणी । बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे रमते कथम् ॥ ९ ॥
निःस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम्। पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥ १०॥
सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च । तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥११॥
अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् । सुदूरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥१२॥
एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः । विहंग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥१३॥
ततश्चञ्चूर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु । ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥१४॥

स चिन्तया दुःसहया परीतं विसंज्ञमेकं विजने मनस्वी ।
भ्रातुर्विषादात्त्वरितोऽतिदीनः समीक्ष्य सौमित्रिरुवाच दीनम् ॥ १५ ॥
किमार्य कामस्य वशंगतेन किमात्मपौरुष्यपराभवेन ।
अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः किमत्र योगेन निवर्तते न ॥ १६ ॥
क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वः स्वकर्महेतुं च कुरुष्व तात ॥ १७ ॥
न जानकी मानववंशनाथ त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
न चाग्निचूडां ज्वलितामुपेत्य न दह्यते वीरवरार्ह कश्चित् ॥ १८ ॥
सलक्षणं लक्ष्मणमप्रधृष्यं स्वभावजं वाक्यमुवाच रामः ।
हितं च पथ्यं च नयप्रसक्तं ससामधर्मार्थसमाहितं च ॥ १९ ॥

वाली और सर्वाङ्ग-सुन्दरी सीता कलहंसोंके शब्दसे उनको जान जाती थी, वह आज किस प्रकार क्रीड़ा करती होगी ॥९॥ स्त्रीके साथ चलनेवाले चक्रवाकोंके शब्द सुनकर कमल-विशालाक्षी सीता आज कैसे जीती होगी ॥१०॥ तालाव, नदी, वापी कानन और वनमें मैं घूमता हूँ, पर उस मृगनेत्राके बिना सुख नहीं पाता ॥११ मेरे वियोगसे तथा सुकुमारतासे शरत्कालमें बढ़ा हुआ काम उस सीताको बहुत अधिक पीड़ित करता होगा ॥१२॥ इन्द्रसे जल चाहता हुआ चातक जिस प्रकार बहुत विलाप करता है उसी प्रकार नर-श्रेष्ठ रामचन्द्रने बहुत विलाप किया ॥१३॥ रमणीय पर्वत शिखरपर फलके कष्टसे घूमकर आये हुए शोभायुक्त लक्ष्मणने अपने भाईको देखा, ॥१४॥ वे दुःसह चिन्तामें मग्न हैं, निर्जनमें, अकेले संज्ञाहीन पड़े हैं । भाईके दुःखसे अति दुखित लक्ष्मण रामचन्द्रको दुखी देखकर बोले, ॥१५॥ आर्य कामके अधीन होनेसे कौन लाभ होगा और अपने पराक्रमको भूल जानेसे क्या फल होगा ? शोकसे चित्तकी एकाग्रता नष्ट होती है । योगसे, चित्तकी एकाग्रतासे, क्या सब दुःख नष्ट नहीं होते ? ॥१६॥ शारीरिक क्रियाओंको कीजिए और प्रसन्न मन होकर धीरता और निश्चलताके साथ उद्योग कीजिए पराक्रम प्रकट करके, पुरुषार्थ वृद्धिके कारण-स्वरूप सहाय और सामर्थ्यको बढ़ानेका प्रयत्न कीजिए ॥१७॥ हे मनुकुलनाथ, आपकी जानकी दूसरेके अधीन नहीं हो सकती । जलती हुई आगके पास अगर आगके अतिरिक्त दूसरा कोई जाय तो वह जल ही जाता है ॥१८॥ लक्षणयुक्त युक्तियोंसे विचलित न होनेवाले लक्ष्मणसे रामचन्द्र बोले—जो तुमने कहा वह हितकारी, उचित और राजनीतियुक्त है । साम

निःसंशयं कार्यमवेक्षितव्यं क्रियाविशेषोऽप्यनुवर्तितव्यः ।
न तु प्रवृद्धस्य दुरासदस्य कुमार वीर्यस्य फलं च चिन्त्यम् ॥ २० ॥
अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् । उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥२१॥
तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुंधराम् । निवर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः॥२२॥
दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः । विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥२३॥
नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश । विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥२४॥
जलगर्भा महामेघाः कुटजार्जुनगन्धिनः । चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः॥२५॥
घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण । नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥२६॥
अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः । अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥२७॥
शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु ताराकंनिशाकराणाम् ।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥
संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपपन्ना ।
सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥ २९ ॥
सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनानुसारी दर्पं विनेष्यन्नधिकं विभाति ॥ ३० ॥

और धर्म अर्थसे भी युक्त है ॥१९॥ निःसन्देह कार्य करना चाहिए, कर्मयोगका भी अनुष्ठान करना चाहिए। कुमार, बढ़ेहुए बलवान कर्मके फलका भी विचार करना चाहिए ॥ २० ॥ कमलपत्राक्षी, सीताका ध्यान करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले, उनका मुँह सूख रहा था ॥२१॥ इन्द्रने जलसे पृथ्वीको तृप्त कर दिया। सस्योंको पका दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना सब काम समाप्त कर दिया ॥२२॥ राजपुत्र, दूरतक फैलनेवाला और गम्भीर शब्द करनेवाले; वृक्ष और पर्वतोंके ऊपर चलनेवाले मेघ जल बरसा कर शान्त हो गए ॥२३॥ नीलकमलके समान श्याम मेघोंने दशों दिशाओंको श्याम बना दिया और मदहीन हाथीके समान शिथिल हो गए ॥२४॥ जलरूपी गर्भ धारण करनेवाले कुटज और अर्जुनके गन्धसे युक्त अनेक जल बरसानेवाले वायु चारो ओर घूमकर अब शान्त हो गए ॥२५॥ मेघों, हाथियों, मयूरों और झरनोंका शब्द, हे लक्ष्मण, सहसा शान्त हो गया ॥२६॥ महामेघोंके जलसे धोए हुए अतएव निर्मल, चित्र विचित्र शिखरवाले पर्वत चन्द्रमाकी किरणोंसे लिपे हुएके समान मालूम पड़ते हैं ॥२७॥ सप्तच्छद वृक्षोंकी शाखाओंमें, तारा, सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंमें, तथा हाथियोंकी क्रीड़ामें, शोभा बांटकर यह शरद ऋतु आयी है ॥२८॥ शरतकालसे उत्पन्न शोभा यद्यपि अनेक वस्तुओंको शोभित कर रही है फिर भी सूर्यकी किरणोंसे विकसित कमलवनमें वह अधिक शोभित है ॥२९॥ सप्तच्छदके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त, भ्रमरोंसे अनुगीयमान और वायुका अनुसरण करनेवाला, यह शरत्काल मतवाले हाथियोंका अहंकार दूर करता हुआ अधिक शोभता है ॥३०॥ बड़ी पाँखवाले, अपने

अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोवकीर्णैः।
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ ३१ ॥
मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ ३२ ॥
नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु।
प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः ॥ ३३ ॥
मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः पुष्पाग्रभारावनताग्रशाखैः।
सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्योतितानीव वनान्तराणि ॥ ३४ ॥
प्रियान्वितानां नलिनीप्रियाणां वनप्रियाणां कुसुमोद्गतानाम्।
मदोत्कटानां मदलालसानां गजोत्तमानां गतयोऽद्य मन्दाः ॥ ३५ ॥
व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥ ३६ ॥
सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः।
अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥ ३७ ॥
शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः।
मदोत्कटाः संप्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ॥ ३८ ॥

घर आये हुए, कामी, कमलकी धूलसे भरे हुए, महानदीके तट पर आए हुए चक्रवाकोंके साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं ॥३१॥ मतवाले हाथियोंमें गर्वित, बैलोंके समूहमें, स्वच्छ जलवाली नदियोंमें, शरत्की शोभा बहुत जगह बँट गयी है ॥३२॥ मेघोंसे त्यक्त आकाशको देखकर मयूरोंका हर्ष नष्ट हो गया। प्रियाओंके प्रति उनका अनुराग कम हो गया। बर्ह रूपी आभूषणका उनलोगोंने त्याग कर दिया; उनकी शोभा नष्ट हो गयी। वे अब वनमें रहकर ध्यान कर रहे हैं ॥३३॥ पुष्पके भारसे जिनकी शाखाओंके अग्रभाग नत गए हैं; सुन्दर गन्धवाले, सुवर्णके समान गौर, आँखोंके प्रिय अनेक असन वृक्षोंसे वनभूमि मानो प्रकाशित हो रही है ॥३४॥ प्रियाके साथ वर्तमान, कमल और वनसे प्रेम करनेवाले, सप्तच्छदके फूल सूँघनेवाले, मदके कारण उच्छृङ्खल बने हुए और मदसे प्रेम करनेवाले, हाथियोंका गमन इस समय मन्द हो गया है ॥३५॥ शानपर चढ़ी हुई तलवारके समान आकाशका वर्ण हो गया है; नदियाँ धीरे-धीरे बह रही हैं। वायु कमलसे सीत होकर बह रहा है। दिशाएँ अन्धकारके हटनेसे प्रकाशित हो गयी हैं ॥३६॥ सूर्य-तापके फैलनेसे पंक नष्ट हो गया है। भूमिने बहुत दिनों पर धूलि उत्पन्न की है। परस्पर वैर रखनेवाले, राजाओंके उद्योग करनेका यही समय है ॥३७॥ शरत्के कारण जिनके रूप और शोभाकी वृद्धि हुई है, जिनके शरीरमें धूलि लगी हुई है, वे मतवाले प्रसन्न और युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले बैल गौओंके बीचमें नाद कर रहे हैं ॥३८॥ कामयुक्त, उत्कट

समन्मथा तीव्रतरानुरागा कुलान्विता मन्दगतिः करेणुः ।
मदान्वितं संपरिवार्य यान्तं वनेषु भर्तारमनुप्रयाति ॥ ३९ ॥
त्यक्त्वा वराण्यात्मविभूषितानि बर्हाणि तीरोपगता नदीनाम् ।
निर्भर्त्स्यमाना इव सारसौघैः प्रयान्ति दीना विमना मयूराः ॥ ४० ॥
वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटा गजेन्द्राः ।
सरःसु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥ ४१ ॥
व्यपेतपंकासु सवालुकासु प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु ।
ससारसारावविनादितासु नदीषु हंसा निपतन्ति हृष्टाः ॥ ४२ ॥
नदीघनप्रस्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ।
प्लवंगमानां च गतोत्सवानां ध्रुवं रवाः संप्रति संप्रनष्टाः ॥ ४३ ॥
अनेकवर्णाः सुविनष्टकाया नवोदितेष्वम्बुधरेषु नष्टाः ।
क्षुधार्दिता घोरविषा बिलेभ्यश्चिरोषिता विप्रसरन्ति सर्पाः ॥ ४४ ॥
चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका । अहो रागवती संध्या जहातु स्वयमम्बरम् ॥४५॥
रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी ॥ ४६ ॥
विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपंक्तिः ।
नभः समाक्रामति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥ ४७ ॥

अनुराग रखनेवाली, कुलवती, धीरे-धीरे चलनेवाली हथिनी, वनमें जाते हुए मतवाले पतिके साथ साथ, जा रही है ॥३९॥ अपने उत्तम आभूषण बर्हका त्याग करके नदी तीरपर आए हुए उदासीन मयूर सारसोंके तिरस्कारसे दुःखी होकर लौट रहे हैं ॥४०॥ मतवाले हाथी, अपने गर्जनसे कारण्डव, चक्रवाक आदिको डरवाकर विकसित कमलोंसे भूषित नदियोंका जल हिलोर कर पीते हैं ॥४१॥ पंकरहित वालुयुक्त प्रसन्नजलवाली नदियोंके तीरपर हंस प्रसन्न होकर आते हैं । वहाँ गौओंका समूह वर्तमान है और सारसोंके शब्दसे वह स्थान प्रतिध्वनित हो रहा है ॥४२॥ नदी, मेघ, झरने, जल बढ़े हुए वायु, मयूर और प्रसन्नता-रहित वानरोंका शब्द इस समय बन्द हो गया है ॥४३॥ अनेक वर्णवाले मेघके उदयसे मृतप्रायः भूखसे पीड़ित, जहरीले साँप बिलमें बहुत दिनों तक रह कर अब बाहर निकल रहे हैं ॥४४॥ शोभमान चन्द्र-किरणोंके स्पर्शसे हर्षित, अतएव अल्पप्रकाश-विशिष्ट नक्षत्रोंवाली, यह सन्ध्या अद्भुत् रागवती (लाल रंगवाली अथवा अनुरागवाली) है, जो स्वयं अम्बर (आकाश या वस्त्र) का त्याग करती है ॥४५॥ उदित चन्द्रमा जिसका सुंदर मुँह है, तारा गण खुले नेत्र हैं, ज्योत्स्नांशुक (प्रकाशकी किरणोंको) जिसने धारण किया है, ऐसी यह रात्रि श्वेत लड़ी पहनी हुई स्त्रीके समान मालूम पड़ती है ॥४६॥ पके धानकी बालोंको खाकर प्रसन्न सारसोंकी पंक्ति बड़े वेगसे आकाशमें जाती

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥ ४८ ॥
प्रकीर्णहंसाकुलमेखलानां प्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ।
वाप्युत्तमानामधिकाद्य लक्ष्मीर्वराङ्गनानामिव भूषितानाम् ॥ ४६ ॥
वेणुस्वरव्यञ्जिततूर्यमिश्रः प्रत्यूषकालेऽनिलसंप्रवृत्तः ।
संमूर्च्छितो गह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीव शब्दः ॥ ५० ॥
नवैर्नदीनां कुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ।
धौतामलक्षौमपटप्रकाशैः कूलानि काशैरुपशोभितानि ॥ ५१ ॥
वनप्रचण्डा मधुपानशौण्डाः प्रियान्विताः षट्चरणाः प्रहृष्टाः ।
वनेषु मत्ताः पवनानुयात्रां कुर्वन्ति पद्मासनरेणुगौराः ॥ ५२ ॥
जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम् ।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ॥ ५३ ॥
मीनोपसंदर्शितमेखलानां नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः ।
कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम् ॥ ५४ ॥
सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि ।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि ॥ ५५ ॥

हैं, मानो हवासे उड़ाई गुँथी हुई माला हो ॥४७॥ बड़े तालाबका जल, जिसमें एक हंस शोभ रहा है और अनेक श्वेत कमल खिले हुए हैं, वह मेघ रहित पूर्ण चन्द्रमा तथा तारागणसे युक्त आकाशके समान मालूम होता है ॥४८॥ फैले हुए अंश, करधनीके समान मालूम होते हैं। विकसित कमलमालाके समान हो रहे हैं। ऐसी वापी भूषित सुन्दरी स्त्रियोंकी शोभा धारण करती है ॥४९॥ वंशी और वाद्यके साथ मिला हुआ, प्रातःकालमें वायुके द्वारा फैलाया हुआ गिरि-गह्वर और बैलोंका शब्द परस्पर एक दूसरेको बढ़ा रहा है ॥५०॥ मन्द मारुतसे कंपाए हुए धौत श्वेत वस्त्रके तुल्य कासोंसे, जो पुष्पके बहाने हँस रहे हैं, नदियोंके तीर पर शोभित हो रहे हैं ॥ ५१ ॥ वनमें घूमनेवाले पुष्परस पीनेसे मत्त प्रियाके साथ विचरण करनेवाले प्रमत्त भ्रमर, पद्म और असन पुष्पकी धूलिसे गौरवर्ण हुए वायुका अनुवर्तन कर रहे हैं ॥५२॥ जल प्रसन्न है, पुष्प रूपी हँसी प्रकाशित हुई है, क्रौंच बोल रहे हैं। धान पक गये हैं। कोमल वायु बह रही है। चन्द्रमा विमल हो गया। इन सबसे वर्षाके बीतनेको सूचना होती है ॥५३॥ मछली-रूपी करधनीको जिन्होंने दिखलाया है, ऐसी नदी वधुओंकी गति आज मन्द हो गयी है, जिस प्रकार पतिके द्वारा उपभुक्त स्त्रियाँ प्रातःकाल धीरे-धीरे चलती हैं ॥५४॥ चक्रवाक, शैवाल तथा वस्त्ररूपी काससे युक्त नदीका मुहाना पत्र-रेखायुक्त और रोचनयुक्त स्त्री-मुखके समान मालूम होता है ॥५५॥ वाण

प्रफुल्लबाणासनचित्रितेषु प्रहृष्टषट्पादनिकूजितेषु ।
गृहीतचापोद्यतदण्डचण्डः प्रचण्डचापोऽद्य वनेषु कामः ॥ ५६ ॥
लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा ।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥ ५७ ॥
दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैःशनैः । नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥५८॥
प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुरराभिविनाहिताः । चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥५९॥
अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज । उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥६०॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज । न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥६१॥
असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः । दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिसानुषु ॥६२॥
हंससारसचक्राह्वैः कुररैश्च समन्ततः । पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण ॥६३॥
चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः । मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥६४॥
चक्रवाकीव भर्तारं पृष्ठतोऽनुगता वनम् । विषमं दण्डकारण्यमुद्यानमिव चाङ्गना ॥६५॥
प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते । कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥६६॥
अनाथो हृतराज्योऽयं रावणेन च धर्षितः । दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥६७॥
इत्येतैः कारणैः सौम्य सुग्रीवस्य दुरात्मनः । अहं वानरराजस्य परिभूतः परंतपः ॥६८॥

और असन वृक्षोंके पुष्पित होनेसे जो चित्रित हो गया है । प्रसन्न भ्रमर जिसमें गूँज रहे हैं उस वनमें विशाल धनुष धारण करनेवाला काम कामियोंको दण्ड देनेमें तीव्र क्रोधी हो रहा है ॥५६॥ सुन्दर वृष्टिसे संसारको सन्तुष्ट करके, नदी तालाबको पूरा करके, पृथ्वीमें धान आदि उत्पन्न कराके, मेघ आकाशका त्याग करके नष्ट हो गये ॥५७॥ शरदकी नदियाँ धीरे-धीरे अपना तीर प्रकाशित कर रही हैं, जिस प्रकार नवसङ्गमके समय लज्जा रखनेवाली स्त्री जघन प्रकाशित करती है ॥५८॥ प्रसन्न जलवाले, कुररोंके शब्दसे प्रतिध्वनित, चक्रवाकोंसे युक्त जलाशय शोभित होते हैं ॥५९॥ राजपुत्र, परस्पर वैर रखनेवाले तथा अपनी विजय चाहनेवाले राजाओंका यही उद्योग काल है ॥६०॥ राजपुत्र, राजाओंकी यात्राका यही प्रधान समय है, पर सुग्रीवको नहीं देखता हूँ और न किसी प्रकारका उद्योग ही दीख पड़ता है ॥६१॥ असन, सप्तपर्ण, कोविदार पुष्पित हो गए हैं, बन्धुजीव और तमाल भी पुष्पित हो गए हैं, पर्वतके शिखर पर दीख पड़ते हैं ॥६२॥ लक्ष्मण ! देखो, हंस सारस चकवाक और कुरर इन सबसे नदियोंके तीर भर गए हैं ॥६३॥ शोकसे पीड़ित और सीतासे विरहित मुझे वर्षाके ये चार महीने सौ वर्षोंके समान मालूम पड़ते हैं ॥६४॥ सीता विषम दण्डकारण्य वनको उद्यान समझकर मेरे साथ चक्रवाकीके समान आयी थी ॥६५॥ लक्ष्मण, प्रियासे हीन, दुखार्त, हृतराज्य और निर्वासित मुझपर राजा सुग्रीव कृपा नहीं करते ॥६६॥ मैं अनाथ हूँ, मेरा राज्य छीन लिया गया है, रावणने मेरा तिरस्कार किया है, मैं दुखी हूँ, मेरा घर यहाँसे बहुत दूर है और मैं कामी हूँ तथा सुग्रीवकी शरण आया हूँ ॥६७॥ इन सब कारणोंसे अर्थात् ऐसी

स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे । कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुद्ध्यते ॥६९॥
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम् । मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥७०॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् । आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥७१॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् । सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥७२॥
कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये । तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥७३॥
नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे । द्रष्टुमिच्छसि चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम् ॥७४॥
घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे । निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि ॥७५॥
काममेवंगतेऽप्यस्य परिज्ञाते पराक्रमे । त्वत्सहायस्य मे वीर न चिन्ता स्यान्नृपात्मज ॥७६॥
यदर्थमयमारम्भः कृतः परपुरंजय । समयं नाभिजानाति कृतार्थः प्लवगेश्वरः ॥७७॥
वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः । व्यतीतांश्चतुरो मासान्विहरन्नावबुद्ध्यते ॥७८॥
सामात्यपरिषत्क्रीडन्पानमेवोपसेवते । शोकदीनेषु नास्मासु सुग्रीवः कुरुते दयाम् ॥७९॥
उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल । मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ॥८०॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः । समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥८१॥

बातें समझकर दुरात्मा वानरराज सुग्रीवने मेरा तिरस्कार किया है ॥६८॥ उसने सीताको ढूँढ़नेके लिए समय नियत किया था । जब उसका काम हो गया तब वह मूर्ख कुछ समझता नहीं । तुम किष्किन्धा जाकर वानरोंके राजा मूर्ख सुग्रीवसे जो स्त्री-सुखमें फँस गया है, मेरे बचन कहो ॥६९, ७०॥ आये हुए प्रार्थियोंको, तथा पहले उपकार करनेवालेको आशा पूर्ण करनेका विश्वास दिलाकर जो पराङ्मुख हो जाता है, वह नीच पुरुष है ॥७१॥ अच्छा या बुरा वह जो कुछ कह देता है, सत्यतापूर्वक उसका पालन करता है, वही पुरुष श्रेष्ठ वीर है ॥७२॥ अपना काम हो जाने पर अवशिष्टमनोरथ मित्रोंके काम जो नहीं करते उन कृतघ्नोंके मरनेपर राक्षस भी उन्हें नहीं खाते ॥७३॥ सोनेकी पीठवाले मेरे द्वारा चढ़ाए जानेवाले बाणका बिजलीके समान चमकनेवाला रूप क्या तुम देखना चाहते हो ? ॥७४॥ युद्धमें क्रोध करके खींचे गए धनुषका वज्रके समान भयानक शब्द क्या तुम पुनः सुनना चाहते हो ? ॥७५॥ राजपुत्र, वीर तुम जिसके सहायक हो ऐसे मेरे पराक्रमका ज्ञान सुग्रीवको तो हो गया है, फिर वह इतना निश्चिन्त क्यों है ? ॥७६॥ शत्रुविजयी लक्ष्मण ! जिसके लिए यह आरम्भ किया था, अर्थात् सुग्रीवसे मैत्री की था, सुग्रीव अपना कार्य सिद्ध होनेपर उस निश्चयको भूल गया ॥७७॥ वानरराज सुग्रीवने वर्षाकी समाप्ति पर सीताको ढूँढ़नेकी प्रतिज्ञा की थी, अब विहार करनेमें मस्त सुग्रीव बीते हुए इन चार महीनोंको नहीं जानता ॥७८॥ सचिव और सभाके सदस्योंके साथ क्रीड़ा करता हुआ वह मद्य पी रहा होगा । शोकसे पीड़ित हमलोगों पर सुग्रीव अब दया नहीं करता ॥७९॥ महाबल वीर, जाओ, सुग्रीवसे कहो, मेरे क्रोधका फल भी उसे बताओ ॥ ८० ॥ वह रास्ता बन्द नहीं हो गया है, जिस रास्ते मृत वालि गया है । सुग्रीव प्रतिज्ञाका पालन करो । वालिके रास्तेपर मत चलो ॥८१॥ मैंने

एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया । त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥८२॥
यदेवं विहितं कार्यं यद्धितं पुरुषर्षभ । तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः ॥८३॥
कुरुष्व सत्यं मम वानरेश्वर प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम् ।
मा वालिनं प्रेतगतो यमक्षये त्वमद्य पश्येर्मम चोदितः शरैः ॥८४॥
स पूर्वजं तीव्रविवृद्धकोपं लालप्यमानं प्रसमीक्ष्य दीनम् ।
चकार तीव्रां मतिमुग्रतेजा हरीश्वरे मानववंशवर्धनः ॥८५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥



एकत्रिंशः सर्गः ३१

स कामिनं दीनमदीनसत्त्वं शोकाभिपन्नं समुदीर्णकामम् ।
नरेन्द्रसूनुर्नरदेवपुत्रं रामानुजः पूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥
न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते न मन्यते कर्मफलानुषङ्गान् ।
न भोक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीं तथा हि नातिक्रमतेऽस्य बुद्धिः ॥ २ ॥
मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषु सक्तस्तव प्रसादात्प्रतिकारबुद्धिः ।
हतोऽग्रजं पश्यतु वीर वालिनं न राज्यमेवं विगुणस्य देयम् ॥ ३ ॥

अकेले वालिको ही बाणसे मारा है, पर प्रतिज्ञा त्याग करनेके कारण तुम्हें बन्धुओंके साथ मारूँगा ॥८२॥ पुरुषश्रेष्ठ, इस समयके लिए जो और उचित हो वह कहना और करना, शीघ्रतापूर्वक जिससे समय न बीत जाय ॥८३॥ वानरेश्वर, सनातनधर्मका विचार कर तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करो । मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर यमलोकमें वालिको मत देखो ॥८४॥ अपने बड़े भाईको अधिक कुपित देखकर दुखी और विलाप करते देखकर, सुग्रीवके प्रति उन्होंने तीव्रबुद्धि धारण की अर्थात् तीव्रतापूर्वक व्यवहार करनेका निश्चय किया ॥८५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ।



सीतावियोगसे पीड़ित, महापराक्रमी, पर उस समय दीन, सीताको देखनेके लिए व्याकुल बड़े भाई राजपुत्र रामचन्द्रसे, राजपुत्र लक्ष्मण इस प्रकार बोले ॥१॥ यह वानर सज्जनोंके मार्गपर स्थित नहीं रहेगा; क्योंकि इसका जो उपकार हम लोगोंने किया है उसको यह नहीं समझता । अतएव यह वानर राज्यलक्ष्मीका उपयोग न कर सकेगा; क्योंकि इसकी बुद्धि प्रेमपालन करनेमें समर्थ नहीं है ॥२॥ बुद्धि नष्ट होनेके कारण स्त्री-सुखमें आसक्त हो गया है । अब उपकारका बदला देनेकी इसकी बुद्धि नहीं है । अब यह भी मरे हुए अपने वीर भाई वालिको देखे । ऐसे गुणहीनको राज्य नहीं देना

न धारये कोपमुदीर्णवेगं निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु ॥ ४ ॥
तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं निवेदितार्थं रणचण्डकोपम्।
उवाच रामः परवीरहन्ता स्ववीक्षितं सानुनयं च वाक्यम् ॥ ५ ॥

नहि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत्। कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥
नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण। तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम् ॥ ७ ॥
सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्। वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये ॥ ८ ॥
सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थो यथावत्पुरुषर्षभः। प्रविवेश पुरीं वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ९ ॥
ततः शुभमतिः प्राज्ञो भ्रातुः प्रियहिते रतः। लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धो जगाम भवनं कपेः ॥१०॥
शक्रबाणासनप्रख्यं धनुः कालान्तकोपमम्। प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभं मन्दरः सानुमानिव ॥११॥
यथोक्तकारी वचनमुत्तरं चैव सोत्तरम्। बृहस्पतिसमो बुद्ध्या मत्वा रामानुजस्तदा ॥१२॥
कामक्रोधसमुत्थेन भ्रातुः क्रोधाग्निना वृतः। प्रभञ्जन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्ततः ॥१३॥
सालतालाश्वकर्णांश्च तरसा पातयन्बलात्। पर्यस्यन्गिरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगितः ॥१४॥
शिलाश्च शकलीकुर्वन्पद्भ्यां गज इवाशुगः। दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद्द्रुतम् ॥१५॥
तामपश्यद्बलाकीर्णां हरिराजमहापुरीम्। दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किन्धां गिरिसंकटे ॥१६॥

चाहिए ॥३॥ मैं अपने बढ़े हुए क्रोधको रोक नहीं सकता। असत्यवादी सुग्रीवका वध अभी करता हूँ। वालिपुत्र अंगद प्रधान वानरोंके साथ सीताको ढूँढ़े ॥४॥ धनुष बाण लेकर वेगसे जाते हुए युद्धके लिए अत्यन्त क्रोधित लक्ष्मणसे रामचन्द्र नम्रतापूर्वक स्वयं निश्चित वचन बोले ॥५॥ तुम्हारे समान मनुष्यको ऐसा पाप नहीं करना चाहिए। कोपको विवेकसे जो शान्त करता है वही वीर पुरुषोत्तम कहा जाता है ॥ ६ ॥ लक्ष्मण, साधु चरित्रवाले तुमको सुग्रीवको मारनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए। पहले जो मैत्री की है, उसका स्मरण करो ॥७॥ काल व्यतीत होनेके सम्बन्धमें कोमल वचनोंसे रुखाई दूरकर सुग्रीवसे तुम कहना ॥८॥ बड़े भाईके द्वारा यथावत् सब बातें समझकर शत्रुहन्ता वीर लक्ष्मण किष्किन्धापुरीमें गए ॥९॥ सुन्दर बुद्धिवाले, बुद्धिमान्, भाईका हित चाहनेवाले लक्ष्मण क्रोधपूर्वक सुग्रीवके घरमें गए ॥१०॥ इन्द्रके धनुषके समान यमराजसदृश धनुष लेकर लक्ष्मण, शिखरयुक्त मन्दराचल पर्वतके समान मालूम होने लगे ॥ ११ ॥ भाईकी आज्ञाके अनुसार काम करनेवाले, क्या कहना होगा, सुग्रीवका उत्तर और उसका उत्तर यह सब समझकर, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान, सुग्रीवकी असावधानतासे उत्पन्न क्रोधाग्निसे जलते हुए, अप्रसन्न लक्ष्मण वायुके समान चले ॥ १२ ॥ ॥१३॥ वेगवान् लक्ष्मण पर्वतके बड़े-बड़े पत्थर तथा अन्य वृक्षोंको इधर-उधर फेंकते हुए चले और शाल, ताल, अश्व, कर्ण आदि वृक्षोंको बलपूर्वक तोड़ते हुए चले ॥ १४ ॥ शीघ्रगामी हाथीके समान, पैरोंसे पत्थरोंको चूर करते हुए और दूर-दूरपर पैर रखते हुए, कार्यके लिए शीघ्रतापूर्वक चले ॥१५॥ सेनासे घिरी हुई वानरराजकी वह महानगरी उन्होंने देखी। उस किष्किन्धा नगरीके चारो ओर कोट

रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठः सुग्रीवं प्रति लक्ष्मणः । ददर्श वानरान्भीमान्किष्किन्धायां बहिश्चरान् ॥१७॥
तं दृष्ट्वा वानराः सर्वे लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् । शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः पर्वतान्तरे ॥१८॥
तान्गृहीतप्रहरणान्सर्वान्दृष्ट्वा तु लक्ष्मणः । बभूव द्विगुणं क्रुद्धो बह्विन्धन इवानलः ॥१९॥
तं ते भयपरीताङ्गाः क्षुब्धं दृष्ट्वा प्लवंगमाः । कालमृत्युयुगान्ताभं शतशो विद्रुता दिशः ॥२०॥
ततः सुग्रीवभवनं प्रविश्य हरिपुङ्गवाः । क्रोधमागमनं चैव लक्ष्मणस्य न्यवेदयन् ॥२१॥
तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषस्तदा । न तेषां कपिसिंहानां शुश्राव वचनं तदा ॥२२॥
ततः सचिवसंदिष्टा हरयो रोमहर्षणाः । गिरिकुञ्जरमेघाभा नगरान्निर्ययुस्तदा ॥२३॥
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे वीरा विकृतदर्शनाः । सर्वे शार्दूलदंष्ट्राश्च सर्वे विवृतदर्शनाः ॥२४॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यवर्चसः ॥२५॥
ततस्तैः कपिभिर्व्याप्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः । अपश्यल्लक्ष्मणः क्रुद्धः किष्किन्धां तां दुरासदाम् ॥२६॥
ततस्ते हरयः सर्वे प्राकारपरिखान्तरात् । निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तु तस्थुराविष्कृतं तदा ॥२७॥
सुग्रीवस्य प्रमादं च पूर्वजस्यार्थमात्मवान् । दृष्ट्वा क्रोधवशं वीरः पुनरेव जगाम सः ॥२८॥
स दीर्घोष्णमहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः । बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः ॥२९॥
बाणशल्यस्फुरज्जिह्वः सायकासनभोगवान् । स्वतेजोविषसंभूतः पञ्चास्य इव पन्नगः ॥३०॥

बना हुआ था और वह पर्वतोंके बीचमें थी ॥१६॥ सुग्रीवके प्रति क्रोधके कारण उनके होंठ फरक रहे थे। उन्होंने भयानक वानरोंको किष्किन्धा नगरीके बाहर देखा ॥१७॥ पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणको देखकर वे वानर पर्वतशिखरपर, ऊँचे वृक्षोंपर तथा पर्वतके भीतर चले गये। वे हाथीके समान विशालशरीर थे ॥१ ॥ अस्त्र धारण किए अनेक वानरोंको देखकर लक्ष्मणका क्रोध और बढ़ा, जिस प्रकार अधिक लकड़ी पानेसे आग बढ़ती है ॥१९॥ भयभीत सैकड़ों वानर क्रुद्ध प्रलयकालीन मृत्युके समान लक्ष्मणको देखकर दिशाओंमें भाग गए ॥२०॥ अनन्तर कई वानरोंने सुग्रीवके घर जाकर लक्ष्मणका आना और उनका क्रोध बतलाया ॥२१॥ कामी कपिराज सुग्रीव उस समय ताराके साथ था, अतएव उसने उन प्रधान वानरोंकी बात उस समय न सुनी ॥ २२ ॥ अनन्तर सचिवोंकी आज्ञासे पर्वत, हाथी और मेघके समान बड़े बड़े वानर प्रसन्नता-पूर्वक नगरसे बाहर निकले ॥२३॥ उन सब वानरोंके नख और दांत ही अस्त्र थे। वे देखनेमें भयंकर थे। उनकी आंखें विकृत थीं। उनके दांत बाघके समान थे ॥२४॥ कई दस हाथियोंके बलवाले, कई सौ हाथियोंके बलवाले और कई हजार हाथियोंके बलवाले वानर उनमें थे ॥२५॥ अनन्तर हाथमें पेड़ लिए हुए महाबली वानरोंसे भरी हुई उस किष्किन्धानगरीको क्रुद्ध लक्ष्मणने देखा, जिसमें प्रवेश करना कठिन है ॥२६॥ शहरकी चारदिवारी और खाईके बाहर निकलकर वे बड़े बलवान् वानर सामने खड़े होगए ॥२७॥ सुग्रीवकी अनवधानता, रामचन्द्रका कार्य देखकर बली लक्ष्मण पुनः क्रोधित हुए ॥२८॥ वे बहुत गरम और लम्बी सांस लेने लगे। क्रोधसे उनकी आंखें लाल हो गयीं। नर-श्रेष्ठ लक्ष्मण धूमयुक्त अग्निके समान मालूम पड़े ॥२९॥ लक्ष्मण बड़े मुँहवाले सर्पके समान

तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम्। समासाद्याङ्गदस्त्रासाद्विषादमगमत्परम् ॥३१॥
सोऽङ्गदं रोषताम्राक्षः संदिदेश महायशाः। सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत ॥३२॥
एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम। भ्रातुर्व्यसनसंतप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः ॥३३॥
तस्य वाक्यं यदि रुचिः क्रियतां साधु वानर। इत्युक्त्वा शीघ्रमागच्छ वत्स वाक्यमरिंदम ॥३४॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा शोकाविष्टोऽङ्गदोऽब्रवीत्। पितुः समीपमागम्य सौमित्रिरयमागतः ॥३५॥

अथाङ्गदस्तस्य सुतीव्रवाचा संभ्रान्तभावः परदीनवक्त्रः।
निर्गत्य पूर्वं नृपतेस्तरस्वी ततो रुमायाश्चरणौ ववन्दे ॥३६॥
संगृह्य पादौ पितुरुग्रतेजा जग्राह मातुः पुनरेव पादौ।
पादौ रुमायाश्च निपीडयित्वा निवेदयामास ततस्तदर्थम् ॥३७॥

स निद्राक्लान्तसंवीतो वानरो न विबुद्धवान्। बभूव मदमत्तश्च मदनेन च मोहितः ॥३८॥
ततः किलकिलां चक्रुर्लक्ष्मणं प्रेक्ष्य वानराः। प्रसादयन्तस्तं क्रुद्धं भयमोहितचेतसः ॥३९॥
ते महौघनिभं दृष्ट्वा वज्राशनिसमस्वनम्। सिंहनादं समं चक्रुर्लक्ष्मणस्य समीपतः ॥४०॥
तेन शब्देन महता प्रत्यबुध्यत वानरः। मदविह्वलताम्राक्षो व्याकुलः स्रग्विभूषणः ॥४१॥
अथाङ्गदवचः श्रुत्वा तेनैव च समागतौ। मन्त्रिणौ वानरेन्द्रस्य संमतोदारदर्शनौ ॥४२॥
प्लक्षश्चैव प्रभावश्च मन्त्रिणावर्थधर्मयोः। वक्तुमुच्चावचं प्राप्तं लक्ष्मणं तौ शशंसतुः ॥४३॥

मालूम पड़े। बाणका अग्रभाग, लपलपाती जीभके समान था और धनुष सर्पके शरीरके समान। लक्ष्मणका तेजही विषके समान था। ॥३०॥ कालाग्निके समान ज्वलित, हाथीके समान क्रोधित उनके पास जाकर अंगद भयसे बहुत दुःखी हुआ ॥३१॥ क्रोधसे लाल आंखे करके महायशस्वी लक्ष्मणने अंगदसे यह सन्देश कहा—वत्से! सुग्रीवसे मेरे आनेकी बात जाकर कह दे ॥३२॥ यह रामका छोटा भाई तुम्हारे पास आया हुआ है। भाईके दुखसे दुखी होकर तुम्हारे द्वारपर खड़ा है। यदि इच्छा हो तो उनके वचनका उत्तमतापूर्वक सत्कार कीजिए। वत्स, ऐसा कहकर शीघ्र मेरे पास लौट आओ ॥३३,३४॥ लक्ष्मणके वचन सुनकर अंगद दुःखी हुए और पिताके पास आकर बोले कि लक्ष्मण आये हैं ॥३५॥ लक्ष्मणके तीव्र वचनसे अंगद घबड़ा गया। उसका मुख म्लान हो गया उसने वेगपूर्वक पहले राजाके अनन्तर रुमाके चरणोंको प्रणाम किया ॥३६॥ उग्रतेजस्वी अंगदने पहले पिताके, पुनः माताके, चरण पकड़े। रुमाके चरण पकड़कर लक्ष्मणका सन्देश उन्होंने कहा ॥३७॥ पर सुग्रीव खूब निद्रित था, कामसे मोहित होकर मदमत्त था, इसलिए वह उठा नहीं ॥३८॥ इसके अनन्तर क्रुद्ध लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके लिए भयभीत वानरोंने उन्हें देखकर 'किलकिला' शब्द किया ॥३९॥ उन वानरोंने लक्ष्मणके पासही बड़ी धाराके समान, तथा वज्र (बिजली) गर्जनके समान सिंहगर्जन किया ॥४०॥ उस बड़े शब्दसे सुग्रीव उठा। उस समय उसकी आंखें मदसे अलसायी हुई और लाल थीं वह माला पहिने हुए था और व्याकुल था ॥४१॥ वानरके कहनेसे राजाके प्रिय, देखनेमें सुन्दर दो मंत्री भी अंगदके साथही आए थे ॥४२॥ प्लक्ष और प्रभाव उनके नाम थे, अर्थ और धर्मके वे मंत्री थे। राजाको ऊँच नीच

प्रसादयित्वा सुग्रीवं वचनैः सार्थनिश्चितैः । आसीनं पर्युपासीनौ यथा शक्रं मरुत्पतिम् ॥४४॥
सत्यसंधौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । मनुष्यभावं संप्राप्तौ राज्यार्हौ राज्यदायिनौ ॥४५॥
तयोरेको धनुष्पाणिर्द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः । यस्य भीताः प्रवेपन्तो नादान्मुञ्चन्ति वानराः ॥४६॥
स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः । व्यवसायरथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात् ॥४७॥
अयं च तनयो राजंस्ताराया दयितोऽङ्गदः । लक्ष्मणेन सकाशं ते प्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥
सोऽयं रोषपरीताक्षो द्वारि तिष्ठति वीर्यवान् । वानरान्वानरपते चक्षुषा निर्दहन्निव ॥४९॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणामं त्वं सपुत्रः सहबान्धवः । गच्छ शीघ्रं महाराज रोषो ह्यद्योपशाम्यताम् ॥५०॥
यथा हि रामो धर्मात्मा तत्कुरुष्व समाहितः । राजंस्तिष्ठ स्वसमये भव सत्यप्रतिश्रवः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥



द्वात्रिंशः सर्गः ३२

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह । लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥
स च तानब्रवीद्वाक्यं निश्चित्य गुरुलाघवम् । मन्त्रज्ञान्मन्त्रकुशलो मन्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥ २ ॥
न मे दुर्व्याहृतं किंचिन्नापि मे दुरनुष्ठितम् । लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये ॥ ३ ॥

समझाया करते थे । उन दोनोंने सुग्रीवसे लक्ष्मणके आनेकी बात कही ॥४३॥ देवराज इन्द्रके समान सुग्रीवके बैठने पर दोनों मंत्री बैठे और निश्चयार्थक वचनों द्वारा सुग्रीवको प्रसन्न कर उन लोगोंने लक्ष्मणके आनेकी बात कही ॥४४॥ महाराज राम और लक्ष्मण दोनों भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं । इन लोगोंने मनुष्य रूप धारण किया है । ये राजा होनेके योग्य हैं । इन लोगोंने तुम्हें राज्य दिया है ॥४५॥ उनमें एक लक्ष्मण धनुष लेकर द्वार पर खड़ा है, जिससे डर कर कांपते हुए वानर चीत्कार कर रहे हैं ॥४६॥ यह वही रामचन्द्रका भाई लक्ष्मण है । रामचन्द्रके वचन इसके सारथी हैं । उद्योग इसका रथ है । रामचन्द्रकी आज्ञासे यह आया है ॥४७॥ राजन्, इस ताराके प्रियपुत्र अंगदको लक्ष्मणने तुम्हारे पास शीघ्र भेजा है ॥४८॥ वह वीर जवान क्रोधपूर्ण आंखें किये द्वार पर खड़ा है । हे वानरराज, वह आंखोंसे वानरोंको मानों जला रहा है ॥४९॥ महाराज, पुत्र और बान्धवोंके साथ जाकर शीघ्र उसे प्रणाम कीजिए, जिससे उसका क्रोध शान्त हो ॥५०॥ जिस उपायसे धर्मात्मा रामचन्द्र प्रसन्न हों वही करो । राजन् प्रतिज्ञाका पालन करो और सत्यप्रतिज्ञ होओ ॥५१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ।



मंत्रियोंके साथ अंगदके वचन सुनकर और लक्ष्मणके क्रोधकी बात जानकर धीर सुग्रीवने आसनत्याग किया ॥१॥ उचित अनुचितका विचार कर मंत्रोंके ज्ञाता और मंत्रके प्रयोगमें निपुण सुग्रीव, मंत्र जाननेवाले मन्त्रियोंसे बोले ॥२॥ मैंने कोई बुरी बात नहीं कही, कोई बुरा काम नहीं किया ।

अस्तुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमन्तरदर्शिभिः । मम दोषानसंभूताञ्श्रावितो राघवानुजः ॥ ४ ॥
अत्र तावद्यथाबुद्धिः सर्वैरेव यथाविधि । भावस्य निश्चयस्तावद्विज्ञेयो निपुणं शनैः ॥ ५ ॥
न खल्वस्ति मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात् । मित्रं त्वस्थानकुपितं जनयत्येव संभ्रमम् ॥ ६ ॥
सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम् । अनित्यत्वात्तु चित्तानां प्रीतिरल्पेऽपि भिद्यते ॥ ७ ॥
अतो निमित्तं त्रस्तोऽहं रामेण तु महात्मना । यन्ममोपकृतं शक्यं प्रतिकर्तुं न तन्मया ॥ ८ ॥
सुग्रीवेणैवमुक्ते तु हनुमान्हरिपुंगवः । उवाच स्वेन तर्केण मध्ये वानरमन्त्रिणाम् ॥ ९ ॥
सर्वथा नैतदाश्चर्यं यत्त्वं हरिगणेश्वर । न विस्मरस्यविस्रब्धमुपकारं कृतं शुभम् ॥१०॥
राघवेण तु वीरेण भयमुत्सृज्य दूरतः । त्वत्प्रियार्थं हतो वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ॥११॥
सर्वथा प्रणयात्क्रुद्धो राघवो नात्र संशयः । भ्रातरं संप्रहितवाँल्लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१२॥
त्वं प्रमत्तो न जानीषे कालं कालविदां वर । फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छुभा ॥१३॥
निर्मलग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रनष्टबलाहका । प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च ॥१४॥
प्राप्तमुद्योगकालं तु नावैषि हरिपुंगव । त्वं प्रमत्त इति व्यक्तं लक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥१५॥
आर्तस्य हृतदारस्य परुषं पुरुषान्तरात् । वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः ॥१६॥

रामचन्द्रके भाई लक्ष्मण क्यों मुझ पर क्रुद्ध है, यही मैं सोच रहा हूँ ॥३॥ मेरे शत्रुओंने, मेरे अपकारियोंने, सदा मेरी त्रुटियां देखकर मेरे दोष लक्ष्मण को सुनाए हैं। 'इस विषयमें आप सब लोगोंको मेरे जानेसे पहले अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार विधिपूर्वक लक्ष्मणके भावका निश्चय करना चाहिए। चेष्टाओंके द्वारा यह जानना चाहिए कि वे क्या चाहते हैं, और क्यों कुपित हैं ॥४,५॥ रामचन्द्रसे या लक्ष्मणसे मुझे कोई भय नहीं; पर विना कारण मित्रका कुपित हो जाना घबड़ाहट पैदा करता है ॥६॥ मित्र बनाना सरल है, उसका निबाहना कठिन है; क्योंकि चित्तका कोई ठिकाना नहीं। थोड़े कारण पर भी वह प्रीति टूट जाती है ॥७॥ इसीलिए मैं डर रहा हूँ। महात्मा रामचन्द्रने जो मेरा उपकार किया है उसका बदला देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥८॥ सुग्रीवके ऐसा कहने पर वानरश्रेष्ठ हनुमान अपनी युक्तिसे वानरोंके बीचमें बोले ॥९॥ हे वानरेश्वर, आप विश्वस्त होकर किए हुए उपकारोंको नहीं भूलते, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह महात्माओंका स्वभाव है ॥१०॥ रामचन्द्रने भय दूर हटा कर तुम्हारा प्रिय करनेके लिए इन्द्रके समान पराक्रमी वालिको मारा है ॥११॥ सर्वथा स्नेहके कारणही रामचन्द्रने तुमपर क्रोध किया है और अपने भाई, लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मणको तुम्हारे पास भेजा है ॥१२॥ हे कालज्ञोंमें श्रेष्ठ, असावधानीके कारण रामचन्द्रसे किए हुए काल-निश्चयको तुम भूल गए। सप्तच्छद और तमाल जब विकसित होते हैं, वह निर्मल शरद्‌ऋतु आगयी ॥१३॥ आकाशमें ग्रह और नक्षत्र निर्मल हो गए। बादल चले गये, दिशाएं तालाब नदियां प्रसन्न हो गयीं ॥ १४ ॥ वानरराज, यह उद्योग करनेका समय है और तुम्हें कुछ मालूम नहीं। तुम असावधान हो, इसीलिए लक्ष्मण यहां आए ॥१५॥ रामचन्द्र दुखी हैं। उनकी स्त्री हरी गयी है, अतएव महात्मा रामचन्द्रके कठोर वचन जो

कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम् । अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥१७॥
नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम् । इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ॥१८॥
अभिक्रुद्धः समर्थो हि चापमुद्यम्य राघवः । सदेवासुरगन्धर्वं वशे स्थापयितुं जगत् ॥१९॥
न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत् । पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥२०॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः ससुहृज्जनः । राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे ॥२१॥

न रामरामानुजशासनं त्वया कपीन्द्र युक्तं मनसाप्यपोहितुम् ।
मनो हि ते ज्ञास्यति मानुषं बलं सराघवस्यास्य सुरेन्द्रवर्चसः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा । प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥१॥
द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः । बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ २ ॥
निःश्वसन्तं तु तं दृष्ट्वा क्रुद्धं दशरथात्मजम् । बभूवुर्हरयस्त्रस्ता न चैनं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥
स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान्पुष्पितकाननाम् । रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥ ४ ॥

दूसरे पुरुषके द्वारा कहे जाय तुम्हें सहना चाहिए ॥१६॥ तुमने अपराध किया है । अतएव तुम्हारे लिए हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करनेके अतिरिक्त दूसरा उपाय मैं नहीं देखता ॥१७॥ पूछे जाने पर मंत्रियोंको राजाके हितकी बात कहनी चाहिए, अतएव मैं भय छोड़कर निश्चित बात कहता हूँ ॥१८॥ क्रोध करके यदि रामचन्द्र धनुष उठावें तो देवता असुर गंधर्वके सहित इस समस्त जगतको वशमें कर सकते हैं ॥१९॥ उसको क्रोधित नहीं होने देना चाहिए जिसको पुनः प्रसन्न करना हो । तुम कृतज्ञ हो, उनके पूर्व उपकारोंको स्मरण कर तुम्हें उनका प्रसादन करनाही पड़ेगा ॥२०॥ पुत्र और मित्रोंके साथ सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर अपनी प्रतिज्ञा पर रहो और स्त्री जैसे पतिके अधीन रहती है, वैसेही उनके अधीन रहो ॥२१॥ हे सुग्रीव, राम और लक्ष्मणकी आज्ञाका तिरस्कार तुम्हें मनसे भी नहीं करना चाहिए । इन्द्रके समान पराक्रमी राम और लक्ष्मणके मानवीय बलको तुम्हारा मन जानताही है ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ।

अनन्तर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने सुग्रीवके सन्देश पाने पर रामचन्द्रकी आज्ञासे किष्किन्धा नगरीमें प्रवेश किया ॥१॥ महाबली विशालकाय वानर जो द्वार पर थे वे सब लक्ष्मणको देखकर हाथ जोड़ कर खड़े हुए ॥२॥ दशरथपुत्र लक्ष्मण क्रुद्ध हैं, सांस छोड़ रहे हैं—यह देखकर बहुतसे वानर डर गये और इनके साथ साथ नहीं गए ॥३॥ लक्ष्मणने उस रमणीय बड़ी गुफाको देखा जो रत्नोंसे भरी थी,

हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नोपशोभिताम् । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ५ ॥
देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः । दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥
चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम् । मैरेयाणां मधूनां च संमोदितमहापथाम् ॥ ७ ॥
विन्ध्यमेरुगिरिप्रख्यैः प्रासादैर्नैकभूमिभिः । ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः ॥ ८ ॥
अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च । गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥ ९ ॥
विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः । वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा । दधिवक्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥ ११ ॥
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् । ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥ १२ ॥
पाण्डुराभ्रप्रकाशानि गन्धमाल्ययुतानि च । प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च ॥ १३ ॥
पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् । वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥ १४ ॥
शुक्लैः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥
महेन्द्रदत्तैः श्रीमद्भिर्नीलजीमूतसंनिभैः । दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैः शीतच्छायैर्मनोरमैः ॥ १६ ॥
हरिभिः संवृतद्वारं बलिभिः शस्त्रपाणिभिः । दिव्यमाल्यावृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥ १७ ॥
सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः । अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥ १८ ॥

अलौकिक थी, जिसके वनमें खूब फूल लगे हुए थे ॥४॥ हर्म्य (धनियोंकी अटारी), प्रासादों (राजाओं और देवताओंकी अटारी) से सघन, विविध रत्नोंसे शोभित सदा फूलने और फलनेवाले वृक्षोंसे वह नगरी शोभित थी ॥५॥ दिव्य माला और वस्त्र धारण करनेवाले सुन्दर देवताओं, गंधर्वपुत्रों और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंसे वह नगरी शोभित थी ॥६॥ चन्दन, अगरु और कमलकी गन्ध से वह गुहा सुगन्धित हो रही थी । मैरेय और मधु (मद्यविशेष) से वहांके चौड़े रास्ते आमोदित थे ॥७॥ कई खण्डवाले, विंध्याचल और मेरु पर्वतके समान वहां राजाके महल थे । लक्ष्मणने निर्मल जलवाली पर्वतकी नदियां देखीं ॥८॥ अंगदका सुन्दर घर तथा मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल, कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्र, नील, सुपाटल, सुनेत्र इन प्रधान वानरोंके गृह राजमार्ग पर लक्ष्मणने देखे । ये मकान बड़े पुष्ट थे ॥९,१०,११,१२॥ श्वेतमेघके समान उज्ज्वल सुगन्धित मालाओंसे युक्त, प्रभूतधन-धान्यपूर्ण, स्त्रियों और रत्नोंसे शोभित वे घर लक्ष्मणने देखे ॥१३॥ श्वेत पर्वतसे घिरा हुआ, जानेमें कठिन वानरराजका रमणीय घर लक्ष्मणने देखा । यह इन्द्रके घरके समान था ॥१४॥ कैलाशशिखरके समान श्वेत शिखरोंसे वह गृह सुशोभित था । सब कालमें फूलने और फलनेवाले वृक्षोंसे युक्त था ॥१५॥ महेन्द्रके दिए हुए, सुन्दर नीलमेघके सदृश, मनोरम, शीतल छायावाले दिव्य पुष्पफलवाले वृक्षोंसे वह गृह सुशोभित था ॥१६॥ अस्त्र हाथमें लेकर बली वानर उसके द्वार पर पहरा दे रहे थे । दिव्य मालाएँ लटकायीं गयीं थी । सोनेका तोरण बना हुआ था ॥१७॥ ऐसे सुन्दर सुग्रीवके घरमें महाबलवान लक्ष्मणने प्रवेश किया । बड़े मेघखण्डमें जिस प्रकार सूर्य प्रवेश करता है, उसी प्रकार बिना रुकावटके लक्ष्मणने

स सप्तकक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः । ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥१९॥
हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्र समावृतम् ॥२०॥
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् । तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥२१॥
बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः । स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥२२॥
दृष्ट्वाभिजनसंपन्नास्तत्र माल्यकृतस्रजः । वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः ॥२३॥
नातृप्तान्नाति चाव्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् । सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥२४॥
कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा । स निशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥२५॥
रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् । चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२६॥
चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः । तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामकोपसमन्वितः ॥२७॥
तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः । विज्ञायागमनं त्रस्तः स चचाल वरासनात् ॥२८॥
अङ्गदेन यथा मह्यं पुरस्तात्प्रतिवेदितम् । सुव्यक्तमेष संप्राप्तः सौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥२९॥
अङ्गदेन समाख्यातो ज्यास्वनेन च वानरः । बुबुधे लक्ष्मणं प्राप्तं मुखं चास्योपशुष्यत ॥३०॥
ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् । उवाच हितमव्यग्रस्त्राससंभ्रान्तमानसः ॥३१॥
किं नु रुट्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः । सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः ॥३२॥

प्रवेश किया ॥१८॥ धर्मात्मा लक्ष्मणने सात खण्ड जाकर जिनमें सवारी और आसन आदि रखे हुए थे, बहुतही गुप्त और विशाल अन्तःपुर देखा ॥१९॥ सोने और चांदियोंके पलंग, अनेक बहुमूल्य आसन, दामी बिछौने लक्ष्मणने वहाँ देखे ॥२०॥ प्रवेश करतेही लक्ष्मणने सितारके गानेसे युक्त ताल आदिके सहित मधुर शब्द सुना ॥२१॥ अनेक प्रकारकी रूप-यौवनगर्वित बहुतसी स्त्रियोंको महाबली लक्ष्मणने सुग्रीवके भवनमें देखा ॥२२॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न पुष्पोंकी माला धारण की हुई, उत्तम भूषणोंसे युक्त और उत्तम पुष्प पानेके लिए व्यग्र स्त्रियोंको देखकर लक्ष्मणने सुग्रीवके अनुचरोंको भी देखा जो न अतृप्त थे, न अव्यग्र थे और न साधारण वस्त्र आदि ही धारण किए हुए थे ॥२३,२४॥ नूपुर, और करधनीका शब्द सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित हुए॥२५॥ रोषके वेगसे प्रकुपित लक्ष्मणने भूषणोंके शब्द सुनकर धनुषका टंकार किया, जिससे दिशाएं गूंज गयीं ॥२६॥ चरित्रके कारण, अर्थात् स्त्रियोंके दलमें जाना उचित नहीं यह समझनेके कारण, लक्ष्मण रुक गए और रामचन्द्रके क्रोधसे युक्त वे एकान्त स्थान देखकर वहीं बैठ गए ॥२७॥ धनुषके उस शब्दसे वानरराज सुग्रीवने लक्ष्मणका आना जाना और डर कर राजासनसे उठ गया ॥२८॥ अंगदने पहले मुझसे जैसा कहा था, अवश्यही भ्रातृ-प्रेमी वह लक्ष्मण आगया ॥२९॥ अंगदके कहनेसे और धनुषके शब्दसे सुग्रीवको लक्ष्मणका आना मालूम हुआ और उसका मुँह सूख गया ॥३०॥ अनन्तर वानरराज सुग्रीव प्रिय-दर्शना तारासे बोला, भयसे उसका मन व्याकुल हो गया था। वह सावधान होकर हितकारी वचन बोला ॥३१॥ सुभ्रू, क्रोधका क्या कारण होगा। इनका तो स्वभावहीसे चित्त कोमल है। ये लक्ष्मण क्रोध करके आये हुएके समान मालूम

किं पश्यसि कुमारस्य रोषस्थानमनिन्दिते । न खल्वकारणे कोपमाहरेन्नरपुङ्गवः ॥३३॥
यद्यस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किंचिदप्रियम् । तद्बुद्ध्या संप्रधार्याशु क्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥३४॥
अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि । वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि ॥३५॥
त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति । नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ॥३६॥
त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् । ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥३७॥

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा ।
सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥३८॥
स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा ।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥३९॥
सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः ।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम् ॥४०॥
किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे ।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दवाग्निमासीदति निर्विशङ्कः ॥४१॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितः । भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥
किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः । भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैनमवबुध्यसे ॥४३॥

पड़ते हैं ॥३२॥ हे अनिन्दिते, कुमार लक्ष्मणके क्रोधका क्या कारण हो सकता है और बिना कारण ये नर-श्रेष्ठ क्रोध भी नहीं कर सकते ॥३३॥ यदि तुम समझती हो कि हम लोगोंने इनका कोई अपराध किया है तो समझबूझ कर विचार कर शीघ्र कहो ॥३४॥ अथवा भामिनी, तुम स्वयं लक्ष्मणके पास जाओ और कोमल वचनोंके द्वारा उन्हें प्रसन्न करो ॥३५॥ तुम्हारे सामने जाने पर, विशुद्धात्मा लक्ष्मण क्रोध नहीं करेंगे क्योंकि स्त्रियों पर महात्मा क्रोध नहीं करते ॥३६॥ कोमल वचनोंके द्वारा तुम्हारे क्षमा करा देने पर और उनके प्रसन्न हो जाने पर, कमलपत्राक्षि, लक्ष्मणको मैं देखूँगा ॥३७॥ तारा लक्ष्मणके समीप गयी, उसकी करधनीके सोनेके सूत लटक गए थे। नशाके कारण आंखें घूम रही थीं। उसके सुन्दर लक्षण थे और शरीर नम्र था। वानरराजकी स्त्री ताराको देखतेही महात्मा लक्ष्मण उदासीन होनेके कारण मुँह नीचा करके बैठे। स्त्रीके पास होनेके कारण उनका क्रोध जाता रहा ॥३९॥ मद्य पीनेके कारण और राजपुत्र लक्ष्मणके प्रसन्नतासे देखनेके कारण उसकी लज्जा छूट गयी थी। वह तारा स्नेह-युक्त शान्त करनेके योग्य अर्थवान् वचन बोली ॥४०॥ राजपुत्र, क्रोधका कारण क्या है? कौन तुम्हारी आज्ञाका पालन नहीं करता? कौन सूखे वृक्षोंवाले वनमें दावाग्नि लगाकर निर्विशंक होकर रहता है? ॥४१॥ ताराके शान्तपूर्ण और शंकारहित वचन सुनकर लक्ष्मण स्नेहके द्वारा निश्चित अर्थ-वाले वचन बोले ॥४२॥ पतिका हित साधन करनेवाली तारा, तुम्हारा पति काममें आसक्त हो गया है, उसने धर्म और अर्थका त्यागकर दिया है। अतएव उसे क्यों नहीं समझाती ॥४३॥ वह अपने राज्यको

न चिन्तयति राज्यार्थं सोऽस्माञ्शोकपरायणान्। सामान्यपरिषत्चारे काममेवोपसेवते ॥४४॥
स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः। व्यतीतांस्तान्मदोदग्रो विहरन्नावबुध्यते ॥४५॥
नहि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते। पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते ॥४६॥
धर्मलोपो महांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः। अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान् ॥४७॥
मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम्। तद्द्वयं तु परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम् ॥४८॥
तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम्। तत्कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे त्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥४९॥

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम्।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः ॥५०॥
न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चापि कोपः स्वजने विधेयः।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम् ॥५१॥
कोपं कथं नाम गुणप्रकृष्टः कुमार कुर्यादपकृष्टसत्त्वे।
कस्त्वद्विधः कोपवशं हि गच्छेत्सत्त्वावरुद्धस्तपसः प्रसूतिः ॥५२॥
जानामि कोपं हरिवीरबन्धोर्जानामि कार्यस्य च कालसङ्गम्।
जानामि कार्यं त्वयि यत्कृतं नस्तच्चापि जानामि यदत्र कार्यम् ॥५३॥

स्थिर करनेके लिए शोकपीड़ित हम लोगों के लिए कुछ भी विचार नहीं करता। उसके सचिव और उसकी सभा भी हम लोगोंको स्मरण नहीं करती। हे तारा, क्योंकि वह केवल काममेंही आसक्त है ॥४४॥ वानरराज सुग्रीवने चार महीनेकी अवधि दी थी। वे चार महीने बीत गये। मदमत्त वानरराज विहार कर रहा है, कुछ समझता ही नहीं ॥४५॥ धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिए मद्यपान प्रशंसित नहीं है। मद्यपानसे अर्थ काम और धर्मका नाश होता है ॥४६॥ किए उपकारको यदि बदला न दिया जाय तो इससे धर्मका लोप होता है और गुणवान् मित्रके नाश होनेसे बहुत बड़ी अर्थकी हानि होती है ॥४७॥ मित्रके दो गुण हैं, एक तो मित्रके कार्योंको छलहीन होकर करना, दूसरा सत्य धर्म परायण होना। तुम्हारे पतिने ये दोनों गुण छोड़ दिये और धर्म भी उसने छोड़ दिया ॥ ४८ ॥ सुग्रीवने जो किया है, वह मैंने तुमसे बतलाया। अब आगेका कार्य हम लोगोंको करना है। वह कार्य कैसे उत्तम होगा, यह तुम बतलाओ, क्योंकि तुम कार्यतत्वोंको जाननेवाली हो ॥४९॥ धर्म, अर्थके निश्चयसे युक्त, मधुर स्वभावके बोधक लक्ष्मणके वचन सुनकर तारा रामचन्द्रके ज्ञातकार्यके विषयमें विश्वासपूर्वक पुनः बोली ॥५०॥ राजपुत्र, यह क्रोध करनेका समय नहीं है। अपने लोगोंपर क्रोध किया भी नहीं जाता। तुम्हारे कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले सुग्रीवका अपराध भी तुम्हें क्षमा करना चाहिये ॥५१॥ कुमार, ऊंचे गुण-वाले, हीन बलवालोंपर क्यों क्रोध करेंगे ? तुम्हारे समान मनुष्य कैसे क्रोध कर सकता है, क्योंकि विशुद्ध सत्वमय पुरुष उत्तम विचारोंके उत्पादक हैं। रामचन्द्रके कोपका कारण मैं जानती हूँ, उनके कार्यमें जो विलम्ब हुआ है, वह भी जानती हूँ। हमलोगोंका जो कार्य तुम्हारे अधीन था और जिसे तुमने किया है, वह भी जानती हूँ और इस विषयमें जो हमलोगोंका कर्तव्य है वह भी जानती हूँ ॥५३,

तत्रापि जानामि तथाविषह्यं बलं नरश्रेष्ठ शरीरजस्य ।
जानामि यस्मिंश्च जनेऽवबद्धं कामेन सुग्रीवमसक्तमद्य ॥५४॥
न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः ।
न देशकालौ हि यथार्थधर्माववेक्षते कामरतिर्मनुष्यः ॥५५॥
तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम् ।
क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥५६॥
महर्षयो धर्मतपोभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः ।
अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं सा वानरी लक्ष्मणमप्रमेयम् ।
पुनः सखेदं मदविह्वलाक्षी भर्तुर्हितं वाक्यमिदं बभाषे ॥५८॥
उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम । कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥५९॥
आगता हि महावीर्या हरयः कामरूपिणः । कोटीः शतसहस्राणि नानानगनिवासिनः ॥६०॥
तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया । अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥६१॥
तारया चाप्यनुज्ञातस्त्वरया वापि चोदितः । प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिंदमः ॥६२॥

५३॥ हे नरश्रेष्ठ, शरीरोत्पन्न कामदेवका बल भी मैं जानती हूँ । जिसमें कामके कारण सुग्रीव आसक्त हुआ है वह भी जानती हूँ और आज सुग्रीव आसक्तिरहित हो गया है यह भी जानती हूँ ॥५४॥ आपने क्रोध किया है, इससे मालूम होता है कि आपको कामशास्त्रका ज्ञान नहीं है । कामासक्त मनुष्य जिस प्रकार देशकालका विचार नहीं करता, उसी प्रकार अर्थ धर्मका भी विचार नहीं करता ॥५५॥ अतएव कामासक्त और मेरे समीप वर्तमान कामके आवेशसे त्यक्तलज्ज अपने भाई वानरराजको तुम क्षमा करो ॥५६॥ धर्म और तपस्यासे जो शोभित होते हैं, जिन्होंने मोहको दूर हटा दिया है, वे महर्षि भी विषयाभिलाषी होते हैं ! यह राजा तो वानर है, स्वभावहीसे चंचल है । यह सुखोंमें आसक्त हो गया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ॥५७॥ वह वानरी अतुलनीय लक्ष्मणसे अर्थयुक्त यह वचन कहकर नशासे आँखें घुमाती हुई पतिके कल्याणके लिए दुःखपूर्वक पुनः बोली ॥५८॥ नरोत्तम, कामके अधीन होनेपर भी तुम्हारे कार्यसाधनके लिए सुग्रीवने उद्योग करनेकी आज्ञा बहुत पहले दे रखी है ॥५९॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाबली सैकड़ों, हजारों, करोड़ों वानर भिन्न-भिन्न पर्वतोंके रहनेवाले आए हैं ॥६०॥ महाबाहो, आप आइए, मित्रको समझाना चाहिए, इस मर्यादाकी आपने रक्षा की है, अथवा किसीके घरमें जाकर स्त्रियोंको देखना अनुचित है, इस कारण बाहर ही रहकर आपने मर्यादाका पालन किया है, मित्रभावसे सज्जनोंका परस्त्रीका देखना दोष नहीं समझा जाता, अतएव आप आइए ॥६१॥ ताराकी आज्ञा पानेपर और शीघ्रतापूर्वक उसके द्वारा प्रेरित होनेपर महाबाहु लक्ष्मण भीतर गए ॥६२॥ सोनेके उत्तम आसनपर जिसपर दामी बिछौने बिछे थे, सूर्यके समान सुग्रीवको बैठा,

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने । महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसंनिभम् ॥६३॥
दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम् । दिव्यमाल्याम्वरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम् ॥६४॥
दिव्याभरणमालाभिः प्रमदाभिः समन्ततः । संरब्धतररक्ताक्षो बभूवान्तकसंनिभः ॥६५॥
रुमां तु वीरः परिरभ्य गाढं वरासनस्थो वरहेमवर्णः ।
ददर्श सौमित्रिमदीनसत्त्वं विशालनेत्रः स विशालनेत्रम् ॥६६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥



चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् । सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥
क्रुद्धं निःश्वसमानं तं प्रदीप्तमिव तेजसा । भ्रातुर्व्यसनसंतप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम् ॥ २ ॥
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम् । महान्महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इव ध्वजः ॥ ३ ॥
उत्पतन्तमनूत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः । सुग्रीवं गगने पूर्णं चन्द्रं तारागणा इव ॥ ४ ॥
संरक्तनयनः श्रीमान्संचचार कृताञ्जलिः । बभूवावस्थितस्तत्र कल्पवृक्षो महानिव ॥ ५ ॥
रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ६ ॥
सत्त्वाभिजनसंपन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ७ ॥
यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम् । मिथ्या प्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥

लक्ष्मणने देखा ॥६३॥ दिव्य आभरणोंसे उसका शरीर चित्रित होरहा था । उसका दिव्य रूप बन गया था । इन्द्रके समान दुर्जय, यशस्वी सुग्रीव दिव्यमाल्य और वस्त्र धारण किए हुए था ॥६४॥ दिव्य आभरण और माला धारण करनेवाली स्त्रियोंसे वेष्टित सुग्रीवको यमराजके समान क्रोधित और रक्ताक्ष लक्ष्मणने देखा ॥६५॥ उत्तम सुवर्णके समान वर्णवाले, उत्तम आसनपर बैठे हुए अपनी स्त्री रुमाको आलिंगन किए हुए विशालनेत्र सुग्रीवने विशालनेत्र वली लक्ष्मणको देखा ॥६६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तैंतीसवां सर्ग समाप्त ।



विना रोक टोकके आए हुए क्रुद्ध लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव बहुतही दुःखी हुआ । उसकी सब इन्द्रियां व्यथित हुईं ॥१॥ क्रुद्ध निश्वास छोड़ते हुए, तेजसे जलते हुए, भाईके दुःखसे दुखी लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव सुवर्णका आसन छोड़कर इन्द्रकी ध्वजाके समान उठा ॥२॥३॥ उसके उठनेपर रुमा आदि स्त्रियां भी उठीं, जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रके उदित होनेपर ताराएं उदित होती हैं ॥४॥ श्रीमान् लक्ष्मण आँखें लाल किए इधर-उधर टहलने लगे । बहुत बड़े वृक्षके समान हाथ जोड़कर सुग्रीव वहीं खड़े हुए ॥५॥ तारायुक्त चन्द्रमाके समान, स्त्रियोंके बीचमें रुमाके साथ खड़े हुए सुग्रीवसे कुपित लक्ष्मण बोले, ॥६॥ बलवान् और कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजा लोकमें यश पाता है ॥७॥ जो राजा अधर्ममें स्थित है, उपकारी मित्रोंसे झूठी प्रतिज्ञाएँ करता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन है ॥८॥

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते । आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ९ ॥
पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः । कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥१०॥
गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः । दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तन्निबोध प्लवंगम ॥११॥
गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्ति निष्कृतिः॥१२॥
अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर । पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि यत् ॥१३॥
ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर । सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता ॥१४॥
स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः । न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम् ॥१५॥
महाभागेन रामेण पापः करुणवेदिना । हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना॥१६॥
कृतं चेन्नातिजानीषे राघवस्य महात्मनः । सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम् ॥१७॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः । समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगा ॥१८॥
न नूनमिक्ष्वाकुवरस्य कार्मुकाच्छरांश्च तान्पश्यसि वज्रसंनिभान् ।
ततः सुखं नाम विषेवसे सुखी न रामकार्यं मनसाप्यवेक्ष्यसे ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥



घोड़ेके विषयमें झूठ बोलनेसे सौ घोड़े मारनेका पाप होता है । गौके संबन्धमें झूठ बोलनेसे हजार गौ मारनेका पाप होता है और पुरुषके सम्बन्धमें झूठ बोलनेसे मनुष्य अपना और स्वजनोंका नाश करता है ॥९॥ हे वानरराज, जो मित्रसे पहले अपना मनोरथसिद्ध करा ले और पुनः उसका बदला न चुकावे वह कृतघ्न है और सब प्राणियोंसे वध्य है ॥१०॥ सबके द्वारा पूजित ब्रह्माने यह बात कही है । तुम्हारी कृतघ्नता देखकर क्रोध करके रामचन्द्रने जो कहा है वह भी सुनो ॥११॥ गोघाती, मद्यपायी, चोर और भग्नव्रत इनका प्रायश्चित सज्जनोंने बतलाया है, पर कृतघ्नोंका प्रायश्चित नहीं होता ॥१२॥ तुम अनार्य हो, कृतघ्न हो, मिथ्यावादी हो, तुमने पहले रामचन्द्रसे अपना काम करवा लिया, और अब उसका बदला नहीं देते ॥१३॥ अतएव हे वानर, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया है, तुम्हें रामचन्द्रके लिए सीताके ढूँढ़नेका यत्न करना चाहिए, उनके पहले किए उपकारोंका स्मरण करके, पर तुम प्रतिज्ञाको असत्यकर स्त्री-संगमें लिप्त हो गए । तुम मेढ़ककी बोली बोलनेवाले साँप हो, यह बात रामचन्द्रजी नहीं जानते ॥१४,१५॥ महाभाग, दयालु महात्मा रामचन्द्रने दुरात्मा और पापी तुमको वानरोंका राज्य दिया है ॥१६॥ यदि महात्मा रामचन्द्रके उपकारोंको तुम न समझोगे तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥१७॥ वह रास्ता रुक नहीं गया है, जिससे मारा हुआ वालि गया है । सुग्रीव, प्रतिज्ञाका पालन करो । वालिके रास्ते न जाओ ॥१८॥ तुम रामचन्द्रका काम मनसे भी नहीं सोचते, अतएव रामचन्द्रके धनुषके निकले वज्रके समान बाणोंको देखोगे और सुख न पाओगे ॥१९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ।



पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा । अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना ॥ १ ॥
नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति । हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद्विशेषतः ॥ २ ॥
नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः । नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः ॥ ३ ॥
उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः । रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे ॥ ४ ॥
रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम् । प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परंतप ॥ ५ ॥
सुदुःखशयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम् । प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः ॥ ६ ॥
घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मण । अहो मन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ७ ॥
स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः । विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्जनः ॥ ८ ॥
देहधर्मगतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण । अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति ॥ ९ ॥
न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण । निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा ॥१०॥
सत्त्वयुक्ता हि पुरुषास्त्वद्विधाः पुरुषर्षभ । अविमृश्य न रोषस्य सहसा यान्ति वश्यताम् ॥११॥
प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थे समाहिता । महान्रोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम् ॥१२॥
रुमां मां चाङ्गदं राज्यं धनधान्यपशूनि च । रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥१३॥

तेजसे जलते हुए लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर, चन्द्रमुखी तारा लक्ष्मणसे बोली ॥१॥ लक्ष्मण ये वानरोंके राजा हैं । विशेषकर तुम्हारे समान महात्माके मुंहसे कठोर वचन ये नहीं सुन सकते ॥२॥ सुग्रीव अकृतज्ञ नहीं है, शठ नहीं है, क्रूर नहीं है, झूठ बोलनेवाले नहीं है और छली भी नहीं है ॥३॥ रामने जो उपकार किया है, जो युद्धमें दूसरोंके द्वारा दुष्कर है, सुग्रीव उसे भूल नहीं गया है ॥४॥ रामकी ही कृपासे, वानरराज सुग्रीवने कीर्ति, रुमाको और मुझको पाया है ॥५॥ पहले सुग्रीव दुखसे सो पाता था, अब उसने यह उत्तम सुख पाया इसीसे उसे समयका अन्त मालूम न हो सका, जिस प्रकार मुनि विश्वामित्रको ॥६॥ महामुनि विश्वामित्रने घृताची पर आसक्त होकर दशवर्षोंको एक दिन समझा था ॥७॥ कालज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि जब आए हुए कालको न जान सके तो साधारण मनुष्य कैसे कालको जान सकता है ॥८॥ दैहिक धर्मोंको धारण करनेवाले सुग्रीवने पहले बहुत कष्ट उठाया था, कामभोगसे इसकी तृप्ति नहीं हुई थी, अतएव उनका काममें आसक्त होना कोई अद्भुत बात नहीं है । इसके लिए रामचन्द्र सुग्रीवको अवश्य क्षमा करेंगे ॥९॥ हे लक्ष्मण, यथार्थ बात न जानकर, साधारण मनुष्योंके समान तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये । तुम्हारे समान पराक्रमी पुरुष बिना विचारे क्रोधके अधीन नहीं होते ॥१०,११॥ हे धर्मज्ञ, सावधान होकर सुग्रीवके लिए आपको मैं प्रसन्न करती हूँ । क्रोधसे उत्पन्न इस क्षोभका आप परित्याग करें ॥१२॥ मैं तो समझती हूँ कि रामचन्द्रके कार्यके लिए सुग्रीव, रुमाका मेरा, अंगदका, राज्य धन धान्य और पशु आदिका भी त्याग कर सकते हैं ॥१३॥ सुग्रीव उस

समानेष्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम् । शशाङ्कमिव रोहिण्या हत्वा तं राक्षसाधमम् ॥१४॥
शतकोटिसहस्राणि लङ्कायां किल रक्षसाम् । अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ॥१५॥
अहत्वा तांश्च दुर्धर्षान्राक्षसान्कामरूपिणः । अशक्यं रावणं हन्तुं येन सा मैथिली हृता ॥१६॥
ते न सक्या रणे हन्तुमसहायेन लक्ष्मण । रावणः क्रूरकर्मा च सुग्रीवेण विशेषतः ॥१७॥
एवमाख्यातवान्वाली स ह्यभिज्ञो हरीश्वरः । आगमस्तु न मे व्यक्तः श्रवात्तस्य ब्रवीम्यहम् ॥१८॥
त्वत्सहायनिमित्तं हि प्रेषिता हरिपुङ्गवाः । आनेतुं वानरान्युद्धे सुबहून्हरिपुङ्गवान् ॥१९॥
तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान्सुमहाबलान् । राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः ॥२०॥
कृता सुसंस्था सौमित्रे सुग्रीवेण पुरा यथा । अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः ॥२१॥
ऋक्षकोटिसहस्राणि गोलाङ्गूलशतानि च । अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिंदम ।
कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां दीप्ततेजसाम् ॥२२॥

तव पि मुखमिदं निरीक्ष्य कोपात्क्षतजसमे नयने निरीक्षमाणाः ।
हरिवरवनिता न यान्ति शान्तिं प्रथमभयस्य हि शङ्किताः स्म सर्वाः ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥३५॥

राक्षसाधमको मारकर चन्द्रमाके साथ रोहिणीके समान रामचन्द्रके साथ सीताको लौटा लावेंगे ॥१४॥ लंकामें सौ हजार करोड़ राक्षसोंकी संख्या है इसके ऊपर छत्तीस हजार और छत्तीस सौ और राक्षस हैं ॥१५॥ कामरूपी जीतनेमें कठिन इन राक्षसोंको बिना मारे रावणका मरना असम्भव है, जिस रावणने सीताका हरण किया है ॥१६॥ लक्ष्मण इतने राक्षसोंका मारना सहायकके बिना सम्भव नहीं है । उसमें रावण बड़ा क्रूरपराक्रमी है, अतएव विशेषकर सुग्रीवकी सहायताकी अपेक्षा है ॥१७॥ वानरराज बालिने राक्षसोंकी यह संख्या मुझे बतलायी थी, राक्षसोंकी इतनी संख्या कैसे हुई यह मुझे मालूम नहीं है । वालिसे जो मैंने सुना है वही कहा है ॥१८॥ आपकी सहायताके लिए प्रधान प्रधान अनेक वानरोंको सुग्रीवने युद्धके लिए बहुतसे वानर एकत्र करनेको भेजा है ॥१९॥ पराक्रमी और बलवान् उन वानरोंकी रामचन्द्रके कार्यके लिए सुग्रीव प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसीसे ये अभी तक बाहर नहीं निकले हैं ॥२०॥ लक्ष्मण, सुग्रीवने जैसी व्यवस्था की है उसके अनुसार वे सब महाबली वानर आज आ जायगें ॥२१॥ हजार करोड़ भालु और गोलांगुल जातिके वानर सौ करोड़ आज तुम्हारे पास जांयगे । कोपका त्याग करो । अति तेजस्वी वानर और भी कई करोड़ जांयगे ॥२२॥ क्रोधसे रुधिरके समान लाल तुम्हारे इस मुंहको देखकर वानरराजकी स्त्रियाँ शान्ति नहीं पा रही हैं, क्योंकि पहले भयसे वे शंकित हो गयी हैं ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंतीसवां सर्ग समाप्त ।

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ १ ॥
तस्मिन्प्रतिगृहीते तु वाक्ये हरिगणेश्वरः । लक्ष्मणात्सुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत् ॥ २ ॥
ततः कण्ठगतं माल्यं चित्रं बहुगुणं महत् । चिच्छेद विमदश्चासीत्सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ३ ॥
स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः संप्रहर्षयन् ॥ ४ ॥
प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् । रामप्रसादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥ ५ ॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा । तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥ ६ ॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् । सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ७ ॥
सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः । गिरिश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः ॥ ८ ॥
धनुर्विस्फारमाणस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण । सशैला कम्पिता भूमिः सहायैः किं नु तस्य वै ॥ ९ ॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ । गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम् ॥१०॥
यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा । प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥१२॥
सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर । त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥१३॥
यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम् । अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम् ॥१४॥

नम्र और धर्म युक्त, ताराके ऐसा कहने पर मृदुस्वभाव लक्ष्मणने उसका वचन ग्रहण किया अर्थात् क्रोधका त्याग किया ॥१॥ ताराकी बात मान लेनेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसे उत्पन्न भयका भींगे वस्त्रके समान त्याग किया ॥२॥ अनन्तर सुग्रीवने गलेमें पड़ी हुई अनेक सुगन्धित फूलोंसे बनी हुई सुन्दर माला तोड़ दी और वह सावधान हो गया ॥३॥ सब वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव महाबली लक्ष्मणको प्रसन्न करता हुआ नम्रवचन बोला, ॥४॥ लक्ष्मण, यह श्री कीर्ति तथा सनातन वानरराज्य पहले सभी नष्ट हो गए थे। रामचन्द्रकी कृपासे मैंने पुनः पाये हैं ॥५॥ अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध उस देवताके उपकारका थोड़ा भी बदला चुकानेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥६॥ धर्मात्मा रामचन्द्र सीताको पावेंगे, रावणका वध करेंगे, स्वयं अपने तेजसे मैं केवल सहायक रहूँगा ॥७॥ उसे सहायककी क्या आवश्यकता है, जिसने सात वृक्षोंको, पर्वत और पृथिवी को एक बाणसे भेद दिया ॥८॥ जिसके धनुषके टंकारके शब्दसे पर्वतोंके साथ पृथिवी कांप जाती है उसे सहायककी आवश्यकता है ?॥९॥ वैरी रावणको मारनेके लिए जब रामचन्द्र आगे चलने वालोंके साथ चलेंगे, उस समयमैं भी उनके पीछे पीछे जाऊंगा ॥१०॥ विश्वासके कारण अथवा स्नेहके कारण यदि इस दाससे कुछ अपराध हो गया होतो उसे आप क्षमा करें, क्योंकि दासोंसे अपराध हो ही जाते हैं ॥११॥ महात्मा सुग्रीवके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण प्रसन्न हुए और वे प्रेमपूर्वक बोले ॥१२॥ हे वानरेश्वर ! मेरे भाई नम्र तुमको नाथपाकर सर्वथा सनाथ हुए (यहां नाथका अर्थ है कार्य सिद्ध करने वाला)॥१३॥ सुग्रीव, जैसा तुम्हारा प्रताप है, जैसा तुम्हारा शुद्धमन है उससे वानरराज्यकी उत्तम लक्ष्मीका

सहायेन तु सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् । वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥१५॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः । उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥१६॥
दोषज्ञः प्रतिसामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति । वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥१७॥
सदृशश्चासि रामेण विक्रमेण बलेन च । सहायो दैवतैर्दत्तश्चिराय हरिपुंगव ॥१८॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह । सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥१९॥
यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्व सखे मम ॥२०॥

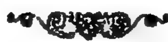
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना । हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥
महेन्द्रहिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च । मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः ॥ २ ॥
तरुणादित्यवर्णेषु भ्राजमानेषु नित्यशः । पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमस्यां तु ये दिशि ॥ ३ ॥
आदित्यभवने चैव गिरौ संध्याभ्रसंनिभे । पद्माचलवनं भीमाः संश्रिता हरिपुंगवाः ॥ ४ ॥
अञ्जनाम्बुदसंकाशाः कुञ्जरेन्द्रमहौजसः । अञ्जने पर्वते चैव ये वसन्ति प्लवंगमाः ॥ ५ ॥

तुम भोग करने योग्य हो ॥१४॥ प्रतापी रामचन्द्र तुमको सहायक पाकर युद्धमें शीघ्र ही रावणका वध करेंगे ॥१५॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ और रणसे न मुड़नेवाले आपका यह वचन सर्वथा उचित है, युक्तियुक्त है ॥१६॥ ऐसा कहनेकी शक्ति रहनेपर भी हे वानरश्रेष्ठ, मेरे बड़े भाई और आपको छोड़कर कौन विद्वान् ऐसे वचन कह सकता है ॥१७॥ विक्रम और बलसे तुम रामचन्द्रके समान हो । अतएव देवताओंने तुम्हें रामचन्द्रका सदाके लिए सहायक बनाया है ॥१८॥ वीर, अब आप शीघ्र यहांसे मेरे साथ चलें और स्त्री-हरणसे दुखी अपने मित्रको समझावें ॥१९॥ शोक-पीड़ित रामचन्द्रके वचनोंको सुनकर मैंने जो कठोर वचन आपसे कहे हैं, मित्र ! आप उन्हें क्षमा करें ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छत्तीसवां सर्ग समाप्त ।



महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहने पर पास खड़े हुए हनुमानसे सुग्रीव बोले ॥१॥ महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल, कैलाश, मन्दरके श्वेतशिखर इन पाँचों पर्वतोंपर जो वानर रहते हों, समुद्रके उसपार सूर्य्यके समान सदा चमकने वाले पर्वतों पर जो वानर रहते हों, संध्या मेघके समान रक्तवर्ण, उदयाचल और अस्ताचल पर्वतोंपर तथा पद्माचल पर्वतोंके वनमें जो भयंकर वानर रहते हों, अंजन पर्वतपर हाथीके समान पराक्रमी और कज्जल तथा मेघके समान वर्णवालेजो वानर रहते हों, मेरुके समीपके पर्वतकी बड़ी गुफाओंमें रहनेवाले, सुवर्णके रंगवाले जो वानर रहते हों, धूम्रगिरि पर जो वानर रहते हों, महारुण पर्वतपर सूर्यके समान लालरंगवाले पराक्रमी शराब पीनेवाले जो वानर हों, विशाल सुगन्धित रमणीय

महाशैलगुहावासा वानराः कनकप्रभाः । मेरुपार्श्वगताश्चैव ये च धूम्रगिरिं श्रिताः ॥ ६ ॥
तरुणादित्यवर्णाश्च पर्वते ये महारुणे । पिबन्तो मधु मैरेयं भीमवेगाः प्लवंगमाः ॥ ७ ॥
वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च । तापसाश्रमरम्येषु वनान्तेषु समन्ततः ॥ ८ ॥
तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् । सामदानादिभिः कल्पैर्वानरैर्वेगवत्तरैः ॥ ९ ॥
प्रेषिताः प्रथमं ये च मयाज्ञाता महाजवाः । त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान् ॥१०॥
ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः । इहानयस्व ताञ्शीघ्रं सर्वानेव कपीश्वरान् ॥११॥
अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया । हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः ॥१२॥
शतान्यथ सहस्राणि कोट्यश्च मम शासनात् । प्रयान्तु कपिसिंहानां निदेशे मम ये स्थिताः ॥१३॥
मेघपर्वतसंकाशाश्छादयन्त इवाम्बरम् । घोररूपाः कपिश्रेष्ठा यान्तु मच्छासनादितः ॥१४॥
ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः । आनयन्तु हरीन्सर्वांस्त्वरिताः शासनान्मम ॥१५॥
तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः । दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान् ॥१६॥
ते पदं विष्णुविक्रान्तं पतत्रिज्योतिरध्वगाः । प्रयाताः प्रहिता राज्ञा हरयस्तु क्षणेन वै ॥१७॥
ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरःसु च । वानरा वानरान्सर्वान्रामहेतोरचोदयन् ॥१८॥
मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः । सुग्रीवस्यापयुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः ॥१९॥
ततस्तेऽञ्जनसंकाशा गिरेस्तस्मान्महाबलाः । तिस्रः कोट्यः प्लवंगानां निर्ययुर्यत्र राघवः ॥२०॥

वनोंमें जो वानर रहते हों, तपस्वियोंके आश्रमसे सुन्दर वनके बीचमें जो वानर रहते हों, उन सब वानरोंको साम दाम आदि सकल उपायोंसे तुम शीघ्र ले आओ ॥२,३,४,५,६,७,८,९॥ वेगवान जो दूत पहले मैंने भेजे हैं, उन्हें मैं जानता ही हूँ। शीघ्रता करनेके लिए तुम और दूत भेजो ॥१०॥ जो वानर आनन्दोपभोगमें लगे हुए हैं, तथा जिनका स्वभाव देरसे काम करनेका है, उन सब वानरोंको तुम शीघ्र यहांले आओ ॥११॥ दस दिनके भीतर जो वानर यहाँ न आ जाय, उन पापियोंको मार डालो, क्योंकि वे राजाकी आज्ञाके उल्लंघन करनेवाले हैं ॥१२॥ मेरी आज्ञा माननेवाले जो वानरश्रेष्ठ हैं उनके सौ हजार करोड़ मेरी आज्ञासे भेजे जायं ॥१३॥ मेघ और पर्वतके समान आकाशको घेर लेनेवाले, भयानक रूपवाले वानर मेरी आज्ञासे यहांसे जांय ॥१४॥ जो वानर स्थानोंको जाननेवाले हैं वे सब उन उन स्थानोंपर जांय और मेरी आज्ञासे सब वानरोंको ले आवें ॥१५॥ वानरराज सुग्रीवकी बात सुनकर वायुपुत्र हनुमानने पराक्रमी वानरोंको सब दिशाओंमें भेजा ॥१६॥ वे सब वानर राजाके द्वारा भेजे जानेपर पक्षी और प्रकाशके मार्गमें चलनेवाले, आकाशमार्गसे चले ॥१७॥ उन वानरोंने समुद्रों, पर्वतों, वनों और तालाबोंमें रहनेवाले वानरोंको रामचन्द्रके लिए चलनेको कहा ॥१८॥ मृत्युकालके समान दण्ड देनेवाले राजश्रेष्ठ सुग्रीवकी आज्ञा सुनकर, सुग्रीवके भयसे भीत सब वानर आए ॥१९॥ अनन्तर कज्जलके समानवाले उस पर्वतसे तीन करोड़ महाबलवान वानर रामचन्द्रके पास चले ॥२०॥ जिस

अस्तं गच्छति यत्रार्कस्तस्मिन्गिरिवरे रताः । संतप्तहेमवर्णाभास्तस्मात्कोट्यो दश च्युताः ॥२१॥
कैलासशिखरेभ्यश्च सिंहकेसरवर्चसाम् । ततः कोटिसहस्राणि वानराणां समागमन् ॥२२॥
फलमूलेन जीवन्तो हिमवन्तमुपाश्रिताः । तेषां कोटिसहस्राणां सहस्रं समवर्तत ॥२३॥
अङ्गारकसमानानां भीमानां भीमकर्मणाम् । विन्ध्याद्वानरकोटीनां सहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥२४॥
क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः । नारिकेलाशनाश्चैव तेषां संख्या न विद्यते ॥२५॥
वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाबलाः । आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ॥२६॥
ये तु त्वरयितुं याता वानराः सर्ववानरान् । ते वीरा हिमवच्छैले ददृशुस्तं महाद्रुमम् ॥२७॥
तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये यज्ञो माहेश्वरः पुरा । सर्वदेवमनस्तोषो बभूव सुमनोरमः ॥२८॥
अन्ननिस्यन्दजातानि मूलानि च फलानि च । अमृतस्वादुकल्पानि ददृशुस्तत्र वानराः ॥२९॥
तदन्नसंभवं दिव्यं फलमूलं मनोहरम् । यः कश्चित्सकृदश्नाति मासं भवति तर्पितः ॥३०॥
तानि मूलानि दिव्यानि फलानि च फलाशनाः । औषधानि च दिव्यानि जगृहुर्हरिपुंगवाः ॥३१॥
तस्माच्च यज्ञायतनात्पुष्पाणि सुरभीणि च । आनिन्युर्वानरा गत्वा सुग्रीवप्रियकारणात् ॥३२॥
ते तु सर्वे हरिवराः पृथिव्यां सर्ववानरान् । संचोदयित्वा त्वरितं यूथानां जग्मुरग्रत ॥३३॥
ते तु तेन मुहूर्तेन कपयः शीघ्रचारिणः । किष्किन्धां त्वरया प्राप्ताः सुग्रीवो यत्र वानरः ॥३४॥
ते गृहीत्वौषधीः सर्वाः फलमूलं च वानराः । तं प्रतिग्राहयामासुर्वचनं चेदमब्रुवन् ॥३५॥

पर्वतपर सूर्य अस्त होता है वहाँ रहनेवाले, तपाए सोनेके रंगवाले दस करोड़ वानर आए ॥२१॥ कैलाश पर्वतसे सिंहके केसरके समान वर्णवाले हजार करोड़ वानर आए ॥२२॥ फलमूलसे जीकर जो वानर हिमवान पर्वतपर रहते हैं उन एक हजार करोड़में से एक हजार वानर आए ॥२३॥ लालरंगके भयानक कर्म करनेवाले और देखनेमें भी भयानक हजार करोड़ वानर विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र आए ॥२४॥ क्षीरसमुद्रके तीरपर, तमालवनमें रहनेवाले और नारियल खानेवाले जो वानर आए उनकी संख्या नहीं है ॥२५॥ वनोंसे, गुहाओंसे, नदियोंसे वानरोंकी जो विशाल सेना आयी वह मानो सूर्यको पीती हुई आयी । अर्थात् उसकी उड़ाई धूलसे सूर्य छिप गया ॥२६॥ जो वानर अन्य सब वानरोंको शीघ्रता करानेके लिए भेजे गए थे, उन लोगोंने हिमवान पर्वतपर एक बड़ा वृक्ष देखा ॥२७॥ उस पवित्र पर्वत पर पहले महादेवका एक यज्ञ हुआ था । उस मनोहर यज्ञसे सब देवता प्रसन्न हुए थे ॥२८॥ अन्नके रसके उत्पन्न मूल और फल, अमृतके समान स्वादिष्ट, वानरोंने वहाँ देखे ॥२९॥ अन्नसे उत्पन्न मनोहर उस दिव्य फल मूलको जो कोई खाता है, वह एक महीने तक तृप्त रहता है । एक महीने तक उसे भूख नहीं लगती ॥३०॥ फल खानेवाले वानरोंने उन दिव्य फलों और दिव्य मूलोंको लिया ॥३१॥ उस यज्ञ स्थानसे सुग्रीवको प्रसन्न करनेके लिए सुगन्धित पुष्प भी वानर ले आए ॥३२॥ वे सब वानर पृथिवीके सब वानरोंको चलनेके लिए कहकर उनके आनेके पहले ही चले आए ॥३३॥ वे वानर भी शीघ्रतापूर्वक उसी समय किष्किन्धामें सुग्रीवके पास आए ॥३४॥ ओषधियां और फल मूल उन लोगोंने सुग्रीवको

सर्वे परिस्तृताः शैलाः सरितश्च वनानि च । पृथिव्यां वानराः सर्वेशासनादुपयान्ति ते ॥३६॥
एवं श्रुत्वा ततो हृष्टः सुग्रीवः प्लवगाधिपः । प्रतिजग्राह च प्रीतस्तेषां सर्वमुपायनम् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

प्रतिगृह्य च तत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् । वानरान्सान्त्वयित्वा च सर्वानेव व्यसर्जयत् ॥ १ ॥
विसर्जयित्वा स हरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः । मेने कृतार्थमात्मानं राघवं च महाबलम् ॥ २ ॥
स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥ ३ ॥
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम् ॥ ४ ॥
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह । एवं भवतु गच्छाम स्थेयं त्वच्छासने मया ॥ ५ ॥
तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् । विसर्जयामास तदा ताराद्याश्चैव योषितः ॥ ६ ॥
एहीत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवः समुदाहरत् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरयः शीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे ये स्युः स्त्रीदर्शनक्षमाः । तानुवाच ततः प्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥
उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः । श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः ॥ ९ ॥

दिये और उनसे इसप्रकार बोले ॥३५॥ सभी पर्वतों नदियों और वनोंमें हमलोग गए, पृथिवीमें जो वानर हैं वे आपकी आज्ञासे आरहे हैं ॥३६॥ वानरेश्वर सुग्रीव उनके वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और प्रसन्नतापूर्वक उनकी दी हुई भेंटकी चीजें लीं ॥३७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ।

उनकी भेंट लेकर तथा सत्कारकर सुग्रीवने उन सब वानरोंको विदा किया ॥१॥ सुग्रीवने उन हजारों वानरोंको जिन्होंने समय समय पर बड़े काम किए हैं, विदा करके अपनेको तथा रामचन्द्रको कृतार्थ समझा ॥२॥ लक्ष्मण महाबली वानरराज सुग्रीवको प्रसन्न करते हुए उनसे विनीत वचन बोले, ॥३॥ सौम्य, यदि आप उचित समझें तो किष्किन्धासे चलें। लक्ष्मणके उत्तम प्रकारसे कहे वचनको सुनकर प्रसन्न होकर सुग्रीव बोले ॥४॥ ठीक है हमलोग चलें, मुझे तो आपकी आज्ञाका पालन करना है ॥५॥ लक्ष्मणसे ऐसा कहकर सुग्रीवने तारा आदि स्त्रियोंको विदा किया ॥६॥ 'आओ' कहकर सुग्रीवने वानरोंको बुलाया। उनके वचन सुनकर वानर शीघ्र आए ॥७॥ जो वानर रनिवासमें जा सकते थे वे हाथ जोड़कर आए। सूर्यके समान तेजवाले राजा उनसे बोले ॥८॥ वानरों, मेरी पालकी शीघ्र लाओ। सुग्रीवके वचन सुनकर शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले वानर सुन्दर पालकीले आए। लायी हुई पालकी देखकर 'लक्ष्मण, आप शीघ्र चढ़ें' ऐसा सुग्रीवने कहा। सूर्यके समान चमकीली सोनेकी पालकीपर लक्ष्मण

समुपस्थापयामासुः शिविकां प्रियदर्शनाम् । तामुपस्थापितां दृष्ट्वा शिविकां वानराधिपः ॥१०॥
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमिति सौमित्रिमब्रवीत् । इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसंनिभम् ॥११॥
बहुभिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः । पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥१२॥
शुक्लैश्च वालव्यजनैर्धूयमानैः समन्ततः । शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः ॥१३॥
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम् । स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥१४॥
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः । स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ॥१५॥
अवातरन्महातेजाः शिविकायाः सलक्ष्मणः । आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥१६॥
कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा । तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम् ॥१७॥
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् । पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ॥१८॥
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे । परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत् ॥१९॥
निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत्ततः । धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ॥२०॥
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम । हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ॥२१॥
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते । अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः ॥२२॥
त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते । उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुनिषूदन ॥२३॥
संचिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सहमन्त्रिभिः । एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत् ॥२४॥

तथा अनेक वानरोंके साथ सुग्रीव बैठे, ऊपर श्वेतछत्र लगा हुआ था ॥९,१०,११,१२॥ श्वेतचंवर चल रहे थे, शंख भेरि आदिका शब्द हो रहा था और वन्दी गुणगानकर रहे थे ॥१३॥ उत्तम राज्यकी शोभा पाकर सुग्रीव चले । सैकड़ों क्रोधी तथा शस्त्र धारण करनेवाले वानरोंके साथ सुग्रीव रामके पास चले ॥१३॥ श्रेष्ठ रामचन्द्रके रहनेके स्थान पर जाकर महातेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मणके साथ पालकीसे उतरे । रामको पाकर उन्होंने हाथ जोड़ा ॥१४,१५,१६॥ सुग्रीवके हाथ जोड़े खड़े रहनेसे वानरोंने भी हाथ जोड़े । मुकुलित कमलोंसे युक्त तालाबके समान वानरोंकी उस बड़ी सेनाको देखकर रामचन्द्र सुग्रीव पर प्रसन्न हुए । पैरोंपर सिर रखे हुए सुग्रीवको उठाकर प्रेम और आदरसे रामचन्द्रने उनका आलिंगन किया । आलिंगन करनेके पश्चात् धर्मात्मा रामचन्द्रने कहा कि बैठो ॥१७,१८,१९॥ पृथिवीमें बैठे हुए सुग्रीवको देखकर रामचन्द्र बोले—धर्म अर्थ और कामका समय पर जो अनुष्ठान करता है, हे वानरश्रेष्ठ, इनके लिए जो समयका विभाग करता है, वही राजा है । धर्म तथा अर्थका त्याग करके जो केवल कामकी सेवा करता है वह वृक्षकी शाखापर सोए हुए के समान गिरनेपर ही समझता है । जो शत्रुओंका बध करता है, मित्रोंका संग्रह करता है वही त्रिवर्गका, धर्म अर्थ कामका, फल भोगता है और धर्मसे भी युक्त होता है । हे शत्रुसूदन ! हमलोगोंके उद्योग करनेका यही समय है । अपने मंत्रियोंके साथ आप विचार करें । ऐसा कहनेपर सुग्रीव रामचन्द्रसे बोला ॥२०,२१,२२,२३,२४॥ महाबाहो, श्री कीर्ति तथा यह

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् । त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥२५॥
तव देव प्रसादाच्च भ्रातुश्च जयतां वर । कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां हि दूषकः ॥२६॥
एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन । प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान् ॥२७॥
ऋक्षाश्च वानराः शूरा गोलाङ्गूलाश्च राघव । कान्तारवनदुर्गाणामभिज्ञा घोरदर्शनाः ॥२८॥
देवगन्धर्वपुत्राश्च वानराः कामरूपिणः । स्वैःस्वैः परिवृताः सैन्यैर्वर्तन्ते पथि राघव ॥२९॥
शतैः शतसहस्रैश्च वर्तन्ते कोटिभिस्तथा । अयुतैश्चावृता वीर शङ्कुभिश्च परंतप ॥३०॥
अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्त्यैश्च वानराः । समुद्राश्च परार्धाश्च हरयो हरियूथपाः ॥३१॥
आगमिष्यन्ति ते राजन्महेन्द्रसमविक्रमाः । मेघपर्वतसंकाशा मेरुविन्ध्यकृतालयाः ॥३२॥
ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं योद्धुमाहवे । निहत्य रावणं युद्धे ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥३३॥

ततः समुद्योगमवेक्ष्य वीर्यवान्हरिप्रवीरस्य निदेशवर्तिनः ।
बभूव हर्षाद्वसुधाधिपात्मजः प्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥



सनातन वानरराज्य नष्ट हो चुके थे । आपकी कृपासे पुनः मैंने पाये ॥२५॥ आपकी दयासे और आपके भाईकी दयासे मैंने ये सब पुनः पाये । जो किए उपकारका प्रत्युपकार नहीं करता वह मनुष्योंका धर्मनाशक है ॥२६॥ हे शत्रुसूदन, ये सैकड़ों वानर पृथिवीके सभी वानरोंको लेकर आये हैं । हेरामचन्द्र, ये भालु, वानर तथा गोलांगुल बीहड़ वन तथा दुर्गके जाननेवाले हैं, ये बड़े भयानक और वीर हैं ॥२७, २८॥ रामचन्द्र, अपनी अपनी सेनाओंके साथ देवपुत्र और गंधर्वपुत्र वानर जो इच्छानुसार रूप धारण करते हैं, वे अभी रास्तेमें हैं ॥२९॥ किसीके साथ सौ वानर हैं, किसीके साथ सौ हजार, किसीके साथ करोड़, किसीके साथ दस हजार और किसीके साथ शंकु वानर है । (लाख करोड़को शंकु कहते हैं) ॥३०॥ किसीके साथ अर्बुद (हजारशंकु) किसीके शाथ सौ अर्बुद, किसीके साथ मध्य (अर्बुदका दस गुणा) किसीके साथ अन्त्य (मध्यका दसगुणा) और किसीके साथ समुद्र (अन्त्यका दसगुना) और किसी के साथ परार्द्ध (समुद्रका तीस गुणा) वानर हैं ॥३१॥ राजन्, मेरु और विंध्याचलमें रहनेवाले मेघके समान वर्णवाले, पर्वतके समान विशाल, इन्द्रके समान पराक्रमी ये वानर आवेगें ॥३२॥ वे रणमें राक्षससे युद्ध करनेके लिए तुम्हारे साथ जाँयगे । रावणको युद्धमें मारकर सीताको लायेंगे ॥३३॥ आज्ञामें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवका उद्योग देखकर राजपुत्र रामचन्द्र प्रसन्नतासे विकसित नीलकमलके समान सुन्दर दिखायी पड़े ॥३४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीयरामायणके किष्किन्धाकाण्डका अड़तीसवां सर्ग समाप्त ।



एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥१॥
यदिन्द्रो वर्षते वर्षं न तच्चित्रं भविष्यति । आदित्योऽसौ सहस्रांशुः कुर्याद्वितिमिरंनभः ॥ २ ॥
चन्द्रमा रजनीं कुर्यात्प्रभया सौम्य निर्मलाम् । त्वद्विधो वापि मित्राणां प्रीतिं कुर्यात्परंतप ॥ ३ ॥
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् । जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम् ॥ ४ ॥
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन् । त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
जहारात्मविनाशाय मैथिलीं राक्षसाधमः । वञ्चयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम् ॥ ६ ॥
न चिरात्तं वधिष्यामि रावणं निशितैः शरैः । पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवारिहा ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत । उष्णतीव्रां सहस्रांशोश्छादयद्गगने प्रभाम् ॥ ८ ॥
दिशः पर्याकुलाश्चासंस्तमसा तेन दूषिताः । चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥ ९ ॥
ततो नरेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः । कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवंगमैः ॥१०॥
निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः । कोटीशतपरीवारैर्वानरैर्हरियूथपैः ॥११॥
नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः । हरिभिर्मेघनिर्ह्रादैरन्यैश्च वनवासिभिः ॥१२॥
तरुणादित्यवर्णैश्च शशिगौरैश्च वानरैः । पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्हेमकृतालयैः ॥१३॥

सुग्रीव हाथ जोड़कर जब इस प्रकार कहरहे थे तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र उनका आलिंगन करके बोले ॥१॥ इन्द्र जो जलकी वृष्टि करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, हजार किरणोंवाले सूर्य आकाशको अन्धकारहीन बनाते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ॥२॥ हेसौम्य, चन्द्रमा अपने प्रकाशसे रात्रिको निर्मल बनादे, इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं है । इसी प्रकार तुम्हारे समान मनुष्य यदि मित्रोंको प्रसन्न करे तो इसमें भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है ॥३॥ इसी प्रकार तुम्हारे द्वारा भी जो उत्तम काम होते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । सुग्रीव, मैं तुम्हें जानता हूँ । तुम सदाप्रिय बोलने वाले हो ॥४॥ सखे, युद्धमें तुम्हारे सहायक रहने परमैं समस्त शत्रुओंको जीतलूँगा । अतएव, मेरे सहृदय मित्र, तुम्हीं मेरी सहायता करना ॥५॥ राक्षसधाम रावणने अपने नाशके लिए जानकीका हरण किया, जिस प्रकार धोखा देकर अनुल्हादने शचीका हरण किया था ॥६॥ उस रावणको तीखे बाणोंसे शीघ्र ही मारूँगा । जिस प्रकार पौलोमी (शची) के अहंकारी पिताको इन्द्रने मारा था ॥७॥ इसी समय धूल उड़ी, जिसने सूर्यकी प्रखर किरणको आकाशमें ढांप लिया ॥८॥ दिशाएं अन्धकारमय हो गयीं। पृथिवी पर्वत और वनके साथ कांपने लगी ॥९॥ अनन्तर पर्वतके समान ऊंचे, तीखे दांतोंवाले, महाबली असंख्य वानरोंसे पृथिवी ढँक गयी ॥१०॥ एक ही मुहूर्तमें उन सेनापतियोंसे तथा सौसौ करोड़ सैनिकोंके सेनापतियोंसे वह भूमि भर गयी ॥११॥ नदी पर्वत समुद्रमें रहनेवाले, मेघके समान बोलनेवाले वानरों, तथा बनमें रहनेवाले वानरोंसे वहांकी भूमि भर गयी ॥१२ सूर्यके समान उज्ज्वल, चन्द्रमाके समान गौर, कमलकेशरके समान पीले और स्वेत हेमाचल पर रहनेवाले दस करोड़ वानरोंके साथ वीरशतबलि नामक

कोटीसहस्रैर्दशभिः श्रीमान्परिवृतस्तदा । वीरः शतवलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत ॥१४॥
ततः काञ्चनशैलाभस्ताराया वीर्यवान्पिता । अनेकैर्बहुसाहस्रैः कोटिभिः प्रत्यदृश्यत ॥१५॥
तथापरेण कोटीनां सहस्रेण समन्वितः । पिता रुमायाः संप्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः ॥१६॥
पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः । बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः ॥१७॥
अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः । पिता हनुमतः श्रीमान्केसरी प्रत्यदृश्यत ॥१८॥
गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः । वृतः कोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥१९॥
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिवर्हणः । वृतः कोटिसहस्राभ्यां द्वाभ्यां समभिवर्तत ॥२०॥
महाबलनिभैर्घोरैः पनसो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः ॥२१॥
नीलाञ्जनचयाकारो नीलो नामैष यूथपः । अदृश्यत महाकायः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥२२॥
ततः काञ्चनशैलाभो गवयो नाम यूथपः । आजगाम महावीर्यः कोटिभिः पञ्चभिर्वृतः ॥२३॥
दरीमुखश्च बलवान्यूथपोऽभ्याययौ तदा । वृतः कोटिसहस्रेण सुग्रीवं समवस्थितः ॥२४॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभावश्विपुत्रौ महाबलौ । कोटिकोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यताम् ॥२५॥
गजश्च बलवान्वीरस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः । ऋक्षराजो महातेजा जाम्बवान्नाम नामतः ॥२६॥
कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तः सुग्रीवस्य वशे स्थितः । रुमण्वान्नाम तेजस्वी विक्रान्तैर्वानरैर्वृतः ॥२७॥
आगतो बलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः । ततः कोटिसहस्राणां सहस्रेण शतेन च ॥२८॥

वानर दीख पड़ा ॥१३,१४॥ अनन्तर सुवर्ण-पर्वतके समान विशाल और बलवान् ताराका पिता कई हज़ार करोड़ वानरोंके साथ दिखायी पड़ा ॥१५॥ अनन्तर दूसरे हजार करोड़ वानरोंसे युक्त रुमाका पिता सुग्रीवका ससुर आया ॥१६॥ पद्म-केसरके समान रंगवाला, सूर्य्यके समान देदीप्यमान मुखवाला, बुद्धिमान और वानरोंमें श्रेष्ठ ॥१७॥ अनेक हजार वानरोंके साथ हनुमानका पिता श्रीमान् केसरी आया ॥१८॥ अनन्तर गोलांगूल जातिके वानरोंका राजा महापराक्रमी गवाक्ष हजार करोड़ वानरोंके साथ दीख पड़ा ॥१९॥ बड़े वेगवान दोहजार करोड़ भालुओंके साथ धूम्रनामक ऋक्षराज आया ॥२०॥ महाबलसे प्रकाशमान् भयानक तीन करोड़ वानरोंके साथ पनस नामका सेनापति आया ॥२१॥ नील कज्जलसमूहके आकारवाला विशालकाय नील नामक सेनापति दस करोड़ वानरोंके साथ दिखायी पड़ा ॥२२॥ यह सुवर्ण पर्वतके समान गवय नामका सेनापति है। महाबली यह पांच करोड़ वानरोंके साथ आया है ॥२३॥ दरीमुख नामका बलवान सेनापति आया, हज़ार करोड़ वानर उसके पास थे और वह सुग्रीवके पास आकर बैठ गया ॥२४॥ अश्वीकेपुत्र महाबली मैन्द और द्विविद नामक वानर आए जिनके साथ हजार हज़ार करोड़ वानर थे ॥२५॥ बलवान् गज नामक वीर आया, जिसके साथ तीन करोड़ वानर आए। महातेजस्वी जाम्बवान् नामके ऋक्षराज भी आए ॥२६॥ दस करोड़ सेना इनके साथ थी, ये सुग्रीवके अधीन थे। रुमण्व नामका तेजस्वी वानर आया, इसके साथ सौ करोड़ पराक्रमी वानर आए। अनन्तर लाख वानरोंके साथ गंधमादन नामका वानर आया। अनन्तर हजार पद्म और सौ शंकु

पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः । ततः पद्मसहस्रेण वृतः शंकुशतेन च ॥२९॥
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितुस्तुल्यपराक्रमः । ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिभिर्भीमविक्रमैः ॥३०॥
पञ्चभिर्हरिकोटीभिर्दूरतः पर्यदृश्यत । इन्द्रजानुः कपिर्वीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत ॥३१॥
एकादशानां कोटीनामीश्वरस्तैश्च संवृतः । ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसंनिभः ॥३२॥
अयुतेन वृतश्चैव सहस्रेण शतेन च । ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः ॥३३॥
प्रत्यदृश्यत कोटीभ्यां द्वाभ्यां परिवृतो बली । कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ॥३४॥
वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान्प्रत्यदृश्यत । नलश्चापि महावीर्यः संवृतो द्रुमवासिभिः ॥३५॥
कोटीशतेन संप्राप्तः सहस्रेण शतेन च । ततो दरीमुखः श्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥३६॥
संप्राप्तोऽभिनदंस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रम्भ एव च ॥३७॥
एते चान्ये च बहवो वानराः कामरूपिणः । आवृत्य पृथिवीं सर्वां पर्वतांश्च वनानि च ॥३८॥
यूथपाः समनुप्राप्ता येषां संख्या न विद्यते । आगताश्च निविष्टाश्च पृथिव्यां सर्ववानराः ॥३९॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ॥४०॥
कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रहृष्टा बाहुशालिनः । शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन् ॥४१॥
अपरे वानरश्रेष्ठाः संगम्य च यथोचितम् । सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥४२॥
सुग्रीवस्त्वरितो रामे सर्वांस्तांस्त्वरितांस्तदा । निवेदयित्वा धर्मज्ञः स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥४३॥

वानरोंके साथ पिताके तुल्य पराक्रमी युवराज अंगद आए। अनन्तर ताराके समान प्रकाशमान तारनामका सेनापति भीम पराक्रमी, पांच करोड़ वानरोंके साथ देखा गया। इन्द्रजानु नामका वीर सेनापति देखा गया। वह ग्यारह करोड़ वानरोंका अधिपति है, उनके साथ वह आया। अनन्तर सूर्यके समान प्रकाशमान् रम्भ नामका वानर आया। दस हजार हजार, और सौ वानरोंके साथ वह आया, अर्थात् ग्यारह हजार एक सौ वानर उसके साथ आये। अनन्तर दुर्मुख नामका वीर आया। यह बली दो करोड़ वानरोंके साथ देखा गया। कैलाशशिखरके समान आकारवाले बड़े पराक्रमी हजार करोड़ वानरोंके साथ वीर हनुमान दिखायी पड़े। पुनः नल नामक महाबली वानर सौ करोड़, हजार और सौ वानरोंके साथ आए। दरीमुख नामका सेनापति आया, जिसके साथ दस करोड़ वानर थे ॥२७,२८,२९,३०,३१,३२,३३,३४,३५,३६॥ शरभ, कुमुद वह्नि, और रम्भ नामके वानर गरजते हुए महात्मा सुग्रीवके पास आए ॥३७॥ ये तथा और अनेक इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अनेक वानर समस्त पर्वतों, वनों और पृथिवीसे घूमकर आए ॥३८॥ इतने सेनापति आए जिनकी संख्या नहीं है। वे सब वानर आये। पृथिवीमें बैठ गये ॥ ३९ ॥ और शाखाओं पर कूदते हुए और गर्जन करते हुए वानर सुग्रीवके पास आये जैसे सूर्यके पास मेघ आते हैं ॥४०॥ बाहुमें बल रखनेवाले उन वानरोंने अनेक प्रकारके शब्द करके और सिर झुका कर अपने आनेकी सूचना सुग्रीवको दी ॥४१॥ दूसरे श्रेष्ठ वानर यथोचित सुग्रीवसे मिल-कर हाथ जोड़कर बैठे ॥४२॥ सुग्रीवने शीघ्रतापूर्वक उन सबको रामके सामने उपस्थित किया और धर्मज्ञ सुग्रीव आप हाथ जोड़कर बैठ गये ॥४३॥ पर्वतके झरनोंके पास तथा सब वनोंमें वानरसेनापति

यथासुखं पर्वतनिर्झरेषु वनेषु सर्वेषु च वानरेन्द्राः ।
निवेशयित्वा विधिवद्बलानि बलं बलज्ञः प्रतिपत्तुमीष्टे ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥ १ ॥
आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामचारिणः । वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥ २ ॥
त इमे बहुविक्रान्तैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ३ ॥
ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः । पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥ ४ ॥
पृथिव्यम्बुचरा राम नानानगनिवासिनः । कोट्योघाश्च इमे प्राप्ता वानरास्तव किंकराः ॥ ५ ॥
निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते स्थिताः । अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्ष्यन्त्यरिंदम ॥ ६ ॥
त इमे बहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः । आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥ ७ ॥
यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् । त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥
काममेवमिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः । तथापि तु यथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥

अपनी-अपनी सेनाको सुखपूर्वक ठहरावें और सेनाका परिचय रखनेवाला अपनी सेनाका पता लगावे ॥४४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

वानरराज सुग्रीव सब सामग्रियोंको प्राप्त कर शत्रुसेनाके नाश करनेवाले नरश्रेष्ठ रामचन्द्रसे बोले, ॥१॥ इन्द्रके समान बली वानर आगए हैं। ये सब इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। ये मेरे राज्यके रहनेवाले हैं। उचित स्थान पर ठहराए गए हैं ॥२॥ अनेक देशोंमें भ्रमण किये हुए बली और पराक्रमी ये भयानक वानर आए हैं। ये दैत्य और दानवके समान हैं ॥३॥ युद्धोंमें इनकी वीरताका परिचय मिल चुका है, ये कष्टोंको सहनेवाले हैं, पराक्रममें प्रसिद्ध हैं और उद्योग करनेमें उत्तम हैं ॥४॥ पृथिवी और जलमें चलनेवाले, अनेक पर्वतोंके रहनेवाले, करोड़ोंसे भी ऊपरके आए हुए वानर आपके सेवक हैं ॥५॥ ये सब आपकी आज्ञाके अधीन हैं। अपने स्वामीका ये हित-साधन करेंगे। आपके मनोरथ सिद्ध करनेमें ये समर्थ हैं ॥६॥ बड़े पराक्रमी, कई हजारोंकी संख्यामें इन वानरोंके साथ जो आये हैं, वे दैत्य दानवके समान भयानक हैं ॥७॥ हे नरव्याघ्र, जो इस कालके लिए आप उचित समझते हों, उसकी आज्ञा कीजिए। आपकी सेना आपके अधीन हैं आप आज्ञा दें ॥८॥ यद्यपि यह कार्य, सीताका ढूंढनेका मुझे भी अच्छी तरह मालूम है फिर भी आप जो उचित समझें, उसकी आज्ञा करें ॥९॥ सुग्रीवके ऐसा कहने पर सुग्रीवका आलिंगन कर दशरथपुत्र रामचन्द्र उनसे बोले, ॥१०॥ सौम्य, इस बातका पता लगाना

ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा । स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥११॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन्काले सह त्वया ॥१२॥
नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः । त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥१३॥
त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम् । त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः ॥१४॥
सुहृद्द्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् । भवानस्मद्धिते युक्तः सुहृदाप्तोऽर्थवित्तमः ॥१५॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम् । अब्रवीद्रामसांनिध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥१६॥
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम् । सोमसूर्यनिभैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम ॥१७॥
देशकालनयैर्युक्तो विज्ञः कार्यविनिश्चये । वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥१८॥
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् । तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ॥१९॥
मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च । नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा ॥२०॥
कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम् । सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम् ॥२१॥
महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम् । ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् ॥२२॥
मागधांश्च महाग्रामान्पुण्ड्रांस्त्वङ्गांस्तथैव च । भूमिं च कोशकाराणां भूमिं च रजताकराम् ॥२३॥
सर्वं च तद्विचेतव्यं मृगयद्भिस्ततस्ततः । रामस्य दयितां भार्यां सीतां दशरथस्नुषाम् ॥२४॥

चाहिए कि सीता जीती है कि नहीं, और वह देश कहां है जहां रावण रहता है ॥११॥ सीता और रावणके घरका पता लगने पर, उस समय तुम्हारे साथ जो समयानुकूल होगा उसका निश्चय किया जायगा ॥११॥ हे वानरेन्द्र, इस कार्यका मैं अथवा लक्ष्मण प्रभु नहीं हैं तुम्हीं इसके करनेवाले हो, और स्वामी भी हो ॥१३॥ कार्यका निश्चय करके, क्या करना है यह विचार कर, तुम्हीं आज्ञा दो। हे वीर तुम मेरे कार्योंको जानते हो, इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥ आप मेरे दूसरे मित्र हैं, पराक्रमी हैं, बुद्धिमान हैं, अवसर समझनेवाले हैं, यथार्थ ज्ञान रखनेवाले हैं। आप यदि हमारे कार्यमें लगें तो कार्य सिद्ध हो ॥१५॥ रामचन्द्रके ऐसा कहने पर सुग्रीव विनत नामक सेनापतिसे राम और लक्ष्मणके समीप बोले ॥१६॥ वह विनत पर्वतके समान ऊंचा था। मेघके समान गरजता था और बड़ा वीर था। सुग्रीवने उससे कहा—हे वानरश्रेष्ठ, चन्द्र सूर्यके समान वानरोंके साथ देशकाल और नीतिके जाननेवाले सौ हजार वेगवान वानरोंके साथ तुम पूर्व दिशाकी ओर जाओ। कर्तव्य निश्चय करनेमें तुम स्वयं बुद्धिमान हो। वहां पर्वत, वन, कानन आदिमें सीताको और रावणके घरको ढूँढ़ना ॥१७,१८,१९॥ दो पर्वतोंके बीचमें, वनोंमें, नदियोंमें सीताको ढूँढ़ना। गंगा, सरजू और कौशिकी नदीको ढूँढ़ना ॥२०॥ कालिन्दी यमुना, यामुन नामक महापर्वत, सरस्वती, सिन्धु तथा मणिके समान जलवाले शोणको ढूँढ़ना ॥२१॥ मही, कालमही दोनों नदियोंको जो वनपर्वतसे शोभित हैं ढूँढ़ना। ब्रह्ममाला, विदेह, मालव, काशी और कोशल देशोंको भी ढूँढ़ना। बड़े बड़े गांववाले मगध, पुंड्र तथा अंग देशको ढूँढ़ना। रेशम उत्पन्न करनेवाली भूमि तथा चांदी उत्पन्न करनेवाली भूमिको देखना ॥२२,२३॥ इन सब स्थानोंमें जाकर ढूँढ़ना। इधर उधर भी ढूँढ़ना। रामचन्द्रकी प्रिय पत्नी और दसरथकी पतोहू सीताको ढूंढना ॥२४॥ जो पर्वत और

समुद्रमवगाढांश्च पर्वतान्पत्तनानि च । मन्दरस्य च ये कोटिं संश्रिताः केचिदालयाः ॥२५॥
कर्णप्रावरणाश्चैव तथा चाप्योष्ठकर्णकाः । घोरलोहमुखाश्चैव जवनाश्चैकपादकाः ॥२६॥
अक्षया बलवन्तश्च तथैव पुरुषादकाः । किरातास्तीक्ष्णचूडाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः॥२७॥
आममीनाशनाश्चापि किराता द्वीपवासिनः । अन्तर्जलचरा घोरा नरव्याघ्रा इति स्मृताः ॥२८॥
एतेषामाश्रयाः सर्वे विचेयाः काननौकसः । गिरिभिर्ये च गम्यन्ते प्लवनेन प्लवेन च ॥२९॥
यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् । सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमण्डितम् ॥३०॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः । दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः ॥३१॥
एतेषां गिरिदुर्गेषु प्रपातेषु वनेषु च । मार्गध्वं सहिताः सर्वे रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥३२॥
ततो रक्तजलं प्राप्य शोणाख्यं शीघ्रवाहिनम् । गत्वा पारं समुद्रस्य सिद्धचारणसेवितम् ॥३३॥
तस्य तीर्थेषु रम्येषु विचित्रेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३४॥
पर्वतप्रभवा नद्यः सुभीमबहुनिष्कुटाः । मार्गितव्या दरीमन्तः पर्वताश्च वनानि च ॥३५॥
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान्द्रष्टुमर्हथ । ऊर्मिमन्तं महारौद्रं क्रोशन्तमनिलोद्धतम् ॥३६॥
तत्रासुरा महाकायाश्छायां गृह्णन्ति नित्यशः । ब्रह्मणा समनुज्ञाता दीर्घकालं बुभुक्षिताः ॥३७॥

नगर समुद्रमें घुस गए हैं, अथवा जो मन्दर पर्वतके शिखरपर बसे हुए हैं, वहां भी ढूँढना ॥२५॥ कानको छिपा रखनेवाले, ओंठमें जिनके कान होते हैं, जिनके मुख लोहेके होते हैं, जो एक पैरके होते भी वेगसे चलते हैं, जिनके घर नहीं होते, जो बलवान् और मनुष्योंको खानेवाले होते हैं, सूर्यके समान तीखी चोटीवाले, सोनेके रंगवाले, देखनेमें सुन्दर, कच्ची मछली खानेवाले, द्वीपमें रहनेवाले, किरातोंके यहाँ भी ढूँढना । जो जलके भीतर रहते हैं, देखनेमें भयानक हैं और नरव्याघ्र कहे जाते हैं ॥२६,२७, २८॥ जंगलोंमें इन सबके रहनेकी जगह ढूँढी जाय । पर्वतोंसे कूदकर या नौकासे जिन द्वीपोंमें जाया जाता है वहां भी ढूँढा जाय ॥२९॥ सात राज्योंसे युक्त यत्नपूर्वक यवद्वीपमें भी तुमलोग जाओ । सुवर्ण द्वीप और रुप्यकद्वीपमें भी तुमलोग जाओ, जहां सोना बनानेवाले रहते हैं ॥३०॥ यवद्वीपके आगे जानेसे शिशिर नामका पर्वत मिलता है, जो शिखरसे आकाशको छूता है, जहां देवता दानव रहते हैं ॥३१॥ इनकी गुहाओंमें, झरनोंके पास वनोंमें, यशस्विनी रामपत्नीको तुमलोग मिलकर ढूंढो ॥३२॥ उसके आगे शीघ्र बहनेवाला और लाल जलवाला शोण नदके तीरपर जाकर समुद्रके पार जाना, जहां सिद्ध चारण आदि रहते हैं ॥३३॥ उसके रमणीय घाटोंमें और विचित्र वनोंमें सीता और रावणको अच्छी तरह ढूँढो । इनका पता लगाओ ॥३४॥ पर्वतसे उत्पन्न नदियां, बड़े-बड़े घरके पासके बगीचे, गुहावाले पर्वत तथा वन इनको अच्छी तरह ढूंढो ॥३५॥ अनन्तर, भयंकर समुद्रके द्वीपोंको जाकर तुम देखो । लहरोंवाला, सदा गर्जन करनेवाला, बड़ा भयानक हवासे उद्धत, इक्षुसमुद्रको देखना ॥३६॥ वहां विशाल शरीरवाले असुर सदा छाया ग्रहण करते हैं, अर्थात् छायासे छायावालेको पकड़ लेते हैं । इसके लिए उन्हें ब्रह्मासे आज्ञा मिली है । वे बहुत दिनोंके भूखे हैं ॥३७॥ अतएव काल मेघके समान बड़े-बड़े

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम् । अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥३८॥
ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम् । गत्वा प्रेक्ष्यथ तां चैव बृहतीं कूटशाल्मलीम् ॥३९॥
गृहं च वैनतेयस्य नानारत्नविभूषितम् । तत्र कैलाससंकाशं विहितं विश्वकर्मणा ॥४०॥
तत्र शैलनिभा भीमा मन्देहा नाम राक्षसाः । शैलशृङ्गेषु लम्बन्ते नानारूपा भयावहाः ॥४१॥
ते पतन्ति जले नित्यं सूर्यस्योदयनं प्रति । अभितप्ताः स्म सूर्येण लम्बन्ते स्म पुनःपुन ॥४२॥
निहता ब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि राक्षसाः । ततः पाण्डुरमेघाभं क्षीरोदं नाम सागरम् ॥४३॥
गत्वा द्रक्ष्यथ दुर्धर्षा मुक्ताहारमिवोर्मिभिः । तस्य मध्ये महान्श्वेतो ऋषभो नाम पर्वतः ॥४४॥
दिव्यगन्धैः कुसुमितैराचितैश्च नगैर्वृतः । सरश्च राजतैः पद्मैर्ज्वलितैर्हेमकेसरैः ॥४५॥
नाम्ना सुदर्शनं नाम राजहंसैः समाकुलम् । विबुधाश्चारणा यक्षाःकिंनराश्चाप्सरोगणाः॥४६॥
हृष्टाः समधिगच्छन्ति नलिनीं तां रिरंसवः । क्षीरोदं समतिक्रम्य तदा द्रक्ष्यथ वानराः ॥४७॥
जलोदं सागरं शीघ्रं सर्वभूतभयापहम् । तत्र तत्कोपजं तेजः कृतं हयमुखं महत् ॥४८॥
अस्याहुतं महावेगमोदनं सचराचरम् । तत्र विक्रोशतां नादो भूतानां सागरौकसाम् ।
श्रूयते चासमर्थानां दृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥४९॥

सर्पोंसे युक्त महागर्जन करनेवाले उस समुद्रके पास कुछ उपाय करके जाना, अर्थात् छायाग्राहीसे बच-कर जाना ॥३८॥ वहांसे लोहित सागर नामक समुद्रके पास जाना, जिसका जल लाल है और जो बड़ा भयंकर है ॥३९॥ वहां जाकर उस कूट नामक बड़े सेमलके वृक्षको देखना । वहां विश्वकर्माने अनेक रत्नोंसे युक्त गरुड़के लिए घर बनाया है जो कैलाशके समान है ॥ ४० ॥ वहां पर्वतके समान बड़े-बड़े भयंकर मन्देह नामक राक्षस रहते हैं, वे अनेक प्रकारके है और बड़े भयानक हैं । वे पर्वतके शिखर पर लटकते रहते हैं ॥४१॥ सूर्यके उदय होनेके समय वे जलमें गिर जाते हैं और सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर पुनः पर्वत शिखर पर लटकने लगते हैं ॥४२॥ ब्रह्मतेजसे प्रतिदिन वे राक्षस निहत होते हैं । वहांसे श्वेतमेघके समान क्षीरोद समुद्र पर जाना ॥४३॥ लहरियोंसे मुक्ताहार धारण किये हुए के समान तुम उस समुद्रको देखोगे । उसके बीचमें बहुत बड़ा ऋषभ नामका एक श्वेत पर्वत है ॥४४॥ दिव्य गन्धवाले पुष्पित अनेक वृक्ष उस पर्वतपर हैं । एक तालाब भी है जिसमें चांदीके कमल खिले हुए है । और उन कमलोंके केसर सोनेके हैं ॥४५॥ उस तालाबका नाम सुदर्शन है । वहां राजहंस बहुत रहते हैं । देवता, चारण, यक्ष, किन्नर और अप्सराएं प्रसन्नतापूर्वक उस तालाबमें क्रीड़ा करनेके लिए आती हैं ॥४६॥ वानर, तुमलोग क्षीर समुद्रके आगे जानेपर सब प्राणियोंको भयंकर जलोदधि समुद्र देखोगे । जहाँ और्व ऋषिके तेजसे उत्पन्न बड़वामुख नामक महान् तेज तुम देखोगे ॥४६,४७,४८॥ इसका अद्भुतवेग प्रलयकालमें सचराचर जगतका भोजन करेगा । बड़वामुखके गिरनेके कारण, समुद्रवासी समर्थ और असमर्थ प्राणियोंने उस बड़वामुखको देखकर जो विलाप किया था उसका शब्द आज भी सुन पड़ता

स्वादूदस्योत्तरे तीरे योजनानि त्रयोदश । जातरूपशिलो नाम सुमहान्कनकप्रभः ॥५०॥
तत्र चन्द्रप्रतीकाशं पन्नगं धरणीधरम् । पद्मपत्रविशालाक्षं ततो द्रक्ष्यथ वानराः ॥५१॥
आसीनं पर्वतस्याग्रे सर्वदेवनमस्कृतम् । सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥५२॥
त्रिशिराः काञ्चनः केतुस्तालस्तस्य महात्मनः । स्थापितः पर्वतस्याग्रे विराजति सवेदिकः ॥५३॥
पूर्वस्यां दिशि निर्माणं कृतं तत्त्रिदशेश्वरैः । ततः परं हेममयः श्रीमानुदयपर्वतः ॥५४॥
तस्य कोटिर्दिवं स्पृष्ट्वा शतयोजनमायता । जातरूपमयी दिव्या विराजति सवेदिका ॥५५॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः । जातरूपमयैर्दिव्यैः शोभते सूर्यसंनिभैः ॥५६॥
तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् । शृङ्गं सौमनसं नाम जातरूपमयं ध्रुवम् ॥५७॥
तत्र पूर्वं पदं कृत्वा पुरा विष्णुस्त्रिविक्रमे । द्वितीयं शिखरे मेरोश्चकार पुरुषोत्तमः ॥५८॥
उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः । दृश्यो भवति भूयिष्ठं शिखरं तन्महोच्छ्रयम् ॥५९॥
तत्र वैखानसा नाम वालखिल्या महर्षयः । प्रकाशमाना दृश्यन्ते सूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥६०॥
अयं सुदर्शनो द्वीपः पुरो यस्य प्रकाशते । तस्मिंस्तेजश्च चक्षुश्च सर्वप्राणभृतामपि ॥६१॥
शैलस्य तस्य पृष्ठेषु कंदरेषु वनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६२॥
काञ्चनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः । आविष्टा तेजसा संध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते ॥६३॥

है ॥४९॥ स्वादु जलवाले इस समुद्रके उत्तर तेरह योजन पर सुवर्णका एक बड़ा पर्वत है । अतएव उसकी शोभा सुवर्णके समान है ॥५०॥ हे वानरो, वहाँ चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण पृथिवीको धारण करनेवाले, कमलपत्रके समान नेत्रवाले सर्पराजको तुमलोग देखोगे ॥५१॥ वे अनन्तदेव, जिन्हें सब देवता नमस्कार करते हैं, जिनके हजार मस्तक हैं, नीला वस्त्र पहनकर पर्वतके आगे बैठे मिलेगें ॥५२॥ उस पर्वतपर अनन्तदेवकी सोनेकी ध्वजा विराजमान है, उसकी तीन शाखाएं है, उसके नीचे वेदी बनी हुई है, यह ध्वजाके रूपमें सोनेका ताल वृक्ष है ॥५३॥ देवताओंने पूर्व दिशामें उसे स्थापित किया है अर्थात् वही पूर्व दिशाकी अवधि है। उसके बाद सोनेका सुन्दर उदयाचल है ॥५४॥ उसके शिखर सौ योजन ऊंचे हैं और आकाशको छूते हैं । वह सोनेका है और उसके नीचे वेदी बनी हुई है ॥५५॥ साल, ताल, तमाल, कर्णिकार ये सब वृक्ष भी सोनेके हैं । ये फूले हुए हैं और सूर्यके समान सुंदर मालूम होते हैं ॥५६॥ वहां सौमनस नामका एक शिखर है, एक योजन लम्बा है और दस योजन ऊंचा । यह सोनेका है ॥५७॥ पहले वामनावतारमें विष्णुने वहां पहला पैर रखा था और दूसरा पैर मेरुके शिखरपर ॥५८॥ उत्तर ओरसे जम्बुद्वीपकी परिक्रमा करके सूर्य जब उस ऊंचे शिखर पर आते हैं तब दीख पड़ते हैं ॥५९॥ वहां हा वालखिल्य नामक वैखानस (आजावन संन्यासी) महर्षि रहते हैं । वे तपस्वी सूर्यके समान प्रकाशमान दीख पड़ते हैं ॥६०॥ यह उदयाचलके पासवाला द्वीप सुदर्शन नामका प्रकाशित हो रहा है। उसीसे सब प्राणियोंको तेज मिलता है और आंखें प्रकाश पाती हैं ॥६१॥ उस पर्वतके ऊपर, उसके कन्दरों और वनोंमें इधर-उधर सीता और रावणको ढूंढना ॥६२॥ सुवर्णपर्वत तथा महात्मा सूर्यके

पूर्वमेतत्कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च। सूर्यस्योदयनं चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते ॥६४॥
तस्य शैलस्य पृष्ठेषु निर्झरेषु गुहासु च। रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥६५॥
ततः परमगम्या स्याद्दिक्पूर्वा त्रिदशावृता। रहिता चन्द्रसूर्याभ्यामदृश्या तमसावृता ॥६६॥
शैलेषु तेषु सर्वेषु कंदरेषु नदीषु च। ये च नोक्ता मयोद्देशा विचेया तेषु जानकी ॥६७॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः। अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥६८॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च। मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥६९॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम। सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥७०॥

महेन्द्रकान्तां वनषण्डमण्डितां दिशं चरित्वा निपुणेन वानराः।
अवाप्य सीतां रघुवंशजप्रियां ततो निवृत्ताः सुखिनो भविष्यथ ॥७१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम्। दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥
नीलमग्निसुतं चैव हनूमन्तं च वानरम्। पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महौजसम् ॥ २ ॥

प्रकाशसे पूर्वकी संध्या लाल दिखायी पड़ती है ॥६३॥ पृथिवीका सब भुवनोंका यह द्वार पहले बना, इस लिए इसका नाम पूर्व है। इसी दिशामें सूर्योदय होता है, इसलिए इसको पूर्वदिशा कहते हैं ॥६४॥ उस पर्वतके ऊपर उसके झरनों, और गुहाओंमें रावणके साथ सीताको ढूँढ़ना ॥६५॥ इसके बाद पूर्व दिशा अगम्य है। आगे देवताओंका स्थान है, उधर चन्द्र और सूर्यका प्रकाश नहीं है। अतएव सदा अन्धकार रहता है ॥६६॥ जो स्थान मैंने नहीं बतलाए हैं उन पर्वतों, गुहाओं और नदियोंमें सीताको ढूँढना ॥६७॥ हे वानरश्रेष्ठो, यहीं तक वानर जा सकते हैं, इससे बादकी भूमि सूर्यरहित है, वहां आने जानेकी कोई मर्यादा भी नहीं है, अतएव आगेकी भूमिके विषयमें मुझे कुछ मालूम नहीं है ॥६८॥ उदयपर्वत तक जाकर सीता और रावणके घरका पता लगाकर महीना पूरा होते-होते तुमलोग लौट आओ ॥६९॥ एक महीनाके आगे वहां न ठहरना। जो ठहरेगा, वह मेरा बध्य होगा। कार्य सिद्ध करके और जानकीका पता लगाकरके तुमलोग लौट आओ ॥७०॥ हे वानरो, वनसमूहसे सुशोभित इन्द्रकी प्रिय दिशा पूर्व दिशामें घूमकर रामचन्द्रकी प्रिया सीताको पाकर यदि लौटोगे तो सुख पाओगे ॥७१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त।

उस बड़ी सेनाको बिदाकर पहलेसे चुने हुए वानरोंको सुग्रीवने दक्षिण दिशामें भेजा ॥१॥ नील अग्निपुत्र, हनुमान, पितामहपुत्र, महौज, जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मयन्द, द्विविद, गन्धमादन, उल्कामुख, अंनग, हुताशनके दो पुत्र तथा अंगद प्रमुखवीरोंको जो

सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च । गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा ॥ ३ ॥
मैन्दं च द्विविदं चैव सुषेणं गन्धमादनम् । उल्कामुखमनङ्गं च हुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥
अङ्गदप्रमुखान्वीरान्वीरः कपिगणेश्वरः । वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेश विशेषवित् ॥ ५ ॥
तेषामग्रेसरं चैव बृहद्बलमथाङ्गदम् । विधाय हरिवीराणामादिशद्दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥
ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः । कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां समुदाहरत् ॥ ७ ॥
सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतायुतम् । नर्मदां च नदीं रम्यां महोरगनिषेविताम् ॥ ८ ॥
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम् । मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥
आब्रवन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत । विदर्भानृष्टिकांश्चैव रम्यान्माहिषकानपि ॥१०॥
तथा मत्स्यकलिङ्गांश्च कौशिकांश्च समन्ततः । अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहम् ॥११॥
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत । तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च केरलान् ॥१२॥
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः । विचित्रशिखरः श्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥१३॥
सुचन्दनवनोद्देशो मार्गितव्यो महागिरिः । ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलाशयाम् ॥१४॥
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहृतामप्सरोगणैः । तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसः ॥१५॥
द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् । ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना ॥१६॥
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम् । सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥१७॥
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते । ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ॥१८॥

वेगवान और विक्रमवान् थे, विशेषज्ञ सुग्रीवने सन्देश दिया ॥२,३,४,५॥ अधिक बल रखनेवाले अंगद इस दलके प्रधान बनाए गए और वीर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा गया ॥६॥ उस दिशामें जो दुर्गम स्थान थे, उन सबका पता और परिचय सुग्रीवने उन वानरोंको दिया ॥७॥ सहस्र शिखरवाला विंध्यपर्वत जो अनेक वृक्षों और लताओंसे युक्त है, रमणीय नर्मदानदी जिसमें बड़े बड़े सांप हैं, गोदावरी, कृष्णा; महानदी आदि नदियां, मेखल, उत्कल, दशार्ण देशके नगर, अवन्ती, विदर्भ, अष्टिक, माहिषक इन सबको ढूंढो ॥८,९,१०॥ मत्स्य कलिंग और कौशिक प्रान्तोंको अच्छी तरह ढूंढकर, पर्वत नदी और गुहाओंके साथ दण्डकारण्यको ढूंढना। आंध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, तथा गोदावरी नदी आदि सबको ढूंढना ॥११,१२॥ धातुयुक्त अयोमुख नामक पर्वतपर जाना, उसके शिखर विचित्र है, उसके वनमें तरह-तरहके फूल हैं ॥१३॥ जिस पर्वतके प्रदेश चन्दनवनसे युक्त हैं उस महापर्वत मलयको ढूंढना। वहां, स्वच्छ जलवाली वह नदी जहां अप्सराएं विहार करती हैं तुमलोग देखोगे—जिसका कावेरी नाम है। उस मलयपर्वतके आगे बैठेहुए सूर्यके समान तेजस्वी श्रेष्ठ ऋषि अगस्त्यको तुमलोग देखोगे। उन महात्मासे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा पाकर ताम्रपर्णी नदीको पार करना, इसमें मगर हैं। चन्दनवनके कारण इसके जल और स्थल छिपे हुए हैं ॥१४,१५,१६,१७॥ युवती स्त्रियां जिस प्रकार पतिके पास जाती हैं उसी प्रकार वह नदी दिव्य समुद्रके पास जाती है ॥१८॥ अनन्तर मुक्तामणि विभूषित सुव-

युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः । ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥१९॥
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः । चित्रसानुनगः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ॥२०॥
जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवम् । नानाविधैर्नगैः फुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥२१॥
देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्च शोभितम् । सिद्धचारणसङ्घैश्च प्रकीर्णं सुमनोरमम् ॥२२॥
तमुपैति सहस्राक्षः सदा पर्वसु पर्वसु । द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः ॥२३॥
अगम्यो मानुषैर्दीप्तस्तं मार्गध्वं समन्ततः । तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ॥२४॥
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः । राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ॥२५॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य मध्ये तस्य तु राक्षसी । अङ्गारकेति विख्याता छायामाक्षिप्य भोजनी ॥२६॥
एवं निःसंशयान्कृत्वा संशयान्नष्टसंशयाः । मृगयध्वं नरेन्द्रस्य पत्नीममिततेजसः ॥२७॥
तमतिक्रम्य लक्ष्मीवान्समुद्रे शतयोजने । गिरिः पुष्पितको नाम सिद्धचारणसेवितः ॥२८॥
चन्द्रसूर्यांशुसंकाशः सागराम्बुसमाश्रयः । भ्राजते विपुलैः शृङ्गैरम्बरं विलिखन्निव ॥२९॥
तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः । न तं कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः॥३०॥
प्रणम्य शिरसा शैलं तं विमार्गथ वानराः । तमतिक्रम्य दुर्धर्षं सूर्यवान्नाम पर्वतः ॥३१॥

सोनेका दिव्य पाण्ड्य राजाओंके योग्य किवाड़ (अर्थात् नगरद्वारके फाटक) तुमलोग देखोगे। पुनः समुद्रके तीर जाकर तुमलोग अपना कर्तव्य निश्चित करो अर्थात् उसको पार करनेके सम्बन्धमें विचार करो ॥१९॥ समुद्रके बीचमें अगस्त्यका स्थापित किया हुआ महेन्द्र नामक एक सुन्दर पर्वत है, जिसके शिखर चित्रित हैं ॥२०॥ सोनेका यह सुन्दर पर्वत समुद्रके जलमें है । अनेक विधि फूले वृक्षों और लताओंसे यह शोभित है । देवता, ऋषि, यक्ष और अप्सरा इनसे यह पर्वत शोभित होता रहता है । सिद्ध और चारणोंका समूह यहां भरा रहता है, अतएव यह पर्वत बड़ा सुन्दर मालूम होता है ॥२१,२२॥ उस पर्वत पर अमावास्या अमावास्याको इन्द्र आते हैं, उस समुद्रके पारमें सौ योजनका लम्बा एक द्वीप है ॥२३॥ वहां मनुष्य नहीं जा सकता । तुम लोग उसे ढूंढो, सीताको अच्छी तरह खूब ढूंढना । वही वध्य दुरात्मा रावणका देश है । इन्द्रके समान तेजवाले राक्षसाधिपतिका वही निवासस्थान है ॥२५॥ दक्षिण समुद्रके बीचमें अंगारका नामकी एक राक्षसी है, जो छायासे खींचकर खा जाती है ॥२६॥ हे संशयरहित वानरो, अपने सन्देहको अच्छी तरह दूरकर प्रचुर तेजस्वी राजा रामचन्द्रकी स्त्रीको ढूंढो ॥२७॥ उस प्रदेशसे आगे जानेपर सौ योजन विस्तीर्ण समुद्रमें सब सम्पत्तियोंसे युक्त सिद्ध-चारण-सेवित पुष्पितक नामका पर्वत है ॥२८॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान वह पर्वत समुद्रमें है । अपने अनेक शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ सा मालूम पड़ता है । उसके एक सोनेके शिखरपर सूर्य प्रतिदिन आते हैं । जो कृतघ्न हैं, क्रूर हैं और नास्तिक हैं वे उस शिखरको नहीं देख सकते ॥२९,३०॥ वानरो, उस पर्वतको सिरसे प्रणाम करके, उसके आगे बढ़ने पर सूर्यवान नामका पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा ॥३१॥ दुर्गम

अध्वना दुर्विगाहेन योजनानि चतुर्दश । ततस्तमप्यतिक्रम्य वैद्युतो नाम पर्वतः ॥३२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैः सर्वकालमनोहरैः । तत्र भुक्त्वा वराहाणि मूलानि च फलानि च ॥३३॥
मधूनि पीत्वा जुष्टानि परं गच्छत वानराः । तत्र नेत्रमनःकान्तः कुञ्जरो नाम पर्वतः ॥३४॥
अगस्त्यभवनं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा । तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् ॥३५॥
शरणं काञ्चनं दिव्यं नानारत्नविभूषितम् । तत्र भोगवती नाम सर्पाणामालयः पुरी ॥३६॥
विशालरथ्या दुर्धर्षा सर्वतः परिरक्षिता । रक्षिता पन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥३७॥
सर्पराजो महाघोरो यस्यां वसति वासुकिः । निर्याय मार्गितव्या च सा च भोगवती पुरी ॥३८॥
तत्र चामन्तरोद्देशा ये केचन समावृताः । तं च देशमतिक्रम्य महानृषभसंस्थितः ॥३९॥
सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः । गोशीर्षकं पद्मकं च हरिश्यामं च चन्दनम् ॥४०॥
दिव्यमुत्पद्यते यत्र तच्चैवाग्निसमप्रभम् । न तु तच्चन्दनं दृष्ट्वा स्प्रष्टव्यं तु कदाचन ॥४१॥
रोहिता नाम गन्धर्वा घोरं रक्षन्ति तद्वनम् । तत्र गन्धर्वपतयः पञ्च सूर्यसमप्रभाः ॥४२॥
शैलूषो ग्रामणीः शिक्षः शुको बभ्रुस्तथैव च । रविसोमाग्निवपुषां निवासः पुण्यकर्मणाम् ॥४३॥
अन्ते पृथिव्या दुर्धर्षास्ततः स्वर्गजितः स्थिताः । ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ॥४४॥
राजधानी यमस्यैषा कष्टेन तमसावृता । एतावदेव युष्माभिर्वीरवानरपुङ्गवाः ॥
शक्यं विचेतुं गन्तुं वा नातो गतिमतां गतिः । ॥४५॥

रास्तेसे चौदह योजन जानेपर वैद्युत नामक पर्वत मिलेगा ॥३२॥ सब कालमें फलनेवाले और सदा मनोहर वृक्षोंसे वह पर्वत युक्त है, वहां श्रेष्ठ फल मूल खाकर, प्रेमपूर्वक मधुपीकर तुम लोग आगे चलो। वहां नेत्र और मनको सुख देनेवाला कुंजर नामका पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा। वहां विश्वकर्माने अगस्त्यके लिए घर बनाया है। इसका विस्तार एक योजन और ऊंचाई दस योजन है ॥३३॥३४॥३५॥ वहीं सर्पोंकी निवासभूमि भोगवती नामकी नगरी है। इसमें चौड़े रास्ते हैं, बाहरी प्राणीका प्रवेश करना कठिन है। चारो ओरसे रक्षित है। तीखे दांतवाले, विषैले, भयानक सर्प इसकी रक्षा कररहे हैं ॥३६,३७॥ भयानक सर्पराज वासुकि जिस नगरीमें निवास करते हैं वहां सावधानीसे जाकर ढूंढना ॥३८॥ वहां जो स्थान दूर हों या छिपे हुए हों, उनको भी अच्छी तरह ढूंढना। वहांसे आगे बढ़ने पर तुम लोगोंको ऋषभ पर्वत मिलेगा ॥३९॥ इसमें सब रत्न उत्पन्न होते हैं और यह बड़ा सुन्दर है। गोशीर्षक, पद्मक और हरिश्याम नामक दिव्य चन्दन यहां उत्पन्न होते हैं ॥४०॥ अग्निवर्णके समान ये चन्दन जहां उत्पन्न होते हैं वह ऋषभ पर्वत है। उस चन्दनको देखकर तुम लोग छूना मत ॥४१॥ रोहित नामके गंधर्व उस भयानक वनकी रक्षा करते हैं। सूर्यके समान वर्णवाले पांच गंधर्वपति, शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक्र, और बभ्रू ये पांच पुण्यात्मा निवास करते हैं, सूर्य चन्द्रमा और अग्नि इनके शरीर हैं ॥४२,४३॥ पृथिवीके अन्तमें जाने योग्य नहीं है, वहां स्वर्गीय देवता ही रहते हैं। इसके बाद आप लोगोंके लिए अगम्य है, क्योंकि वह भयानक पितृलोक है ॥४४॥ वहां यमराजकी राजधानी है। कष्ट और अन्धकारसे वह युक्त है। हे

सर्वमेतत्समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते । गतिं विदित्वा वैदेह्याः संनिवर्तितुमर्हथ ॥४६॥
यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्ट्वा सीतेति वक्ष्यति । मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥४७॥
ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः । कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति ॥४८॥
अमितबलपराक्रमा भवन्तो विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः ।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

अथ प्रस्थाप्य स हरीन्सुग्रीवो दक्षिणां दिशम् । अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम वानरम् ॥ १ ॥
तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम् । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च ॥ २ ॥
महर्षिपुत्रं मारीचमर्चिष्मन्तं महाकपिम् । वृतं कपिवरैः शूरैर्महेन्द्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥
बुद्धिविक्रमसंपन्नं वैनतेयसमद्युतिम् । मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४ ॥
ऋषिपुत्रांश्च तान्सर्वान्प्रतीचीमादिशद्दिशम् । द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कपीनां कपिसत्तमाः ॥ ५ ॥
सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गथ । सौराष्ट्रान्सहबाह्लीकांश्चन्द्रचित्रांस्तथैव च ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ, आप लोगोंको यहीं तक जाना है । यहीं तक जाया जा सकता है और ढूंढा जा सकता है। इसके बाद हम लोगोंकी गति नहीं है ॥४५॥ यह सब देखकर और भी जो कुछ मालूम पड़े वह देखकर, जानकीका पता लगाकर तुम सब शीघ्र लौट आओ ॥४६॥ एक महीनेमें लौटकर सबसे पहले जो सीताका पता बतलायेगा, वह मेरे समान विभव और भोग पाकर सुखसे विहार करेगा ॥४७॥ उससे बढ़कर दूसरा प्रिय न होगा, वह मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होगा । यदि उसने अनेक अपराध किए हों तो भी वह मेरा मित्र होगा ॥४८॥ आपलोग बड़े पराक्रमी हैं, बड़े गुणी कुलोंमें आपका जन्म हुआ है । जिस प्रकार सीता मिलें, वैसा उद्योग आप लोग करें ॥४९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

दक्षिण दिशाकी ओर वानरोंको भेजकर मेघवर्ण सुषेण नामक वानरसे सुग्रीव बोले ॥१॥ यह ताराका पिता और सुग्रीवका श्वसुर था, यह महापराक्रमी था । सुग्रीव उसके पास गए और हाथ जोड़कर प्रणाम कर बोले ॥२॥ महर्षि मरिचिके पुत्र अर्चिस्मान नामक महाकपिसे भी, जो इन्द्रके समान तेजस्वी था, और वीर वानरोंसे युक्त था, सुग्रीव बोले ॥३॥ बुद्धि विक्रम सम्पन्न, गरुड़के समान तेजस्वी अर्चिस्मान वानरसे भी सुग्रीव बोले, प्रकाशयुक्त माला धारण किए हुए मरीचिके पुत्र मारीच नामक महाबली वानरोंसे भी सुग्रीव बोले, अन्य ऋषिपुत्रोंको भी पश्चिम दिशामें जानेकी उन्होंने आज्ञा दी । दो सौ हजार वानरोंको लेकर सुषेण आदि आप सीताको ढूंढे । सौराष्ट्र, बाह्लीक, चन्द्रचित्र आदि

स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानि पुराणि च । पुंनागगहनं कुक्षिं वकुलोद्दालकाकुलम् ॥ ७ ॥
तथा केतकखण्डांश्च मार्गध्वं हरिपुंगवाः । प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैव नद्यःशीतजलाःशिवाः॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानि कान्तारगिरयश्च ये । तत्र स्थलीर्मरुप्राया अत्युच्चशिशिराः शिलाः॥ ९ ॥
गिरिजालावृतां दुर्गां मार्गित्वा पश्चिमां दिशम् । ततः पश्चिममागम्य समुद्रं द्रष्टुमर्हथ ॥१०॥
तिमिनक्राकुलजलं गत्वा द्रक्ष्यथ वानराः । ततः केतकखण्डेषु तमालगहनेषु च ॥११॥
कपयो विहरिष्यन्ति नारिकेलवनेषु च । तत्र सीतां च मार्गध्वं निलयं रावणस्य च ॥१२॥
वेलातलनिविष्टेषु पर्वतेषु वनेषु च । मुरचीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम् ॥१३॥
अवन्तीमङ्गलेपां च तथा चालक्षितं वनम् । राष्ट्राणि च विशालानि पत्तनानि ततस्ततः ॥१४॥
सिन्धुसागरयोश्चैव संगमे तत्र पर्वतः । महान्सोमगिरिर्नाम शतशृङ्गो महाद्रुमः ॥१५॥
तत्र प्रस्थेषु रम्येषु सिंहाः पक्षगमाः स्थिताः । तिमिमत्स्यगजांश्चैव नीडान्यारोपयन्ति ते ॥१६॥
तानि नीडानि सिंहानां गिरिशृङ्गगताश्च ये । दृप्तास्तृप्ताश्च मातङ्गास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥१७॥
विचरन्ति विशालेऽस्मिंस्तोयपूर्णे समन्ततः । तस्य शृङ्गं दिवस्पर्शं काञ्चनं चित्रपादपम् ॥१८॥
सर्वमाशु विचेतव्यं कपिभिः कामरूपिभिः । कोटिं तत्र समुद्रस्य काञ्चनीं शतयोजनाम् ॥१९॥
दुर्दर्शां पारियात्रस्य गत्वा द्रक्ष्यथ वानराः । कोट्यस्तत्र चतुर्विंशद्गन्धर्वाणां तपस्विनाम् ॥२०॥

देशोंको आपलोग ढूँढे ॥४,५,६॥ बड़े-बड़े नगरों, बड़े-बड़े पुरों, सुपारी, वकुल और उद्दालक वृक्षोंसे युक्त कुक्षि प्रदेशको भी आप लोग ढूँढे ॥७॥ वानरो, केतकी वनोंको आप लोग ढूंढ़े, पश्चिमवाहिनी शीतलजलवाली नदियोंको आप लोग ढूंढ़े ॥८॥ तपस्वियोंके वनवाले पर्वत, निर्जल भूमि, ऊंचे और ठंढे पत्थरों पर आपलोग सीताको ढूँढ़े ॥९॥ पर्वतोंसे युक्त दुर्गम पश्चिम दिशामें आगे जाकर तुमलोग पश्चिम समुद्रको देखोगे ॥१०॥ तिमि (एक बहुत बड़ी मछली) और मगर इनसे युक्त उस समुद्रको तुमलोग देखोगे। वहां केतकी, तमाल और नारिकेलके वनमें वानर विहार करेंगे। वहां सीताको, रावणके घरको तुम लोग ढूंढो ॥११,१२॥ समुद्र-तीरके पर्वतों और वनोंमें सीताको ढूँढो। मुरचीपत्तन तथा रमणीय जटापुरमें ढूँढो ॥१३॥ अवन्ती, अंगलेपा तथा सघन वनमें सीताको ढूँढो। बड़े बड़े देश और बड़े बड़े नगरोंमें सीताको ढूंढो ॥१४॥ वहां सिंधु और सागरके संगम पर सोमगिरि नामक एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसके सौ शृंग हैं और उस पर बड़े बड़े वृक्ष हैं ॥१५॥ उसके रमणीय पत्थरों पर सिंह नामके पक्षी हैं जो तिमि नामक मत्स्योंको और हाथियोंको अपने घोंसलेमें उठाकर पालन करनेके लिए रख देते हैं ॥१६॥ पर्वतशिखरपर सिंहपक्षियोंके घोंसलेमें जो हाथी आदि जाते हैं, वे सन्तुष्ट और गर्वित हो जाते हैं, मेघके समान गर्जन करते हैं और जलपूर्ण इस पर्वतपर भ्रमण करते हैं ॥१७॥ उस पर्वतके सोनेके शिखर आकाशको छूनेवाले हैं, वहांके वृक्ष अद्भुत हैं ॥१८॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंको यह सब ढूँढना चाहिए। वहां समुद्रके बीचमें सौ योजन विस्तीर्ण पार्यात्र पर्वतका सोनेका शृंग तुम लोग देखोगे, जिसका देखना दूसरोंके लिए कठिन है। उस पर्वतपर अग्निके समान, भयानक और पापी

वसन्त्यग्निनिकाशानां घोराणां पापकर्मणाम् । पावकार्चिःप्रतीकाशाः समवेताः समन्ततः ॥२१॥
नात्यासादयितव्यास्ते वानरैर्भीमविक्रमैः । नादेयं च फलं तस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥२२॥
दुरासदा हि ते वीराः सत्त्ववन्तो महाबलाः । फलमूलानि ते तत्र रक्षन्ते भीमविक्रमाः ॥२३॥
तत्र यत्नश्च कर्तव्यो मार्गितव्या च जानकी । नहि तेभ्यो भयं किंचित्कपित्वमनुवर्ततताम् ॥२४॥
तत्र वैदूर्यवर्णाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः । नानाद्रुमलताकीर्णो वज्रो नाम महागिरिः ॥२५॥
श्रीमान्समुदितस्तत्र योजनानां शतं समम् । गुहास्तत्र विचेतव्याः प्रयत्नेन प्लवंगमाः ॥२६॥
चतुर्भागे समुद्रस्य चक्रवान्नाम पर्वतः । तत्र चक्रं सहस्रारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२७॥
तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् । आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥२८॥
तत्र सानुषु रम्येषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२९॥
योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः । सुवर्णशृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ॥३०॥
तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम् । तस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥३१॥
तत्र सानुषु रम्येषु विशालासु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३२॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं काञ्चनान्तरदर्शनम् । पर्वतः सर्वसौवर्णो धाराप्रस्रवणायुतः ॥३३॥
तं गजाश्च वराहाश्च सिंहव्याघ्राश्च सर्वतः । अभिगर्जन्ति सततं तेन शब्देन दर्पिताः ॥३४॥

चौबीस करोड़ तपस्वी गन्धर्व रहते हैं । अग्निकी ज्वालाके समान एकत्र होकर रहते हैं ॥२१॥ पराक्रमी वानरोंको उनके पास नहीं जाना चाहिए और उस स्थानसे कोई फल भी नहीं लेना चाहिए ॥२२॥ क्योंकि अत्यन्त वेगवान् महाबली वे गन्धर्व उस पर्वतपर फलमूलकी रक्षा करते हैं । वहां तुम लोगोंको अपना उद्योग करना चाहिए । जानकी को ढूँढना चाहिए। वानर रूपमें रहनेपर उन गंधर्वों से तुम लोगोंको किसी प्रकारका भय न होगा ॥२३,२४॥ वहां वैदूर्य मणिके समान वर्णवाला, हीराके समान कठिन, अनेक वृक्षों और लताओंसे युक्त वज्र नामका एक महापर्वत है । वह सुन्दर है, वह सौ योजनका है, वानरोंको प्रयत्न पूर्वक उसकी गुफाएं ढूँढनी चाहिएँ ॥२६॥ समुद्रके चौथे भागमें चक्रवा नामका पर्वत है जहां विश्वकर्माने हजार आरावाला चक्र बनाया था ॥२७॥ वहां पंचजन और हयग्रीव दानवको मारकर पुरुषोत्तम विष्णु चक्र और शंख वहांसे ले आए ॥२८॥ उसके शिखरोंपर विशाल गुहाओंमें, रावणके साथ वैदेही को ढूँढो ॥२९॥ अगाध समुद्रमें सोनेके शृंगवाला चौसठ योजन लम्बा वराह नामक पर्वत है ॥३०॥ वहां प्राग्ज्योतिष नामका सुवर्णका नगर है, उसमें दुष्टात्मा नरक नामका दानव रहता है ॥३१॥ उसके रमणीय शिखरों पर और विशाल गुहाओंमें रावणके साथ सीताको ढूँढो ॥३२॥ जिसके भीतर सोना दिखायी पड़ता है उस पर्वतराजसे आगे बढ़नेपर समस्त सुवर्णमय पर्वत मिलेगा । जिसमें हजारों झरने हैं ॥३३॥ उस पर्वतपर गज, सूअर, सिंह और बाघ अपने शब्दकी प्रतिध्वनिसे गर्वित होकर गर्जन करते हैं ॥३४॥ जिसमें हरे घोड़ेवाले इन्द्रका अभिषेक देवताओंने किया था वह मेघ नाम

यस्मिन्हरिहयः श्रीमान्महेन्द्रः पाकशासनः । अभिषिक्तः सुरैराजा मेघो नाम स पर्वतः ॥३५॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं महेन्द्रपरिपालितम् । षष्टिं गिरिसहस्राणि काञ्चनानि गमिष्यथ ॥३६॥
तरुणादित्यवर्णानि भ्राजमानानि सर्वशः । जातरूपमयैर्वृक्षैः शोभितानि सुपुष्पितैः ॥३७॥
तेषां मध्ये स्थितो राजा मेरुरुत्तमपर्वतः । आदित्येन प्रसन्नेन शैलो दत्तवरः पुरा ॥३८॥
तेनैवमुक्तः शैलेन्द्रः सर्व एव त्वदाश्रयाः । मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति दिवा रात्रौ च काञ्चनाः॥३९॥
त्वयि ये चापि वत्स्यन्ति देवगन्धर्वदानवाः । ते भविष्यन्ति भक्ताश्च प्रभया काञ्चनप्रभाः॥४०॥
विश्वेदेवाश्च वसवो मरुतश्च दिवौकसः । आगत्य पश्चिमां संध्यां मेरुमुत्तमपर्वतम् ॥४१॥
आदित्यमुपतिष्ठन्ति तैश्च सूर्योऽभिपूजितः । अदृश्यः सर्वभूताना मस्तं गच्छति पर्वतम् ॥४२॥
योजनानां सहस्राणि दश तानि दिवाकरः । मुहूर्तार्धेन तं शीघ्रमभियाति शिलोच्चयम् ॥४३॥
शृङ्गे तस्य महद्दिव्यं भवनं सूर्यसंनिभम् । प्रासादगणसंबाधं विहितं विश्वकर्मणा ॥४४॥
शोभितं तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः । निकेतं पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥४५॥
अन्तरा मेरुमस्तं च तालो दशशिरा महान् । जातरूपमयः श्रीमान्भ्राजते चित्रवेदिकः ॥४६॥
तेषु सर्वेषु दुर्गेषु सरःसु च सरित्सु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥४७॥
यत्र तिष्ठति धर्मज्ञस्तपसा स्वेन भावितः । मेरुसावर्णिरित्येष ख्यातो वै ब्रह्मणा समः ॥४८॥
प्रष्टव्यो मेरुसावर्णिर्महर्षिः सूर्यसंनिभः । प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रवृत्तिं मैथिलीं प्रति ॥४९॥

पर्वत है ॥३५॥ इन्द्र परिपालित उस पर्वतसे आगे बढ़ने पर साठ हजार सोनेके पर्वतोंके पास आपलोग जायँगे ॥३६॥ वे पर्वत सूर्यके समान चमकीले हैं, फूले हुए सोनेके वृक्षोंसे सुशोभित हैं ॥३७॥ उन पर्वतोंके बीचमें मेरु नामका श्रेष्ठ पर्वत स्थित है जो राजा है। प्रसन्न सूर्यने उसे पहले वर दिया था ॥३८॥ पर्वतके कहने पर सूर्यने भी उससे कहा, दिन और रातमें जो कोई तुम्हारे आश्रममें रहेगा वह सुवर्णमय हो जायगा ॥३९॥ देवता गन्धर्व और दानव जो कोई तुमपर निवास करेगा, वह सुवर्णकी प्रभावाला तथा मेरा भक्त हो जायगा ॥४०॥ विश्वेदेव, वसु, मरुत आदि उस उत्तम पर्वत मेरु पर आकर सायंकालमें सूर्यका उपस्थान करते हैं ॥४१॥ उनके द्वारा पूजित होने पर सूर्यदेव, सब प्राणियोंके अदृश्य होकर अस्ताचल पर्वत पर चले जाते हैं ॥४२॥ सूर्य दसहजार योजन आधे मुहूर्तमें शीघ्र उस पर्वतपर चले जाते हैं ॥४३॥ उस पर्वतके शिखर पर सूर्यके समान उज्ज्वल विश्वकर्माका बनाया हुआ भवन है, जिसमें बहुतसी अटारियाँ हैं ॥४४॥ चित्र विचित्रके वृक्षोंसे जिन पर अनेक पक्षी रहते हैं वह गृह सुशोभित हैं ॥४५॥ पाशधारी महात्मा वरुणका वह गृह है। मेरु और अस्ताचलके बीचमें सुवर्णका एक ताल वृक्ष है, उसके दस सिर हैं। नीचे चित्रित वेदी है ॥४६॥ उन सब स्थानोंमें, तालाबोंमें, नदियोंमें, रावणके साथ सीताको ढूंढो ॥४७॥ अपनी तपस्यासे प्रकाशित धर्मज्ञ मेरुसावर्णि नामसे प्रसिद्ध जहाँ रहते हैं जो ब्रह्माके समान हैं ॥४८॥ महर्षि मेरुसावर्णिको शिरसे प्रणाम कर उनसे जानकीका पता पूछना

एतावज्जीवलोकस्य भास्करो रजनीक्षये । कृत्वा वितिमिरं सर्वमस्तं गच्छति पर्वतम् ॥५०॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः । अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५१॥
अवगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च । अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत ॥५२॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम । सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति ॥५३॥
श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्टकारिभिः । गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः ॥५४॥
भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्व एव हि । प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम् ॥५५॥
कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा । अतोऽन्यदपि यत्कार्यं कार्यस्यास्य प्रियं भवेत् ।
संप्रधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम् । ॥५६॥

ततः सुषेणप्रमुखाः प्लवंगमाः सुग्रीववाक्यं निपुणं निशम्य ।
आमन्त्र्य सर्वे प्लवगाधिपास्ते जग्मुर्दिशं तां वरुणाभिगुप्ताम् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

तृचत्वारिंशः सर्गः ४३

ततः संदिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम् । वीरं शतबलं नाम वानरं वानरेश्वरः ॥ १ ॥
उवाच राजा सर्वज्ञः सर्ववानरसत्तमः । वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तदा ॥ २ ॥

॥४९॥ रात्रिके समाप्त होने पर प्राणियोंके लिए इतने स्थानोंका अन्धकार दूर कर सूर्य अस्ताचलको जाता है ॥५०॥ हे वानरश्रेष्ठो, यहां तकका स्थान वानरोंके जानेके योग्य है, इसके बादकी भूमि सूर्य-रहित है, वहां जानेकी भी कोई व्यवस्था नहीं है । इसके आगेकी भूमिके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता ॥५१॥ अस्ताचल पर्वत तक जाकर सीता और रावणके घरका पता लगाकर, महीना पूरा होनेके पहले ही तुम लोग लौट आओ । महीनाके बाद जो ठहरेगा वह मेरे द्वार मारा जायगा । आप लोगोंके साथ वीर मेरे श्वसुर भी जायँगे ॥५२,५३॥ आप लोग इनकी बातें सुनिएगो । इनकी आज्ञा मानिएगा, क्योंकि महाबली ये मेरे श्वसुर आप लोगोंसे बड़े हैं ॥५४॥ आपलोग भी पराक्रमी हैं, आपलोग स्वयं व्यवस्था कर सकते हैं । संचालन करनेके लिए श्वसुरको आप लोग नियत करें और पश्चिम दिशाको देखें ॥५५॥ इस तरह उपकारका बदला देकर हम लोग कृत-कृत्य हो सकेंगे । इसके अतिरिक्त भी इस कार्यकी सिद्धिके लिए जो उचित हो वह विचारकर देशकालके अनुसार आपलोग कीजिएगा ॥५६॥ सुषेण आदि वानर सुग्रीवके वचन सुनकर, सुग्रीवकी आज्ञा लेकर सब वानरसेनापति वरुणपालित पश्चिम दिशाको गए ॥५७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

सुग्रीव पश्चिम दिशाका सन्देश अपने श्वसुरको देकर शतबल नामक वानरसे बोले, ॥१॥ वह वचन रामचन्द्रका तथा अपना हितकरने वाला था ॥२॥ सौ हजार आपके सामने वानरोंको साथ लेकर

वृतः शतसहस्रेण त्वद्विधानां वनौकसाम् । वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रविष्टः सर्वमन्त्रिभिः ॥ ३ ॥
दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसिकाम् । सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ४ ॥
अस्मिन्कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये । ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वर॥ ५ ॥
कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना । तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत्॥ ६ ॥
अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत् । तस्य स्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः॥ ७ ॥
एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा । तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥
अयं हि सर्वभूतानां मान्यस्तु नरसत्तमः । अस्मासु च गतः प्रीतिं रामः परपुरंजयः ॥ ९ ॥
इमानि वहुदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च । भवन्तः परिमार्गन्तु बुद्धिविक्रमसंपदा ॥१०॥
तत्र म्लेच्छान्पुलिन्दांश्च शूरसेनांस्तथैव च । प्रस्थलान्भरतांश्चैव कुरूंश्च सह मद्रकैः ॥११॥
काम्बोजयवनांश्चैव शकानां पत्तनानि च । अन्वीक्ष्य वरदांश्चैव हिमवन्तं विचिन्वथ ॥१२॥
लोध्रपद्मकखण्डेषु देवदारुवनेषु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१३॥
ततः सोमाश्रमं गत्वा देवगन्धर्वसेवितम् । कालं नाम महासानुं पर्वतं तं गमिष्यथ ॥१४॥
महत्सु तस्य शैलेषु पर्वतेषु गुहासु च । विचिन्वत महाभागां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥१५॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमगर्भं महागिरिम् । ततः सुदर्शनं नाम पर्वतं गन्तुमर्हथ ॥१६॥
ततो देवसखा नाम पर्वतः पतगालयः । नानापक्षिसमाकीर्णो विविधद्रुमभूषितः ॥१७॥

सूर्यपुत्र, सब मन्त्रियोंको साथ लेकर हिमालय पर्वतसे शोभित उत्तर दिशामें आप जांय और यशस्विनी रामचन्द्रकी स्त्रीको ढूँढ़ें ॥३,४॥ इस कार्यके सिद्ध होने पर और रामचन्द्रके प्रिय कार्य करने पर हम-लोग ऋणमुक्त होंगे और कृतार्थ होंगे ॥५॥ रामचन्द्रने हमलोगोंका प्रिय कार्य किया है, उसका यदि हम लोग बदला दें तो हमारा जीवन सफल हो ॥६॥ जिसने उपकार नहीं किया है, वैसे प्रार्थीका भी यदि कोई मनोरथ सिद्ध करे तो उसका जन्म सफल हो जाता है, फिर उपकार करनेवालोंकी तो बात ही क्या ॥७॥ इस विचारके अनुसार हमारा हित चाहनेवाले आप लोगोंको जानकीको ढूँढ़नेका प्रयत्न करना चाहिए ॥८॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्र सब प्राणियोंके मान्य हैं और हम लोगोंसे प्रेम रखते हैं ॥९॥ आप लोग अनेक वनोंको, नदियोंको और पर्वतोंको ढूंढे । आप लोग बुद्धिमान और पराक्रमी हैं ॥१०॥ म्लेच्छ पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, मद्रदेशके साथ कुरु, काम्बोज, यवन तथा शकोंके नगर, वरद देशोंको ढूंढकर हिमवान पर्वत पर ढूँढो ॥११,१२॥ लोध्र और चन्दनके वनमें तथा देवदारुके वनमें रावणके साथ सीताको ढूँढो ॥१३॥ देवता और गंधर्वसे युक्त सोमाश्रममें जाकर बड़े शिखरवाले काल नामक पर्वतपर तुम लोग जाओ ॥१४॥ उन बड़े पर्वतों पर और गुहाओंमें रामपत्निको ढूँढो ॥१५॥ उस सुवर्णगर्भ बड़े पर्वतके आगे जानेपर सुदर्शन नामके पर्वत पर तुमलोग पहुँचोगे ॥१६॥ अनन्तर देवसखा नामक पर्वत तुम लोगोंको मिलेगा, जो पक्षियोंका निवासस्थान है। जहां अनेक पक्षी भरे रहते हैं और अनेक प्रकारके वृक्ष हैं ॥१७॥ उसके सुवर्णवनमें झरनों और

तस्य काञ्चनखण्डेषु निर्दरेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१८॥
तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनम् । अपर्वतनदीवृत्तं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥१९॥
तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम् । कैलासं पाण्डुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ ॥२०॥
तत्र पाण्डुरमेघाभं जाम्बूनदपरिष्कृतम् । कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२१॥
विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला । हंसकारण्डवाकीर्णा अप्सरोगणसेविता ॥२२॥
तत्र वैश्रवणो राजा सर्वलोकनमस्कृतः । धनदो रमते श्रीमान्गुह्यकैः सह यक्षराट् ॥२३॥
तस्य चन्द्रनिकाशेषु पर्वतेषु गुहासु च । रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥२४॥
क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम् । अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम् ॥२५॥
वसन्ति हि महात्मानस्तत्र सूर्यसमप्रभाः । देवैरभ्यर्थिताः सम्यग्देवरूपा महर्षयः ॥२६॥
क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च । दर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः ॥२७॥
अवृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् । न गतिस्तत्र भूतानां देवानां न च रक्षसाम् ॥२८॥
स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः । क्रौञ्चं गिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः ॥२९॥
मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयंकृतम् । मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकंदरः ॥३०॥
स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु । तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ॥३१॥
सिद्धा वैखानसा यत्र वालखिल्याश्च तापसाः । वन्दितव्यास्ततःसिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ॥३२॥

गुहाओंमें सीताके साथ रावणको ढूँढो ॥१८॥ वहांसे आगे बढ़ने पर सौ योजनका मैदान तुम लोगोंको मिलेगा । इसमें नदी, वृक्ष और पर्वत कुछ भी नहीं है, कोई प्राणी भी नहीं रहता ॥१९॥ भयंकर उस मैदानके पार जाने पर श्वेत कैलाश पर्वतको पाकर तुम लोग प्रसन्न होओगे ॥२०॥ वहां श्वेत-मेघके समान सोनेसे सजाया गया, विश्वकर्माने कुबेरका भवन बनाया है ॥२१॥ वहां विशाल एक तालाब है, जिसमें खूब कमल हैं. हंस आदि पक्षी वहां भरे रहते हैं । अप्सराएं उसको शोभित करती हैं ॥२२॥ वहां वैश्रवण (कुबेर) राजा, प्राणियोंके द्वारा पूजित, धनद, यक्षोंके साथ रहते हैं ॥२३॥ उस कैलाशके चन्द्र-सदृश पर्वतों पर रावणके साथ सीताको तुम लोग ढूंढ़ो ॥२४॥ क्रौंचगिरि पर जाकर उसकी गुहामें तुम लोग जाओ । सावधान होकर जाना, क्योंकि उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है ॥२५॥ वहां सूर्यके समान तेजस्वी महात्मा रहते हैं । देवता भी जिनकी पूजा करते हैं वे स्वयं देवरूप हैं ॥२६॥ क्रौंचपर्वतकी दूसरी गुहाओंको, शिखरों और छोटे छोटे शिखरों और बीचकी भूमिको अच्छी तरह तुम लोग देख कर ढूंढो ॥२७॥ इसके आगे मानसपर्वत है, जिसके देखनेसे ही मनोरथकी पूर्ति होती है, जहां पक्षी रहते हैं । वहां प्राणियों, देवों तथा राक्षसोंकी गति नहीं है, अर्थात् ये लोग वहां नहीं जा सकते ॥२८॥ तुम लोग उस पर्वतको, उसके पत्थरोंको तथा उसके पासवाले पर्वतोंको ढूँढो । क्रौंच पर्वतके आगे तुम लोगोंको मैनाक पर्वत मिलेगा ॥२९॥ स्वयं मयदानव ने वहां अपना घर बनाया हैं । वहां शिखरों, पत्थरों और कन्दराओंमें ढूँढना ॥३०॥ घोड़ेके समान मुंहवाली स्त्रियोंके भी वहां घर हैं । वहांसे आगे सिद्धोंके आश्रम हैं ॥३१॥ सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य तपस्वी वहां रहते हैं । उन निष्पाप, सिद्ध

प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः । हिमपुष्करसंछन्नं तत्र वैखानसं सरः ॥३३॥
तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितं शुभैः । औपवाह्यः कुबेरस्य सार्वभौम इति स्मृतः ॥३४॥
गजः पर्येति तं देशं सदा सह करेणुभिः । तत्सरः समतिक्रम्य नष्टचन्द्रदिवाकरम् ॥
अनक्षत्रगणं व्योम निष्पयोदमनादितम् । ॥३५॥
गभस्तिभिरिवार्कस्य स तु देशः प्रकाश्यते । विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैः स्वयंप्रभैः ॥३६॥
तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदा नाम निम्नगा । उभयोस्तीरयोस्तस्याः कीचका नाम वेणवः ॥३७॥
ते नयन्ति परं तीरं सिद्धान्प्रत्यानयन्ति च । उत्तराः कुरवस्तत्र कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥
ततः काञ्चनपद्माभिः पद्मिनीभिः कृतोदकाः । ॥३८॥
नीलवैदूर्यपत्राढ्या नद्यस्तत्र सहस्रशः । रक्तोत्पलवनैश्चात्र मण्डिताश्च हिरण्मयैः ॥३९॥
तरुणादित्यसंकाशा भान्ति तत्र जलाशयाः । महार्हमणिरत्नैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ॥४०॥
नीलोत्पलवनैश्चित्रैः स देशः सर्वतो वृतः । निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ॥४१॥
उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः । सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ॥४२॥
जातरूपमयैश्चापि हुताशनसमप्रभैः । नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ॥४३॥
दिव्यगन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान्स्रवन्ति च । नानाकाराणि वासांसि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ॥४४॥
मुक्तावैदूर्यचित्राणि भूषणानि तथैव च । स्त्रीणां यान्यनुरूपाणि पुरुषाणां तथैव च ॥४५॥

तपस्वियोंको तुम लोग प्रणाम करना ॥३२॥ विनीत होकर उनसे सीताका पता पूछना । वहां वैखानस नामका एक तालाब है ॥३३॥ जिसमें सोनेके कमल हैं । सूर्यके समान उज्ज्वल और सुन्दर हंस वहां विचरते हैं । कुबेरकी सवारीका सार्वभौम नामक हाथी अपनी हथिनीके साथ वहां आता है ॥३४॥ उसके आगेकी भूमि चन्द्रमा और सूर्यसे रहित है । वहांके आकाशमें न नक्षत्र हैं और न मेघ ॥३५॥ फिर भी वहां विश्राम करनेवाले तपसिद्ध स्वयं प्रभासे, प्रभावान महर्षियोंकी प्रभासे, सूर्यकी किरणोंके समान वह स्थान प्रकाशित होता है ॥३६॥ वहांसे आगे बढ़ने पर शैलोदा नामकी नदी मिलेगी, उसके दोनों तीरों पर कीचक नामके बाँस है ॥३७॥ वे बाँस आपसमें मिले हुए हैं, जिससे सिद्ध लोग नदीके इस पार उस पार आते जाते हैं । वहीं पुण्यात्माओंकी निवासभूमि उत्तर कुरुदेश है । सोनेके कमलवाले तालाबोंसे वहांवालोंको जल मिलता है ॥३८॥ वहां नील वैदूर्यसे युक्त हजारों नदियां हैं, सुवर्णमय लाल कमलोंसे जो शोभित हैं ॥३९॥ दामी मणियों और रत्नों तथा सुवर्णकेशर कमलोंसे युक्त आदित्यके समान प्रकाशमान जलाशय वहां है ॥४०॥ उस देशमें नीले कमलका वन है । गोल मोतियों, बहुमूल्य मणियोंसे युक्त, ऊँचे सुवर्णमय तीरोंसे युक्त वहांकी नदियां है ॥४१॥ अनेक रत्नोंसे युक्त बड़े बड़े पर्वत उन नदियोंमें वर्तमान हैं ॥४२॥ जो सुवर्णमय तथा अग्नितुल्य हैं, उन पर्वतों पर सदा पुष्प फल मिलते है और पक्षी रहते हैं ॥४३॥ दूसरे पर्वत दिव्य गन्ध रस और स्पर्शसे युक्त हैं, सब कामोंको सिद्ध करते हैं और अनेक प्रकारके वस्त्र उत्पन्न करते हैं ॥४४॥ मोती-वैदूर्य आदि रत्नोंसे चित्रित भूषण वे पर्वत

सर्वर्तुसुखसेव्यानि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः। महार्हमणिचित्राणि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ॥४६॥
शयनानि प्रसूयन्ते चित्रास्तरणवन्ति च। मनःकान्तानि माल्यानि फलन्त्यत्रापरे द्रुमाः॥४७॥
पानानि च महार्हाणि भक्ष्याणि विविधानि च। स्त्रियश्च गुणसंपन्ना रूपयौवनलक्षिताः ॥४८॥
गन्धर्वाः किंनराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा। रमन्ते सततं तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥४९॥
सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे रतिपरायणाः। सर्वे कामार्थसहिता वसन्ति सह योषितः ॥५०॥
गीतवादित्रनिर्घोषः सोत्कृष्टहसितस्वरैः। श्रूयते सततं तत्र सर्वभूतमनोरमः ५१॥
तत्र नामुदितः कश्चिन्नात्र कश्चिदसत्प्रियः। अहन्यहनि वर्धन्ते गुणास्तत्र मनोरमाः ॥५२॥
तमतिक्रम्य शैलेन्द्रमुत्तरः पयसां निधिः। तत्र सोमगिरिर्नाम मध्ये हेममयो महान् ॥५३॥
स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते। सूर्यलक्ष्याभिविज्ञेयस्तपतेव विवस्वता ॥५४॥
भगवांस्तत्र विश्वात्मा शंभुरेकादशात्मकः। ब्रह्मा वसति देवेशो ब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥५५॥
न कथंचन गन्तव्यं कुरूणामुत्तरेण वः। अन्येषामपि भूतानां नातुक्रामति वै गतिः ॥५६॥
स हि सोमगिरिर्नाम देवानामपि दुर्गमः। तमालोक्य ततः क्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥५७॥
एतावद्वानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुंगवाः। अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥५८॥
सर्वमेतद्विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम्। यदन्यदपि नोक्तं च तत्रापि क्रियतां मतिः ॥५९॥

उत्पन्न करते हैं जो स्त्रियों और पुरुषोंके योग्य होते है ॥४५॥ कई पर्वत सब ऋतुओंमें सुखपूर्वक उपयोगमें आनेवाली वस्तु उत्पन्न करते हैं। कई पर्वत बहुमूल्य मणि आदि उत्पन्न करते हैं ॥४६॥ अच्छे बिछौनेवाले पलंग, मनको प्रिय लगने वाली मालाएँ यहांके वृक्ष उत्पन्न करते हैं ॥४७॥ बहुमूल्य पीनेकी वस्तु, अनेक प्रकारके भोजन, रूप-गुण-यौवनसे युक्त स्त्रियोंको यहांके वृक्ष उत्पन्न करते हैं ॥४८॥ गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर स्त्रियोंके साथ यहां सदा रमण करते हैं ॥४९॥ सभी पुण्यात्मा, सभी मनोरथयुक्त स्त्रियोंके साथ वहां रहते है और प्रेमपरायण हो जाते हैं ॥५०॥ गाने बजानेका शब्द उत्तम हँसीके साथ सबको प्रिय, यहां सदा सुनायी पड़ता है ॥५१॥ वहां कोई अप्रसन्न नहीं रहता, कोई बुरे कर्म नहीं करता, वहां दिन दिन उत्तम गुण बढ़ते हैं ॥५२॥ वहांसे आगे जाने पर उत्तम समुद्र मिलेगा, जिसके बीचमें सुवर्णमय सोमगिरि नामक पर्वत मिलेगा ॥५३॥ इन्द्रलोक, ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवता आकाश तक फैले हुए उस पर्वतको सदा देखते है। वह देश सूर्य-हीन है, सूर्यके न रहने पर भी उस पर्वतके प्रकाशसे सूर्यके समान प्रकाश होता है ॥५४॥ वहां, विश्वात्मा, एकादशमूर्ति भगवान शम्भु तथा ब्रह्मर्षियोंसे सेवित, देवेश ब्रह्मा निवास करते हैं ॥५५॥ उत्तर-कुरुके आगे तुम लोग किसी प्रकार नहीं जा सकते, और प्राणियोंका भी वहां जाना सम्भव नहीं है ॥५६॥ सोमगिरि पर जाना, देवताओंके लिए भी कठिन है, उस पर्वतको देखकर तुम लोग शीघ्र लौट आओ ॥५७॥ हे वानरो, यहीं तक वानर जा सकते हैं, इसके आगेकी भूमि सूर्यरहित है, अतएव वहां आने जानेकी व्यवस्था नहीं है। अतएव उसके बाद मुझे मालूम नहीं है ॥५८॥ जो मैंने बतलाया है, उन सब स्थानोंको ढूंढना, जो मैंने

ततः कृतं दाशरथेर्महत्प्रियं महत्तरं चापि ततो मम प्रियम् ।
कृतं भविष्यत्यनिलानलोपमा विदेहजादर्शनजेन कर्मणा ॥६०॥
ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः ।
चरिष्यथोर्वीं प्रति शान्तशात्रवाः सहप्रिया भूतधराः प्लवंगमाः ॥६१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् । स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥
अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम् । सुग्रीवः परमप्रीतः प्रभुः सर्ववनौकसाम् ॥ २ ॥
न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव ॥ ३ ॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥ ४ ॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे । पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ॥ ५ ॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते । तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥ ६ ॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥ ७ ॥
ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति । विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥ ८ ॥

नहीं बतलाया वहां भी प्रयत्न करना ॥५९॥ अग्नि और वायुके समान वानरो! सीताके मिल जाने पर रामचन्द्रका और मेरा बड़ा प्रिय कार्य होगा ॥६०॥ वानरो ! रामचन्द्रका प्रिय कार्य करने पर बड़े उत्तम और मनोरम पदार्थोंसे मैं आप लोगोंको सन्तुष्ट करूंगा । आपका कोई शत्रु नहीं रह जायगा । आप स्त्रियोंके साथ मुझसे जीविका पावेंगे और प्रसन्नतापूर्वक पृथिवीमें भ्रमण करेंगे ॥६१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तेंतालीसवां सर्ग समाप्त ।



सुग्रीव हनुमानसे सब बातें बहुत समझा कर बोले, क्योंकि सुग्रीवको विश्वास था कि हनुमान ही कार्य सिद्ध करेंगे ॥१॥ सब वानरोंके स्वामी सुग्रीव प्रसन्न होकर वायुपुत्र, पराक्रमी हनुमानसे बोले, ॥२॥ हे वानरश्रेष्ठ, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश स्वर्ग अथवा जलमें तुम्हारी गतिकी रोक नहीं है ॥३॥ असुर, गंधर्व, नाग, नर, देवता, सागर, पर्वत आदिके सब लोक तुम्हें मालूम हैं ॥४॥ गति, वेग, तेज और लघुता ये सब अपने पराक्रमी पिता वायुके समान तुममें है ॥५॥ तुम्हारे समान तेजस्वी कोई प्राणी पृथिवीमें नहीं है, इस कारण जिस प्रकार सीता मिलें, इसका निश्चय तुम्हीं करो ॥६॥ हनुमान, तुममें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुवर्तन और नीतिका ज्ञान वर्तमान है ॥७॥ कार्यसिद्धिका भार सब हनुमान पर रखा जाता है यह देखकर रामचन्द्र हनुमानके विषयमें विचार करने लगे ॥८॥ सुग्रीवका

सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः । निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने ॥ ९ ॥
तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः । भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥१०॥
तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम् । कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥११॥
ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् । अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥१२॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा । मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥१३॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः । सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥१४॥
स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥१५॥

स तत्प्रकर्षन्हरिणां महद्बलं बभूव वीरः पवनात्मजः कपिः ।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः शशीव नक्षत्रगणोपशोभितः ॥१६॥
अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः ।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥



हनुमानके विषयमें दृढ़ निश्चय है, अर्थात् हनुमान ही कार्य सिद्ध करेंगे ऐसा उनका विश्वास है, हनुमानका तो कार्य सिद्ध करनेके विषयमें और अधिक दृढ़ विश्वास है ॥९॥ इस प्रकार सुग्रीवके द्वारा भेजा जाने-वाला और पहलेका परीक्षित अर्थात् इसने पहले अनेक कार्य सिद्ध किए हैं और स्वामीका इस पर विश्वास है, अतएव अवश्य ही इसके द्वारा कार्यसिद्धि होगी ॥१०॥ महा तेजस्वी रामचन्द्र कार्य सिद्ध करनेमें श्रेष्ठ हनुमानको देखकर कृतार्थ हुए । अर्थात् अपने कार्य सिद्ध होनेका उन्हें विश्वास हुआ । वे प्रसन्न हुए । उनकी इन्द्रियां तथा मन प्रसन्न हुआ ॥११॥ अनन्तर प्रसन्न होकर रामचन्द्रने अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अंगूठी सीताके लिए चिन्ह दिया ॥१२॥ इस चिन्हसे सीता तुमको मेरे यहांसे आया हुआ जानेगी और तुमको देखकर घबड़ाएगी नहीं ॥१३॥ वीर, तुम्हारा दृढ़ विक्रम, उद्योग और सुग्रीवका सन्देश ये तुम्हारी कार्यसिद्धि बतला रहे हैं ॥१४॥ हनुमान वह अंगूठी लेकर हाथ जोड़ कर उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रस्थित हुए ॥१५॥ वायुपुत्र कपि उस बहुत बड़ी सेनाको ले जाते हुए मेघ-हीन आकाश-मण्डल में, विशुद्धमण्डल नक्षत्रोंसे शोभित चन्द्रमाके समान मालूम हुए ॥१६॥ हे वायुपुत्र, अतिबली हनुमान, हम तुम्हारे बलके आश्रित हैं, सीता जिस प्रकार प्राप्त हो, वैसा बड़े पराक्रमसे युक्त होकर तुम करो ॥१७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौवालीसवां सर्ग समाप्त ।



पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ३७

सर्वांश्चाहूय सुग्रीवः प्लवगान्प्लवगर्षभः। समस्तांश्चाब्रवीद्राजा रामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥
एवमेतद्विचेतव्यं भवद्भिर्वानरोत्तमैः। तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुंगवाः ॥ २ ॥
शलभा इव संच्छाद्य मेदिनीं संप्रतस्थिरे। रामः प्रस्रवणे तस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥
प्रतीक्षमाणस्तं मासं सीताधिगमने कृतः। उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥
प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा। पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः ॥ ५ ॥
ताराङ्गदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः। अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥ ६ ॥
पश्चिमां च दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः। प्रतस्थे हरिशार्दूलो दिशं वरुणपालिताम् ॥ ७ ॥
ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथातथम्। कपिसेनापतिर्वीरो मुमोद सुखितः सुखम् ॥ ८ ॥
एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः। स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥
नदन्तश्चोन्नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः। क्ष्वेडन्तो धावमानाश्च विनदन्तो महाबलाः ॥१०॥
एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः। आनयिष्यामहे सीतां हनिष्यामश्च रावणम् ॥११॥
अहमेको वधिष्यामि प्राप्तं रावणमाहवे। ततश्चोन्मथ्य सहसा हरिष्ये जनकात्मजाम् ॥१२॥
वेपमानां श्रमेणाद्य भवद्भिः स्थीयतामिति। एक एवाहरिष्यामि पातालादपि जानकीम् ॥१३॥
विधमिष्याम्यहं वृक्षान्दारयिष्याम्यहं गिरीन्। धरणीं दारयिष्यामि क्षोभयिष्यामि सागरान्॥१४॥

वानरोंके राजा सुग्रीव सब वानरोंको एकत्र करके रामचन्द्रकी कार्य-सिद्धिके लिए उनसे बोले, ॥१॥ आपलोगोंसे जैसा मैंने कहा है उसी प्रकार अपनी अपनी दिशाओंमें सीताको आप ढूंढें। स्वामीकी यह कठोर आज्ञा सुनकर वानर टिड्डी दलके समान समस्त पृथिवीमें फैल गये। और लक्ष्मणके साथ वहीं प्रस्रवण पर्वत पर, सीताका पता लगानेके लिए जो महीना निश्चित किया गया था उसकी प्रतीक्षा करते हुए, रामचन्द्र ठहरे। हिमालयसे युक्त उत्तर दिशामें वीर शतबलीने शीघ्रही प्रस्थान किया। वानर सेनापति विनत पूर्व दिशामें गया ॥२,३,४,५॥ तार, अंगद आदिके साथ वायुपुत्र हनुमान अगस्त्यकी दिशा दक्षिणमें गए ॥६॥ वरुण-पालित भयानक पश्चिम दिशामें, वानरश्रेष्ठ सुषेण गए ॥७॥ इस प्रकार वानरोंको सब दिशाओंमें यथायोग्य भेजकर वीर सुग्रीव प्रसन्न हुए। पहलेसे राज्य पाकर सुखी थे ही अब और सुखी हुए ॥८॥ इस प्रकार सुग्रीवकी आज्ञा पाकर वानरसेनापति अपनी अपनी दिशाकी ओर शीघ्रतापूर्वक चले ॥९॥ किल किल करते हुए, चीत्कार करते हुए, गर्जते हुए, सिंहनाद करते हुए, दौड़ते हुए, अनेक तरहकी विकृत बोली बोलते हुए सुग्रीवकी आज्ञासे सब वानरसेनापति चले। हम सीताको लावेंगे और रावणको मारेंगे, ॥१०,११॥ मैं अकेलाही युद्धमें रावणको मारूँगा, अन्य राक्षसोंको मार कर शीघ्र जानकीको ले आऊँगा, ॥१२॥ मैं अकेलाही पातालसे भी परिश्रमके कारण कांपती हुई सीताको ले आऊँगा, आप लोग यहीं ठहरें, वृक्षोंको मैं तोड़ दूंगा, पर्वतको फोड़ दूंगा, पृथिवीको फाड़

अहं योजनसंख्यायाः प्लवेयं नात्र संशयः । शतयोजनसंख्यायाः शतं समधिकं ह्यहम् ॥१५॥
भूतले सागरे वापि शैलेषु च वनेषु च । पातालस्यापि वा मध्ये न ममाच्छिद्यते गतिः॥१६॥
इत्येकैकस्तदा तत्र वानरा बलदर्पिताः । ऊचुश्च वचनं तस्य हरिराजस्य संनिधौ ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

गतेषु वानरेन्द्रेषु रामः सुग्रीवमब्रवीत् । कथं भवान्विजानीते सर्वं वै मण्डलं भुवः ॥ १ ॥
सुग्रीवश्च ततो राममुवाच प्रणतात्मवान् । श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये विस्तरेण वचो मम ॥ २ ॥
यदा तु दुन्दुभिं नाम दानवं महिषाकृतिम् । प्रतिकालयते वाली मलयं प्रति पर्वतम् ॥ ३ ॥
तदा विवेश महिषो मलयस्य गुहां प्रति । विवेश वाली तत्रापि मलयं तज्जिघांसया ॥ ४ ॥
ततोऽहं तत्र निक्षिप्तो गुहाद्वारि विनीतवत् । न च निष्क्रामते वाली तदा संवत्सरे गते ॥ ५ ॥
ततः क्षतजवेगेन आपुपूरे तदा बिलम् । तदहं विस्मितो दृष्ट्वा भ्रातुः शोकविषार्दितः ॥ ६ ॥
अथाहं गतबुद्धिस्तु सुव्यक्तं निहतो गुरुः । शिला पर्वतसंकाशा बिलद्वारि मया कृता ॥ ७ ॥
अशक्नुवन्निष्क्रमितुं महिषो विनशिष्यति । ततोऽहमागां किष्किन्धां निराशस्तस्य जीविते॥८॥
राज्यं च सुमहत्प्राप्य तारां च रुमया सह । मित्रैश्च सहितस्तस्य वसामि विगतज्वरः ॥ ९ ॥

दूंगा और समुद्रोंको क्षुभित कर दूंगा ॥१३,१४॥ मैं सौ योजन तक कूद या तैर सकता हूँ, मैं सौ योजनसे भी अधिक कूद या तैर सकता हूँ ॥१५॥ पृथिवी, समुद्र, पर्वत, वन अथवा पातालमें भी मेरी गति नहीं रुकती—बलसे गर्वित वे एक एक वानर, सुग्रीवके पास इस प्रकार कहने लगे ॥१६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंतालीसवां सर्ग समाप्त ।



वानरोंके चले जाने पर रामचन्द्रने सुग्रीवसे कहा, आप समस्त पृथिवीमण्डलको कैसे जानते हैं ॥१॥ सुग्रीव नम्रशरीर होकर रामचन्द्रसे बोले—सब मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ,सुनिए॥२॥ जब भैंसेके रूपवाला दुंदुभी नाम दानवको वालि पीछा कर रहा था, उस समय वह मलयपर्वत पर गया । जब वह महिषरूपधारी मलयकी गुहामें गया, उसे मारनेके लिए वालि भी गया ॥३॥ उस समय गुहाके द्वार पर विनीतके समान मैं ठहरा रह गया । एक वर्ष बीतने पर भी वालि नहीं निकला ॥५॥ रुधिरके वेगसे वह गुफा भर गयी, उस समय विस्मित हुआ और भाईके शोकसे पीड़ित हुआ ॥६॥ मेरी बुद्धि मारी गयी, मैंने निश्चित किया कि मेरा बड़ा भाई वालि मारा गया । पर्वतके समान बड़ा पत्थर मैंने बिलके द्वार पर रख दिया ॥७॥ यह पत्थर मैंने इस विचारसे रखा कि महिष इस गुफासे निकल नहीं सकेगा और इसीमें मर जायगा । भाईके जीवनसे निराश होकर मैं किष्किन्धा लौट आया ॥८॥ बहुत बड़ा राज्य और ताराको पाकर रुमा तथा मित्रोंके साथ सुखपूर्वक मैं रहने लगा ॥९॥ वानरश्रेष्ठ वालि दानवको

आजगाम ततो वाली हत्वा तं वानरर्षभः । ततोऽहमददां राज्यं गौरवाद्भययन्त्रितः ॥१०॥
स मां जिघांसुर्दुष्टात्मा वाली प्रव्यथितेन्द्रियः । परिकालयते वाली धावन्तं सचिवैः सह ॥११॥
ततोऽहं वालिना तेन सोऽनुबद्धः प्रधावितः । नदीश्च विविधाः पश्यन्वनानि नगराणि च ॥१२॥
आदर्शतलसंकाशा ततो वै पृथिवी मया । अलातचक्रप्रतिमा दृष्टा गोष्पदवत्कृता ॥१३॥
पूर्वां दिशं ततो गत्वा पश्यामि विविधान्द्रुमान् । पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसि विविधानि च ॥१४॥
उदयं तत्र पश्यामि पर्वतं धातुमण्डितम् । क्षीरोदं सागरं चैव नित्यमप्सरसालयम् ॥१५॥
परिकाल्यमानस्तु तदा वालिनाभिद्रुतो ह्यहम् । पुनरावृत्य सहसा प्रस्थितोऽहं तदा विभो ॥१६॥
दिशस्तस्यास्ततो भूयः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् । विन्ध्यपादपसंकीर्णां चन्दनद्रुमशोभिताम् ॥१७॥
द्रुमशैलान्तरे पश्यन्भूयो दक्षिणतोऽपराम् । अपरां च दिशं प्राप्तो वालिना समभिद्रुतः ॥१८॥
स पश्यन्विविधान्देशानस्तं च गिरिसत्तमम् । प्राप्य चास्तं गिरिश्रेष्ठमुत्तरं संप्रधावितः ॥१९॥
हिमवन्तं च मेरुं च समुद्रं च तथोत्तरम् । यदा न विन्दे शरणं वालिना समभिद्रुतः ॥२०॥
ततो मां बुद्धिसंपन्नो हनुमान्वाक्यमब्रवीत् । इदानीं मे स्मृतं राजन्यथा वाली हरीश्वरः ॥२१॥
मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले । प्रविशेद्यदि वा वाली मूर्धास्य शतधा भवेत् ॥२२॥
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति । तत्र पर्वतमासाद्य ऋष्यमूकं नृपात्मज ॥२३॥

मारकर लौट आया उसके सम्मान तथा भयसे घबड़ा कर मैंने उसे राज्य लौटा दिया ॥१०॥ पर अत्यन्त क्रोधित होकर वह दुष्टात्मा वालि मुझे मारनेके लिए सचिवोंके साथ भागे हुए मेरा पीछा करने लगा ॥११॥ नदियों, नगरों और वनोंको देखता हुआ मैं भागता गया और वालि मेरा पीछा करता रहा । १२॥ मैंने दर्पणके शीशेके समान सब पृथिवी साफ-साफ देखी । कहीं अधिक वेगके कारण जलती हुए लकड़ीके चक्रके समान मालूम हुई और कहीं गोपदके समान छोटी दीख पड़ी ॥१३॥ पहले मैं पूर्व दिशामें गया, अनेक प्रकारके वृक्ष गुफाओंके साथ अनेक पर्वत, अनेक तालाब वहाँ मैंने देखे ॥१४॥ अनेक धातुओंसे युक्त उदयपर्वतको मैंने देखा । क्षीरोद सागरको देखा जहाँ सदा अप्सराएँ रहती हैं ॥१५॥ वालि मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहा था, इसलिए मैं और अधिक जोरसे दौड़ा । सहसा पुनः मुड़कर आगे बढ़ा ॥१६॥ उस दिशासे पुनः मैं दक्षिण दिशामें गया, उस दिशामें विन्ध्याचल पर्वतके छोटे-छोटे पर्वत हैं और चन्दनके वृक्ष हैं ॥१७॥ वृक्ष और पर्वतोंके बीचसे उस दिशाको देखता हुआ वहाँसे मैं दूसरी दिशा पश्चिम दिशामें वालिके पीछा करनेसे गया ॥१८॥ वहांके अनेक देशोंको तथा पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचल पर्वतको देखता हुआ मैं उत्तर दिशाको गया ॥१९॥ हिमवान्, मेरु तथा उत्तर समुद्र कहीं भी वालिके पीछा करनेसे मुझे शरण न मिला, तब बुद्धिमान् हनुमानने मुझसे कहा कि इस समय मुझे याद आया, मतंग मुनिने वानर राज वालिको शाप दिया है कि इस आश्रमकी भूमिमें यदि वालि आवे तो उसका मस्तक सौ टुकड़े हो जाय ॥२०,२१,२२॥ वहीं निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक हमलोग रह सकेंगे । महाराज, इस पर्वत पर

न विवेश तदा वाली मतङ्गस्य भयात्तदा। एवं मया तदा राजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम्॥
पृथिवीमण्डलं सर्वं गुहामस्यागतस्ततः। ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपिकुञ्जराः। व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा॥ १॥
ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च। नदीदुर्गांस्तथा देशान्विचिन्वन्ति समन्ततः॥ २॥
सुग्रीवेण समाख्याताः सर्वे वानरयूथपाः। तत्र देशान्विचिन्वन्ति सशैलवनकाननान्॥ ३॥
विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः। समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः॥४॥
सर्वर्तुकांश्च देशेषु वानराः सफलद्रुमान्। आसाद्य रजनीं शय्यां चक्रुः सर्वेष्वहःसु ते॥५॥
तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः। कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः॥ ६॥
विचित्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह। अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः॥ ७॥
दिशमप्युत्तरां सर्वां विविच्य स महाकपिः। आगतः सह सैन्येन भीतः शतवलिस्तदा॥ ८॥
सुषेणः पश्चिमामाशां विविच्य सह वानरैः। समेत्य मासे पूर्णे तु सुग्रीवमुपचक्रमे॥ ९॥

आनेसे मतंगके भयसे वालि यहां नहीं आया। उसी समय मैंने समस्त पृथिवीमण्डल देखा था। उसके बाद मैं इस गुहामें आया॥२३,२४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त।

जिन प्रधान-प्रधान वानरोंको सीताको ढूँढ़नेके लिए सुग्रीवने भिन्न-भिन्न दिशाओंमें जानेकी आज्ञा दी थी, वे सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार अपनी-अपनी दिशाओंमें वेगपूर्वक गए॥१॥ वे तालाबों, नदियों, लतामण्डपों, आकाश, नगरों, नदियों, पहाड़ों तथा देशोंमें सीताको अच्छी तरह ढूँढनेका निश्चय रखनेवाले सब वानर दिनमें जहां तहां ढूंढते थे और रात्रिके समय किसी नियत स्थान पर एकत्र होते थे॥२,३,४॥ ये वानर देशोंमें सब ऋतुमें फल देनेवाले वृक्षोंको पाकर दिनमें सफल वृक्षोंके पास जाते और रातको उन्हीं वृक्षों पर सो जाते॥५॥ प्रस्थानके दिनसे महीना पूरा होने पर वानर सेनापति निराश होकर, प्रस्रवण पर्वतपर सुग्रीवके पास आए॥६॥ सुग्रीवने जैसा कहा था, उसी प्रकार समस्त पूर्व दिशाको ढूँढकर महाबली विनत सीताको न देखकर लौट आए॥७॥ शतबली भी सेनाके साथ समस्त उत्तर दिशाको ढूँढकर डरता-डरता सुग्रीवके पास आया॥८॥ पश्चिम दिशामें सब वानरोंके साथ ढूँढ कर सुषेण भी महीना पूरा होने पर सुग्रीवके पास आ गए॥९॥ प्रस्रवणपर्वत पर रामके साथ बैठे

तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च । आसीनं सह रामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥ १०॥
विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि गहनानि च । निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदाश्च ये ॥११॥
गुहाश्च विचिताः सर्वा याश्च ते परिकीर्तिताः । विचिताश्च महागुल्मा लतावितत सन्तताः ॥१२॥
गहनेषु च देशेषु दुर्गेषु विषमेषु च । सत्त्वान्यतिप्रमाणानि विचितानि हतानि च ॥
ये चैव गहना देशा विचितास्ते पुनः पुनः । ॥१३॥

उदारसत्त्वाभिजनो हनूमान्स मैथिलीं ज्ञास्यति वानरेन्द्रः ।
दिशं तु यामेव गता तु सीता तामास्थितो वायुसुतो हनूमान् ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥



अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः । सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥ १ ॥
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः । ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ २ ॥
पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसि विपुलद्रुमान् । वृक्षखण्डांश्च विविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् । न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ ४ ॥
ते भक्षयन्तो मूलानि फलानि विविधान्यपि । अन्वेषमाणा दुर्धर्षा न्यवसंस्तत्र तत्र हि ॥
सतु देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान्महान् । निर्जलं निर्जनं शून्यं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

हुए सुग्रीवके पास जाकर और उनको प्रणाम कर सब वानर बोले, ॥१०॥ सब पर्वत हम लोगोंने ढूँढे। वनों और नदियोंको ढूँढा, समुद्र तटके सब नगर ढूँढे, जितनी गुहाएँ आपने बतलायीं, हम लोगोंने सब ढूँढीं। लता-मण्डपोंको भी ढूँढा। वनों, देशों और कठिन स्थानोंमें भी ढूँढा। बलवान जन्तुओंको भी ढूँढा और उनमें बहुतोंको मारा भी। जो देश जानेमें दुर्गम हैं वहाँ भी हम लोगोंने बार बार ढूँढा। कुलीन और बली हनुमान ही सीताका पता लगावेंगे क्योंकि सीता जिस दिशामें गयी है उस दिशामें वायुपुत्र हनुमान गए हैं ॥११,१२,१३, १४॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त।



तार और अंगदके साथ हनुमान सुग्रीवके बतलाये देशोंमें जानेके लिए शीघ्र प्रस्थित हुए ॥१॥ उन सब वानरोंके साथ बहुत दूर आकर वहाँ विन्ध्याचलकी गुहा और पर्वत ढूँढकर, पर्वतके ऊपरकी नदी, दुर्गमवन, तालाब, बड़े-बड़े वृक्षोंके समूह, अनेक पर्वत, जंगली वृक्ष आदि उन वीर वानरोंने अच्छी तरह ढूँढा। पर जनकनन्दिनी सीताका पता उन्हें नहीं मिला ॥२,३,४॥ अनेक प्रकारके फल मूलोंको खाते हुए सीताको ढूँढनेवाले, पराजित होनेके अयोग्य वे वानर जहाँ तहाँ ठहर जाते थे। जो निर्जल, निर्जन,

ताद्दशान्यप्यरण्यानि विचित्य भृशपीडिताः । स देशश्च दुरन्वेष्यो गुहागहनवान्महान् ॥ ६ ॥
त्यक्त्वा तु तं ततो देशं सर्वे वै हरियूथपाः । देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः ॥ ७ ॥
यत्र वन्ध्यफला वृक्षा विपुष्पाः पर्णवर्जिताः । निस्तोयाः सरितो यत्र मूलं यत्र सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥
न सन्ति महिषा यत्र न मृगा न च हस्तिनः । शार्दूलाः पक्षिणो वापि ये चान्ये वनगोचराः ॥ ९ ॥
न चात्र वृक्षा नौषध्यो न वल्ल्यो नापि वीरुधः । स्निग्धपत्राः स्थले यत्र पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥१०॥
प्रेक्षणीयाः सुगन्धाश्च भ्रमरैश्च विवर्जिताः । कण्डुर्नाम महाभागः सत्यवादी तपोधनः ॥११॥
महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुष्प्रधर्षणः । तस्य तस्मिन्वने पुत्रो बालको दशवार्षिकः ॥१२॥
प्रनष्टो जीवितान्ताय क्रुद्धस्तेन महामुनिः । तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम् ॥१३॥
अशरण्यं दुराधर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् । तस्य ते काननान्तांस्तु गिरीणां कंदराणि च ॥१४॥
प्रभवानि नदीनां च विचिन्वन्ति समाहिताः । तत्र चापि महात्मानो नापश्यञ्जनकात्मजाम् ॥१५॥
हर्तारं रावणं चापि सुग्रीवप्रियकारिणः । ते प्रविश्य तु तं भीमं लतागुल्मसमावृतम् ॥१६॥
ददृशुर्भीमकर्माणमसुरं सुरनिर्भयम् । तं दृष्ट्वा वानरा घोरं स्थितं शैलमिवासुरम् ॥१७॥
गाढं परिहिताः सर्वे दृष्ट्वा तं पर्वतोपमम् । सोऽपि तान्वानरान्सर्वान्नष्टाः स्थेत्यब्रवीद्बली ॥१८॥
अभ्यधावत संक्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संगतम् । तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा ॥१९॥

ऊजड़ और देखनेमें भयानक देश थे तथा बड़ा दुख उठाकर वैसे जंगलोंको भी वानरोंने ढूँढा जो देश ढूँढे जानेके अयोग्य थे, जहाँ बड़ी गुहाएँ और बीहड़वन थे। उन देशोंको छोड़ कर वानर आगे बढ़े ॥५,६,७॥ वह देश भी बड़ा भयानक था, वहांके वृक्षोंमें फल, फूल, पत्ते नहीं होते थे ॥८॥ नदियोंमें जल नहीं था और जहां मूल मिलना दुर्लभ था, वहां भैसें, मृगा, हाथी, बाघ, पक्षी तथा अन्य वनमें रहनेवाले पक्षीभी नहीं थे ॥९॥ वहां न वृक्ष थे न औषधियां, न लताएँ थीं और न पौधे, चिकने पत्तोंवाली और विकसित कमलिनी भी नहीं थी ॥१०॥ सुगन्धित कमल जहां नहीं है, जो स्थान भ्रमरोंसे रहित है, उस देशमें वे गये। कण्डू नामके सत्यवादी एक तपस्वी थे ॥११॥ वे महर्षि बड़े क्रोधी, नियमोंके पालन करनेसे पराजित होनेके अयोग्य थे, वे उस वनमें रहते थे। उनका दस वर्षका एक पुत्र था ॥१२॥ वह उस वनमें मर गया, इस कारण उस वनको नष्ट करनेके लिए मुनि क्रुद्ध हुए। धर्मात्मा उस मुनिने उस समस्त वनको शाप दिया ॥१३॥ रहनेके अयोग्य, प्रवेश करनेके अयोग्य, मृग पक्षियोंसे रहित, वह वन हो गया ॥१४॥ सुग्रीवके भेजे गए वानरोंने वनकी सीमाकी भूमि, पर्वतोंकी कन्दराएं, नदियोंके उत्पत्तिस्थान सावधान होकर ढूंढे, पर सीताको न पा सके ॥ १५ ॥ जानकीको हरण करनेवाले रावणका भी पता उन लोगोंको न मिला। सुग्रीवके प्रिय करनेवाले वे वानर एक लतामण्डपमें गए ॥१६॥ वहाँ देवताओंसे निडर एवं भयानक असुरको, जो पर्वतके समान ऊंचा था, वानरोंने बैठा देखा ॥१७॥ पर्वतके समान उस असुरको देखकर सब वानर सावधान होगए। वानरोंको देखकर वह असुर बोला— तुम सब लोग मारे गए ॥१८॥ वह क्रोध करके मुट्ठी बाँधकर इन लोगोंकी ओर दौड़ा। उसको आते

रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह । स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ॥२०॥
असुरो न्यपतद्भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः । ते तु तस्मिन्निरुच्छ्वासे वानरा जितकाशिनः॥२१॥
विचिन्वन्प्रायशस्तत्र सर्वं ते गिरिगह्वरम् । विचितं तु ततः सर्वं सर्वे ते काननौकसः ॥२२॥
अन्यदेवापरं घोरं विविशुर्गिरिगह्वरम् । ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः ।
एकान्ते वृक्षमूले तु निषेदुर्दीनमानसाः । ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

अथाङ्गदस्तदा सर्वान्वानरानिदमब्रवीत् । परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः ॥१॥
वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च । दरी गिरिगुहाश्चैव विचिताः सर्वमन्ततः ॥२॥
तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते । तथा रक्षोऽपहर्ता च सीतायाश्चैव दुष्कृती ॥३॥
कालश्च नो महान्यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः । तस्माद्भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः ॥४॥
विहाय तन्द्रां शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम् । विचिनुध्वं तथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम् ॥५॥
अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् । कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥६॥
अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः । खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेव विचिन्वताम्॥७॥

देखकर वालिपुत्र अंगदने उसे रावण समझा और एक थप्पड़ मारा, अंगदके मारनेसे मुँहसे खून फेंकता हुआ वह असुर टूटे पर्वतके समान पृथिवीमें गिर पड़ा। उस असुरके मरनेपर जीतसे खुशी होकर उस समस्त गिरिगुहाको वानरोंने ढूँढा। उन सब वनवासी वानरोंने मिलकर उस समस्त गुहाको ढूँढा। ढूँढते-ढूँढते वे किसी दूसरी गुफामें चले गए, उसे ढूँढकर भी वे दुःखसे निकले। दुखी होकर एक वृक्षकी छायामें वे सब वानर बैठ गए ॥१९,२०,२१,२२,२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त।



अनन्तर थके हुए बुद्धिमान अंगद वानरोंको दिलासा देकर धीरे-धीरे यह बोले ॥१॥ वन, पर्वत, नदी, पृथिवीकी गुफाएँ हमलोगोंने अच्छी तरह ढूँढीं ॥ २ ॥ पर उन सब स्थानोंमें कहीं भी हम लोगोंने जानकी नहीं देखी और सीताका अपहरण करनेवाला पापी राक्षस भी नहीं देखा ॥ ३ ॥ समय भी हम लोगोंका बीत गया। सुग्रीव भी बहुत कठोर शासन करनेवाला है। अतएव आप सब लोग मिलकर चारों ओर ढूँढें ॥ ४ ॥ तन्द्रा, शोक, आयी हुई निद्रा छोड़कर आप लोग इस प्रकार सीताको ढूँढें, जिससे हम लोग उन्हें देखें ॥५॥ खेदका न होना, निपुणता, तथा थकावटका न होना, इनसे कार्य सिद्ध होते हैं, इसलिए मैं आप लोगोंसे यह कह रहा हूँ ॥ ६ ॥ वानरो, इस वनको आप

अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम् । परं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम् ॥८॥
सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः । भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः ॥९॥
हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते । उच्यतां हि क्षमं यत्तत्सर्वेषामेव वानराः ॥१०॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः । उवाच व्यक्तया वाचा पिपासाश्रमखिन्नया ॥११॥
सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह । हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम् ॥१२॥
पुनर्मार्गामहे शैलान्कंदरांश्च शिलास्तथा । काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च ॥१३॥
यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना । विचिन्वन्तु वनं सर्वे गिरिदुर्गाणि संगताः ॥१४॥
ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः । विन्ध्यकाननसंकीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५॥
ते शारदाभ्रप्रतिमं श्रीमद्रजतपर्वतम् । शृङ्गवन्तं दरीवन्तमधिरुह्य च वानराः ॥१६॥
तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च । विचिन्वन्तो हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥१७॥
तस्याग्रमधिरूढास्ते श्रान्ता विपुलविक्रमाः । न पश्यन्ति स्म वैदेहीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥१८॥
ते तु दृष्टिगतं दृष्ट्वा तं शैलं बहुकंदरम् । अध्यारोहन्त हरयो वीक्षमाणाः समन्ततः ॥१९॥
अवरुह्य ततो भूमिं श्रान्ता विगतचेतसः । स्थित्वा मुहूर्तं तत्राथ वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥२०॥
ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किंचिद्भग्नपरिश्रमाः । पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥२१॥

लोग फिर एक बार ढूँढें । थकावट दूरकर फिर एक बार वनको ढूँढें ॥ ७ ॥ कर्म करनेका फल अवश्य ही कर्ताको मिलता है । कार्यसे विरक्त होकर चुपचाप बैठना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ राजा सुग्रीव क्रोधी और कठोर दण्ड देनेवाला है, उससे सदा डरना चाहिए और भगवान् रामचन्द्रसे भी डरना चाहिए ॥ ९ ॥ आप लोगोंके कल्याणके लिए मैंने ये बातें कही हैं, आप लोग यदि ठीक समझें तो करें। वानरो, जो काम सबके करने योग्य हो, वह भी आप लोग बतलावें॥१०॥ अंगदके वचन सुनकर गन्धमादन बोला—प्यास और थकावटसे वह खिन्न होगया था—उसने कहा ॥११॥ अंगदने जो कहा है, वह आप लोगोंके योग्य है। वह वचन हितकारी और अनुकूल है। अतएव आपलोग उनके कहनेके अनुसार कार्य करें ॥ १२ ॥ पर्वतों, गुहाओं, पत्थरों, वनों, निर्जन पर्वतों तथा झरनोंको हम लोग पुनः ढूँढें ॥१३॥ महात्मा सुग्रीवने जो सब बतलाया है, उन सब पर्वतों और वनोंको एक साथ हम लोग ढूँढें ॥१४॥ अनन्तर महाबली वानर, विंध्याचल पर्वतके वनसे संकीर्ण दक्षिण दिशामें भ्रमण करने लगे ॥१५॥ वे वानर शरत्‌के मेघके समान श्वेत रजत पर्वतपर चढ़ गए, जिसके शिखर हैं और गुहाएँ हैं ॥१६॥ सीताको देखनेकी इच्छा रखनेवाले वे वानर रमणीय लोध्रवन और सप्तपर्ण वनको ढूँढने लगे ॥१७॥ विपुल पराक्रमी, थके हुए वे वानर उस पर्वतके शिखरपर चले गए । पर रामचन्द्रकी प्रिया सीता कहीं दिखायी न पड़ीं ॥१८॥ उस पर्वतमें बहुतसी कन्दराएँ हैं यह देखकर, सामने उस पर्वतको देखकर, चारो ओर देखते हुए वानर उसपर चढ़ गए॥१९॥ बहुत थके हुए होनेसे वे वानर उस पर्वतसे नीचे उतर गये और एक वृक्षके नीचे इकट्ठे होकर थोड़ी देर वहाँ ठहरे ॥२०॥ थोड़ी देर विश्राम करनेसे

हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः। विन्ध्यमेवादितः कृत्वा विचेरुश्च समन्ततः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मिकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

सह ताराङ्गदाभ्यां तु संगम्य हनुमान्कपिः। विचिनोति च विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥१॥
सिंहशार्दूलजुष्टाश्च गुहाश्च परितस्तदा। विषमेषु नगेन्द्रस्य महाप्रस्रवणेषु च ॥२॥
आसेदुस्तस्य शैलस्य कोटिं दक्षिणपश्चिमाम्। तेषां तत्रैव वसतां स कालो व्यत्यवर्तत ॥३॥
स हि देशो दुरन्वेष्यो गुहागहनवान्महान्। तत्र वायुसुतः सर्वं विचिनोति स्म पर्वतम् ॥४॥
परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः। गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥५॥
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवानपि। अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः ॥६॥
गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणां दिशम्। विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृतं विलम् ॥७॥
दुर्गमृक्षविलं नाम दानवेनाभिरक्षितम्। क्षुत्पिपासापरीतास्तु श्रान्तास्तु सलिलार्थिनः ॥८॥
अवकीर्णं लतावृक्षैर्ददृशुस्ते महाविलम्। तत्र क्रौञ्चाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥९॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्ताङ्गाः पद्मरेणुभिः। ततस्तद्विलमासाद्य सुगन्धि दुरतिक्रमम् ॥१०॥
विस्मयव्यग्रमनसो बभूवुर्वानरर्षभाः। संजातपरिशङ्कास्ते तद्विलं प्लवगोत्तमाः ॥११॥

थकावट दूर होनेपर वे सब पुनः समूची दक्षिण दिशाको ढूँढ़नेके लिए तयार हुए ॥२१॥ हनुमान आदि उद्योग करनेवाले वानर प्रारम्भसे विंध्याचल पर्वतको ही चारों ओर अच्छी तरह ढूँढने लगे ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त।

तार और अंगदके साथ मिलकर हनुमान विंध्याचल पर्वतकी गुहाएँ और वन ढूँढने लगे ॥१॥ सिंह और वाघकी गुहाएँ पर्वतके दुर्गम स्थानके पत्थर और बड़े-बड़े झरने उनलोगोंने ढूँढे ॥२॥ उस पर्वतके दक्षिणपश्चिम शिखरपर वे सब वानर बैठे। उसी समय सुग्रीवकी नियत की हुई अवधि बीत गयी ॥३॥ वह देश बहुत दुःखसे ढूंढनेके योग्य था। उसमें बड़ी बड़ी गुहाएँ और वन थे। वायुपुत्र वहाँ पर्वत-पर ढूँढने लगे ॥४॥ परस्पर अलग अलग होकर, पर अधिक दूर न जाकर, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्ध-मादन, मैंद, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार आदि वानरोंने, पर्वतवाले देश ढूँढकर दक्षिण दिशामें ढूँढते हुए, वहाँ एक विशाल बिल देखा। वह दुर्गम बिल एक दानवके द्वारा रक्षित था, भूख और प्यासमे पीड़ित, जल चाहनेवाले, थके वानरोंने लता और वृक्षोंसे छिपा हुआ महाबिल देखा। वहाँसे क्रौंच, हंस और सारस, चक्रवाक पक्षियोंको निकलते देखा। पद्मकी धूलिसे रक्त वर्णवाले तथा जलसे भीगे हुए पक्षियोंको निकलते देखा। उस सुगन्धित और दुर्गम बिलमें जाकर

अभ्यपद्यन्त संहृष्टास्तेजोवन्तो महाबलाः। नानासत्त्वसमाकीर्णं दैत्येन्द्रनिलयोपमम् ॥१२॥
दुर्दर्शमिव घोरं च दुर्विगाह्यं च सर्वशः। ततः पर्वतकूटाभो हनूमान्मारुतात्मजः ॥१३॥
अब्रवीद्वानरान्घोरान्कान्तार वन कोविदः। गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणांदिशम् ॥१४॥
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम्। अस्माच्चापिबिलाद्धंसाःक्रौञ्चाश्च सह सारसैः॥१५॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वशः। नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः ॥१६॥
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः। इत्युक्तास्तद्बिलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम्॥१७॥
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशू रोमहर्षणम्। निशाम्यतस्मात्सिंहांश्चतांस्तांश्चमृगपक्षिणः॥१८॥
प्रविष्टा हरिशार्दूला बिलं तिमिरसंवृतम्। न तेषां सज्जते दृष्टिर्न तेजो न पराक्रमः ॥१९॥
वायोरिव गतिस्तेषां दृष्टिस्तमसि वर्तते। ते प्रविष्टास्तु वेगेन तद्बिलं कपिकुञ्जराः ॥२०॥
प्रकाशं चाभिरामं च ददृशुर्देशमुत्तमम्। ततस्तस्मिन्बिले भीमे नानापादपसंकुले ॥२१॥
अन्योन्यं संपरिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम्। ते नष्टसंज्ञास्तृषिताःसंभ्रान्ताःसलिलार्थिनः॥२२॥
परिपेतुर्बिले तस्मिन्कंचित्कालमतन्द्रिताः। ते कृशा दीनवदनाः परिश्रान्ताः प्लवंगमाः ॥२३॥
आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते यदा। ततस्तं देशमागम्य सौम्या वितिमिरं वनम् ॥२४॥
ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान्। सालांस्तालांस्तमालांश्चपुंनागान्वञ्जुलान्धवान् २५॥

वानर विस्मयसे व्यग्रचित्त हुए। वहाँ जलकी संभावना देखकर महाबली तेजस्वी वे वानर वहाँ गये। उसमें अनेक जन्तु थे और वह बिल दानवराजके घरके समान था ॥५,६,७,८,९,१०,११,१२॥ वह देखनेमें कठोर तथा जानेमें कठोर था। अनन्तर पर्वत-शिखरके समान वायुपुत्र हनुमान, जो दुर्गम वनोंकी बात जानते हैं, वानरोंसे बोले—दक्षिण दिशाके पर्वतीय देशोंको ढूँढनेसे हम लोग थक गए हैं और सीताको भी हम लोगोंने नहीं देखा। सारसोंके साथ इस बिलसे हंस, क्रौंच, चक्रवाक आदि जलसे भींगे हुए निकले हैं, अवश्य ही यहाँ जलवाला कूँआ है या तालाब ॥१३,१४,१५,१६॥ बिलके द्वारके वृक्षभी बहुत हा हरे हैं। हनुमानके ऐसा कहनेपर वे सब उस अँधेरे बिलमें घुसे ॥१७॥ चन्द्रमा और सूर्यके प्रकाशसे रहित भयानक उस बिलमें जहाँसे सिंह तथा अन्य पशुपक्षी निकल रहे थे, वानरोंने प्रवेश किया ॥१८॥ उनकी दृष्टि, उनका तेज और पराक्रम कुछ भी नहीं रुकते थे ॥१९॥ वायुके समान उनकी गति थी और उन्हें दिखायी पड़ता था। वे वानर वेगसे उस बिलमें चले गये ॥२०॥ उस भयानक बिलमें अनेक विधि के वृक्ष, उत्तम उत्तम और रमणीय देश तथा प्रकाश वहाँ उन लोगोंने देखे ॥२१॥ जलके प्यासे, जल चाहनेवाले, विवेक-रहित, चंचल वानर परस्पर पकड़े हुए एक योजन तक उस बिलमें चले गए ॥२२॥ थोड़ी देर तक बराबर सूखे मुँह थके हुए और खिन्न वानर उस बिलमें चलते गये ॥२३॥ जब वे अपने जीवनसे निराश होगये, तब उन्हें प्रकाश दीख पड़ा। वे उस प्रकाशमय देशमें आकर अन्धकाररहीन एक वन देख सके ॥२४॥ ज्वलित अग्निके समान सोनेके ताल, शाल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव, चम्पक नाग और कीर्णकार आदि वृक्ष देखे। ये सब फूले हुए थे। सुवर्णमय गुच्छे और लालकोंढियां लगी

चम्पकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् । स्तबकैः काञ्चनैश्चित्रै रक्तैः किसलयैस्तथा ॥२६॥
आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान् । तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥२७॥
विभ्राजमानान्वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान् । नीलवैदूर्यवर्णाश्च पद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥
महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृतं बालार्कसंनिभैः । जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः ॥२९॥
नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः । काञ्चनानि विमानानि राजतानि तथैव च ॥३०॥
तपनीयगवाक्षाणि मुक्ताजालावृतानि च । हैमराजतभौमानि वैदूर्यमणिमन्ति च ॥३१॥
ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः । पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसंनिभान् ॥३२॥
काञ्चनभ्रमरांश्चैव मधूनि च समन्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥३३॥
विविधानि विशालानि ददृशुस्ते समन्ततः । हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च राशयः ॥३४॥
अगुरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च संचयान् । शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च ॥३५॥
महार्हाणि च यानानि मधूनि रसवन्ति च । दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च संचयान् ॥३६॥
कम्बलानां च चित्राणामजिनानां च संचयान् । तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तत्र महाप्रभाः ॥३७॥
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिददूरतः । तां च ते ददृशुस्तत्र चीरकृष्णजिनाम्बराम् ॥३८॥
तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा । विस्मिता हरयस्तत्र व्यवतिष्ठन्त सर्वशः ॥
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र कासि त्वं कस्य वा बिलम् । ॥३९॥

हुई थीं ॥२५,२६॥ डालके ऊपरके गुच्छे और लताओंसे युक्त सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त वैदूर्यकी वेदी वाले, शरीरसे सुन्दर चमकते हुए वृक्षोंको उन लोगोंने देखा; नील वैदूर्यके समान तालाब देखे, जहाँ अनेक पक्षी थे ॥२७, २८॥ बालसूर्यके समान सोनेके बड़े-बड़े वृक्षों, सोनेकी बड़ी-बड़ी मछलियाँ और सोनेके बड़े-बड़े कमलोंसे युक्त स्वच्छ जलवाले तालाब उनलोगोंने देखे। सोने और चाँदीके बने हुए विमान उनलोगोंने देखे ॥२९,३०॥ सोनेकी खिड़कियाँ जिनमें मोतीकी जाली लगी हुई, सोने चाँदीके घंट जिनमें वैदूर्य मणि लगी हुई थी, ऐसे उत्तम घर उन वानरोंने देखे, मूंगेके समान फल और फूल वाले वृक्ष उन लोगोंने देखे ॥३१,३२॥ सोनेके भ्रमर, मद्य, मणि और सुवर्णसे चित्रित शयन और आसन जो विशाल और अनेक थे, वानरोंने देखे । सोना चाँदी और कांसेके वर्तनोंके ढेर उन लोगोंने देखे ॥३३,३४॥ अगुरु और चन्दनकी राशि, सुन्दर भोजन, फल-मूल आदि उन लोगोंने देखे ॥३५॥ बहुमूल्य सवारी, सरस मद्य, उत्तम और बहुमूल्य वस्त्रोंकी ढेर उन लोगोंने देखी ॥३६॥ चित्रित कम्बल और चमड़ोंकी राशि उस बिलमें ढूँढते हुए वानरोंने देखी ॥ ३७ ॥ थोड़ी दूर पर वानरोंने एक स्त्री देखी, वह स्त्री काले रंगकी साड़ी पहने हुए थी । नियमित आहार करनेवाली, अपने तेजसे प्रकाशित उस तपस्विनीको देखकर, वानर विस्मित होगए ॥ ३८ ॥ हनुमानने उससे पूछा—आप कौन हैं और यह किसका बिल है ॥३९॥ पर्वतके समान हनुमानने हाथ

ततो हनूमान्गिरिसंनिकाशः कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।
पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च रत्नानि चेमानि वदस्व कस्य ॥४०॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

इत्युक्त्वा हनुमांस्तत्र चीरकृष्णाजिनाम्बराम् । अब्रवीत्तां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ॥ १ ॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् । क्षुत्पिपासापरिश्रान्ताः परिखिन्नाश्च सर्वशः॥ २ ॥
महद्धरण्या विवरं प्रविष्टाः स्म पिपासिताः । इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान्॥ ३ ॥
दृष्ट्वा वयं प्रव्यथिताः संभ्रान्ता नष्टचेतसः । कस्यैते काञ्चनाद्वृक्षास्तरुणादित्यसंनिभाः ॥ ४ ॥
शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च । काञ्चनानि विमानानि राजतानि गृहाणि च॥ ५ ॥
तपनीयगवाक्षाणि मणिजालावृतानि च । पुष्पिताः फलवन्तश्च पुण्याः सुरभिगन्धयः ॥ ६ ॥
इमे जाम्बूनदमयाः पादपाः कस्य तेजसा । काञ्चनानि च पद्मानि जातानि विमले जले ॥ ७ ॥
कथं मत्स्याश्च सौवर्णा दृश्यन्ते सह कच्छपैः । आत्मनस्त्वनुभावाद्वा कस्य वैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥
अजानतां नः सर्वेषां सर्वमाख्यातुमर्हसि । एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता । मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ ॥१०॥
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् । पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ॥११॥

जोड़कर उस वृद्धासे पूछा—आप कौन हैं, यह बिल और घर किसके हैं, ये रत्न किसके हैं, आप कहें ॥४०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचासवां सर्ग समाप्त ।

कृष्ण मृगचर्म धारण करनेवाली उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहकर हनुमान पुनः बोले ॥१॥ भूख प्याससे थके और खिन्न हम लोग सहसा इस अंधेरे बिलमें चले आये। पृथिवीके इस बड़े बिलमें प्यासके कारण हम लोग चले आए। यहाँके अनेक पदार्थोंको हम लोग अद्भुत देखते हैं, यहाँकी चीजोंको देखकर हम लोग दुखी हुए, घबड़ा गए और हम लोगोंकी कर्तव्यबुद्धि जाती रही। सूर्य-सदृश ये सोनेके वृक्ष किसके हैं ॥२,३,४॥ शुद्ध भोजनकी वस्तुएँ, फल-मूल आदि, सोनेके विमान, चाँदीके घर, सोनेकी खिड़कियाँ, मणिकी जाली, पुष्पित और फलित सुगन्धमय ये सोनेके वृक्ष किसके तेजसे लगे हैं ? विमल जलमें सोनेके कमल किसके तेजसे हुए हैं ? कछुओंके साथ ये सोनेकी मछलियाँ क्यों हुई हैं ? ये सब आपके प्रतापसे या किसी दूसरेके तपोबलके प्रभावसे हुआ है ? हम सब लोग इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते, अतएव हम लोगोंसे आप सब बातें कहें। हनुमानके ऐसा कहनेपर धर्मचारिणि तापसी सब प्राणियोंका हित चाहनेवाली हनुमानसे बोली—हे वानरश्रेष्ठ, महातेजस्वी मय नामका एक मायावी था ॥५,६,७,८,९,१०॥ उसीने मायासे इस समस्त वनको बनाया है। पहले दानवोंमें

येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् । स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महद्वने ॥१२॥
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् । विधाय सर्वं वलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा ॥१३॥
उवास सुखितः कालं कंचिदस्मिन्महावने । तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुंगवम् ॥१४॥
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरंदरः । इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ॥१५॥
शाश्वतः कामभोगश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् । दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा ॥१६॥
इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम । मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ॥१७॥
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनं महत् । किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपद्यथ॥१८॥
कथं चेदं वनं दुर्गं युष्माभिरुपलक्षितम् । शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च ॥
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हसि । १९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

अथ तानब्रवीत्सर्वान्विश्रान्तान्हरियूथपान् । इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी ॥ १ ॥
वानरा यदि वः खेदः प्रनष्टः फलभक्षणात् । यदि चैतन्मयाश्राव्यं श्रोतुमिच्छामि तां कथाम्॥ २ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

एक विश्वकर्मा हो गए हैं ॥११॥ उन्होंने ही यह सोनेका उत्तम भवन बनाया है । हजार वर्ष तक उन्होंने बड़े वनमें घोर तपस्या की ॥१२॥ ब्रह्मासे वरमें उन्होंने शुक्राचार्यका समस्त धन (शिल्पविद्या और शिल्पकी सामग्री) पाया । इससे वे बली होकर अपनी सृष्टिके उपभोग करनेके समर्थ हुए ॥१३॥ मय ने इस वनमें कुछ दिनों तक सुखपूर्वक वास किया । पुनः वे हेमा नामकी अप्सरापर अनुरक्त हुए ॥१४॥ इन्द्रने पराक्रम करके वज्र लेकर मय को मार दिया । ब्रह्माने यह उत्तम वन हेमाको दिया ॥१५॥ यह सोनेका घर और शाश्वत कामभोग हेमाको ब्रह्माने दिया । मैं मेरु सावर्णिकी कन्या हूँ और मेरा स्वयंप्रभा नाम है ॥१६॥ मैं हेमाके इस घरकी रक्षा करती हूँ । मेरी प्रिय सखी हेमा नाचने गानेमें निपुण है ॥१७॥ मैंने हेमाको वर दिया है, इसलिये मैं उसके घरकी रक्षा करती हूँ । क्या काम है, किसलिए तुम लोग वनमें आए हो ? ॥१८॥ इस वनको तुम लोगोंने कैसे देखा—शुद्ध भोजन, फलमूल आदि खाकर तथा पानी पीकर मुझसे तुम यह सब कहो ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ।

इन वानरोंके विश्राम कर लेने पर सावधान धर्मचारिणी वह तपस्विनी बोली ॥ १ ॥ वानरों यदि आप लोगोंकी थकावट फल खानेसे दूर हो गयी हो, यदि तुम्हारी बात मेरे सुनने लायक हो, तो तुम लोग अपनी कथा कहो । अनन्तर उसके वचन सुनकर वायुपुत्र हनुमान नम्रतापूर्वक यथार्थ

राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः । रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ४ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया । यस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् ॥ ५ ॥
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः । राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥ ६ ॥
अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां यमरक्षिताम् । सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरङ्गदप्रमुखैर्वयम् ॥ ७ ॥
रावणं सहिताः सर्वे राक्षसं कामरूपिणम् । सीतया सह वैदेह्या मार्गध्वमिति चोदिताः ॥ ८ ॥
विचित्य तु वनं सर्वं समुद्रं दक्षिणां दिशम् । वयं बुभुक्षिताः सर्वे वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥
विवर्णवदनाः सर्वे सर्वे ध्यानपरायणाः । नाधिगच्छामहे पारं मग्नाश्चिन्तामहार्णवे ॥१०॥
चारयन्तस्ततश्चक्षुर्दृष्टवन्तो महद्बिलम् । लतापादपसंपन्नं तिमिरेण समावृतम् ॥११॥
अस्माद्धंसा जलक्लिन्नाः पक्षैः सलिलरेणुभिः । कुरराः सारसाश्चैव निष्पतन्ति पतत्रिणः ॥१२॥
साध्वत्र प्रविशामेति मया तूक्ताः प्लवंगमाः । तेषामपि हि सर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥१३॥
अस्मिन्निपतिताः सर्वेऽप्यथ कार्यत्वरान्विताः । ततो गाढं निपतिता गृह्य हस्तैः परस्परम् ॥१४॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् । एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः ॥१५॥
त्वां चैवोपगताः सर्वे परिद्यूना बुभुक्षिताः । आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ॥१६॥
अस्माभिरुपयुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः । यत्त्वया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ॥१७॥

बातें कहने लगे ॥२, ३॥ सब लोगोंके राजा, इन्द्रवरुणके समान, दसरथपुत्र रामचन्द्र दण्डक वनमें आये हैं भाई लक्ष्मण, पत्नी सीताके साथ वे आये हैं ॥४॥ जनस्थानसे उनकी स्त्री सीताको रावणने बलपूर्वक हरण किया है ॥ ५ ॥ उन रामचन्द्रके मित्र सुग्रीव नामके वानरोंके राजा हैं। उन्होंने ही हम लोगोंको भेजा है ॥ ६ ॥ अगस्त्यके रहनेवाली दक्षिण दिशामें, यमराजकी रक्षित दक्षिण दिशामें, अंगद आदि प्रधान वीरोंके साथ हम लोग यहाँ आये हैं ॥ ७ ॥ तुम लोग यमपालित दक्षिण दिशामें जाकर कामरूपी राक्षस रावणको और सीताको ढूँढ़ो—इस आज्ञासे हम लोग यहाँ आये हैं ॥ ८ ॥ समस्त वनको ढूंढ़ कर, समुद्रको ढूंढ़कर हम लोग भूखे होकर वृक्षकी छायामें एकत्रित हुए। हम लोगोंका मुँह सूख गया था ॥ ९ ॥ हम लोग सोच रहे थे, चिन्ता-समुद्रमें मग्न होकर उसका पार नहीं पाते थे ॥ १० ॥ इधर उधर देखते हुए हम लोगोंने इस बड़े बिलको देखा, जो लता और वृक्षोंसे युक्त तथा अन्धकारमय था, ॥ ११ ॥ जलसे भींगे हुए, जल और धूलसे लिपटे पंखवाले हंस यहाँसे निकले, कुररी, सारस आदि पक्षी भी यहाँसे निकले ॥ १२ ॥ मैंने वानरोंसे कहा कि अच्छा हम लोग यहीं चलें। उन लोगोंने भी अनुमानसे यही बात जानी ॥ १३ ॥ कार्यकी शीघ्रता होनेके कारण हम लोग इसमें दौड़ आए। परस्पर हाथ पकड़ कर एक ही साथ हम लोग इसमें कूद पड़े ॥१४॥ इस अंधेरे बिलमें हम लोग सहसा चले आए। यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिए हम लोग आए हैं ॥ १५ ॥ भूखसे पीड़ित होकर हम लोग तुम्हारे पास आये और आतिथ्य धर्मके अनुसार तुमने फल-मूल दिए ॥ १६ ॥ भूखसे पीड़ित हम लोगोंने खाए। भूखसे पीड़ित हम लोगोंके

ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः । एवमुक्ता तु सर्वज्ञा वानरैस्तैः स्वयंप्रभा ॥१८॥
प्रत्युवाच ततः सर्वानिदं वानरयूथपान् । सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां तरस्विनाम् ॥१९॥
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् । एवमुक्तः शुभं वाक्यं तापस्या धर्मसंहितम् ॥२०॥
उवाच हनुमान् वाक्यं तामनिन्दितलोचनाम् । शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम् ॥२१॥
यः कृतः समयोऽस्मासु सुग्रीवेण महात्मना । स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम् ॥२२॥
सा त्वमस्माद्बिलादस्मानुत्तारयितुमर्हसि । तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रान्तान्गतायुषः ॥२३॥
त्रातुमर्हसि नः सर्वान्सुग्रीवभयशङ्कितान् । महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि ॥२४॥
तच्चापि न कृतं कार्यमस्माभिरिहवासिभिः । एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम् । तपसः सुप्रभावेण नियमोपार्जितेन च ॥२६॥
सर्वानेव बिलादस्मात्तारयिष्यामि वानरान् । निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुंगवाः ॥२७॥
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः । ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः ॥२८॥
सहसा पिदधुर्दृष्टिं हृष्टा गमनकाङ्क्षया । वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा ॥२९॥
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया । उवाच सर्वास्तांस्तत्र तापसी धर्मचारिणी ॥३०॥
निःसृतान्विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत् । एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ॥३१।

प्राणोंकी तुमने रक्षाकी ॥१७॥ बोलिए, आपके प्रत्युपकारके लिए वानर क्या करें? वानरोंके ऐसा कहने पर सर्वज्ञा स्वयंप्रभा बोली—मैं तुम सब वानरोंपर प्रसन्न हूँ ॥ १८,१९ ॥ धर्माचरण करनेके कारण मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है। तापसीके द्वारा धर्मयुक्त ऐसा वचन कहे जाने पर हनुमान उससे बोले, ॥२०॥ तुम धर्मचारिणीकी शरण हम सब आए हैं ॥२१॥ महात्मा सुग्रीवने हमलोगोंके लिए जो अवधि दी थी, वह अवधि बिलमें घूमनेके कारण बीत गई ॥२२॥ अतएव आप हमलोगोंको इस बिलसे बाहर निकाल दें। सुग्रीवके वचन उल्लंघन करनेसे हमलोगोंके प्राण संकटमें पड़ गए हैं ॥२३॥ सुग्रीवके भयसे भीत हमलोगोंके प्राणोंकी आप रक्षा करें। हे धर्मचारिणी, हमलोगोंको बहुत बड़ा काम करना है। यहाँ रह कर हमलोगोंने वह काम भी नहीं किया। हनुमानके ऐसा कहने पर तापसी बोली, ॥२४, २५॥ जीते जी यहाँसे निकलना कठिन है पर धर्मके नियमोंके पालनसे प्राप्त और तपस्याके प्रभावसे मैं सब वानरोंको इस बिलसे निकाल दूँगी। सब वानर अपनी अपनी आँखें बन्द करें ॥२६, २७॥ आँखें बन्द करनेके बिना यहाँसे निकलना कठिन है। सब वानरोंने कोमल अँगुलियों वाले हाथोंसे अपनी आँखें बन्द कीं ॥२८॥ जीनेकी इच्छा रखनेवाले सब वानरोंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, और हाथोंसे मुँह छिपा लिया ॥२९॥ उस धर्मचारिणीने थोड़ी ही देरमें सबको बिलके बाहर कर दिया और वह धर्मचारिणी तापसी वानरोंसे बोली ॥३०॥ उस बिलसे निकले वानरोंको धैर्य देकर वह तापसी बोली—अनेक वृक्ष लताओंसे युक्त यह विंध्याचल पर्वत है ॥३१॥ यह प्रस्रवण पर्वत

एष मल्लवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः । स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः ॥
इत्युक्त्वा तद्बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा । ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् । अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥
मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम् । तेषां मासोव्यतिक्रान्तोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ २ ॥
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे । उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥ ३ ॥
ततः पुष्पातिभाराग्रांल्लताशतसमावृतान् । द्रुमान्वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः ॥ ४ ॥
ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम् । नष्टसंदेशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥ ५ ॥
ततस्तान्कपिवृद्धांश्च शिष्टांश्चैव वनौकसः । वाचा मधुरयाभाष्य यथावदनुमान्य च ॥ ६ ॥
स तु सिंहवृषस्कन्धः पीनायतभुजः कपिः । युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
शासनात्कपिराजस्य वयं सर्वे विनिर्गताः । मासः पूर्णोबिलस्थानांहरयः किं न बुध्यत ॥ ८ ॥
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः । प्रस्थिताः सोऽपिचातीतःकिमतःकार्यमुत्तरम्॥ ९ ॥

है, यह महोदधि समुद्र है । तुमलोगोंका कल्याण हो । मैं घर जाती हूँ, ऐसा कहकर स्वयंप्रभा उस बिलमें चली गयी ॥३२॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ।



वानरोंने वरुणके निवासस्थान भयानक समुद्रको देखा, जिसके पारका पता नहीं, जिसमें निरंतर बड़ी बड़ी लहरियाँ उठ रही हैं और जो गरज रही हैं ॥ १ ॥ मयकी मायासे बने बिलमें ढूँढ़नेके कारण उनकी वह अवधि बीत गयी जो राजा सुग्रीवने उन्हें दी थी ॥ २ ॥ विंध्याचलके नीचे प्रदेशमें जहाँके वृक्ष पुष्पित हुए थे बैठकर महात्मा वानर विचार करने लगे ॥ ३ ॥ जिनका अग्रभाग पुष्पोंसे झुक गया है, जो लताओंसे वेष्टित हैं, वसन्तके इन वृक्षों को देखकर वे भयभीत और चिन्तित हुए ॥४॥ वसन्त आ गया, यह परस्पर बतलाकर सुग्रीवके सन्देशके समय बीत जानेसे वे सब पृथ्वीपर गिर पड़े ॥५॥ अनन्तर उन बूढ़े सज्जनों, वानरों का सन्मान कर तथा मधुरवचनसे पूछकर सिंह और वृषके समान कन्धेवाले और मोटे व लम्बी भुजावाले महाप्राज्ञ युवराज अंगद मीठे वाक्य बोले ॥६॥ सुग्रीवकी आज्ञासे हम सब लोग बाहर निकले थे, बिल हीमें हमलोगोंका मास पूरा हो गया—क्या यह बात वानरोंको मालूम नहीं है ? ॥ ७, ८ ॥ हमलोग आश्विन महीनेमें समयकी अवधि करके चले थे, वह अवधि बीत गयी । अब हमलोगोंको क्या करना चाहिए ॥ ९ ॥ आपलोग नीतिमार्गके जाननेवाले हैं,

भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः । हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु ॥१०॥
कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः । मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः॥११॥
इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः । हरिराजस्य संदेशमकृत्वा कः सुखी भवेत् ॥१२॥
अस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम् । प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम् ॥१३॥
तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःस्वामिभावेव्यवस्थितः । न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥१४॥
अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति । तस्मात्क्षममिहाद्यैव गन्तुं प्रायोपवेशनम् ॥१५॥
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च । ध्रुवं नो हिंसते राजा सर्वान्प्रतिगतानितः ॥१६॥
वधेनाप्रतिरूपेण श्रेयान्मृत्युरिहैव नः । न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः ॥१७॥
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा । स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्॥१८॥
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः । किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे ॥
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि । ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम् । सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥२०॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियारक्तश्च राघवः । समीक्ष्याकृतकार्यांस्तु तस्मिंश्च समये गते ॥२१॥
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान् । राघवप्रियकामाय घातयिष्यत्यसंशयम् ॥२२॥

स्वामीके विश्वासी हैं, स्वामीके हितेच्छु हैं, उनके द्वारा सब कामोंमें अधिकारके साथ नियुक्त होते हैं ॥१०॥ आपलोग कार्यों में अनुपम हैं अर्थात् असमान है और दिशाओंमें आपके पराक्रमकी प्रसिद्धि है। पीली आँख वाले सुग्रीवकी आज्ञासे मेरी अधिनायकतामें आपलोग आये हैं ॥११॥ अब कार्य सिद्ध न होनेके कारण हमलोगोंको मरना होगा, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि सुग्रीवकी आज्ञाका बिना पालन किये कौन सुखी हो सकता है ॥१२॥ स्वयं सुग्रीवके किए समयके बीतजाने पर, सब वानरोंको प्रायोपवेशन (मरनेके लिए अन्न जलका त्याग) करना चाहिए ॥ १३ ॥ सुग्रीव स्वभाव ही से तीक्ष्ण है, और इस समय स्वामी है। अपराध करके जाने पर हमलोगोंको क्षमा नहीं करेगा ॥१४॥ सीताका पता न पाने पर वह हमलोगोंका वध करेगा। इस कारण यहाँ प्रायोपवेशन करना ही हमलोगोंको उचित है ॥१५॥ पुत्र, दारा, धन और गृह छोड़कर हमलोगोंको प्रायोपवेशन ही करना चाहिए। यहांसे लौटने पर राजा अवश्य ही हमलोगोंका वध करेगा ॥१६॥ अनुचित वधकी अपेक्षा यहाँ ही मर जाना हमलोगोंके लिए अच्छा है। सुग्रीवने युवराजके पद पर मेरा अभिषेक नहीं किया है ॥१७॥ धर्मात्मा राजा रामचन्द्रने मेरा अभिषेक किया है। सुग्रीव पहले ही से मुझसे वैर रखता है ॥१८॥ अपराध देखकर वह कठोर दण्ड देनेका निश्चय करेंगे। जीवननाशका समय उपस्थित होने पर मेरा दुःख देखकर भी मित्रगण क्या करेंगे ? अतएव यहीं पवित्र समुद्र तीर पर मैं प्रायोपवेशन करूँगा ॥१९॥ युवराज कुमारका यह कहना सुनकर सभी श्रेष्ठ वानर करुण वचन बोले ॥२०॥ सुग्रीव तीक्ष्ण स्वभावका है। रामचन्द्र स्त्रीके अनुरागी हैं। समय बीतने पर और बिना कार्य सिद्ध किए हमलोगोंको देखकर, सीताको न देखकर,

न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः । प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥२३॥
इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा । नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥२४॥

प्लवंगमानां तु भयार्दितानां श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे ।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य वसाम सर्वे यदि रोचते वः ॥२५॥
इदं हि मायाविहितं सुदुर्गमं प्रभूतपुष्पोदकभोज्यपेयम् ।
इहास्ति नो नैव भयं पुरंदरान्न राघवाद्वानरराजतोऽपि वा ॥२६॥
श्रुत्वाङ्गदस्यापि वचोऽनुकूलमूचुश्च सर्वे हरयः प्रतीताः ।
यथा न हन्येम तथा विधानमसक्तमद्यैव विधीयतां नः ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि । अथ मेने हृतं राज्यं हनूमानङ्गदेन तत् ॥ १ ॥
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् । चतुर्दशगुणं मेने हनूमान्वालिनः सुतम् ॥ २ ॥
आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः । शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ॥ ३ ॥

और हमलोगोंको आया देखकर, रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए सुग्रीव अवश्य हमलोगोंका बध करेगा ॥२१,२२॥ अपराधियोंको स्वामीके पास जाना उचित नहीं । हमलोग सुग्रीवके प्रधान सेवक हैं । हमलोग यहाँ आये हैं ॥२३॥ सीताको देखकर अथवा उनका पता लगाकर हमलोग न गये तो अवश्य ही हमलोगोंको यमराजके यहाँ जाना होगा ॥२४॥ भयभीत वानरोंके वचन सुनकर तार नामक वानर बोला— दुःख करना व्यर्थ है, यदि तुमलोग ठीक समझो तो हम सब बिलमें चल कर रहें ॥२५॥ यह मायाके द्वारा बना हुआ है, यहाँ किसीका प्रवेश संभव नहीं । खूब जल भोजन और पान यहाँ मिलता है । यहाँ इन्द्रसे, सुग्रीवसे अथवा रामचन्द्रसे भय नहीं है ॥२६॥ अंगदके भी अनुकूल तारके वचन सुनकर सभी वानरोंने विश्वासपूर्वक कहा—जिस प्रकार हमलोग न मारे जायँ वैसा उपाय शीघ्र आज ही करना चाहिए ॥२६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ।

ताराधिपति, चन्द्रमाके समान तेजवाले तारके ऐसा कहने पर हनुमानने अंगदके राज्यका नष्ट होना समझा ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदको हनुमान अष्टांगबुद्धिसे युक्त, चार बलसे युक्त तथा चतुर्दश गुणवाले समझते हैं । (अष्टांग बुद्धि—सुननेकी इच्छा, श्रवण, ग्राण, धारण, उहापोह, अर्थ, विज्ञान और तत्वज्ञान । चार बल—साम, दाम, भेद और निग्रह । चौदह गुण—देशकालका ज्ञान, दृढ़ता, कष्टसहिष्णुता, सर्व-विज्ञानता, दक्षता, उत्साह, मन्त्रगुप्ति, एकवाक्यता, शूरता, भक्तिज्ञान, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अमर्षित्व और अचापल) ॥ २ ॥ तेज बल और पराक्रमसे शुक्लपक्षमें बढ़ने वाले चन्द्रमाके समान

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः । शुश्रूषमाणं तारस्य शुक्रस्येव पुरंदरम् ॥ ४ ॥
भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदः । अभिसंधातुमारेभे हनूमानङ्गदं ततः ॥ ५ ॥
स चतुर्णामुपायानां द्वितीयमुपवर्णयन् । भेदयामास तान्सर्वान्वानरान्वाक्यसंपदा ॥ ६ ॥
तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम् । भीषणैर्विविधैर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः ॥ ७ ॥
त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम् । दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता ॥ ८ ॥
नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुंगव । नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारं विना त्वया ॥ ९ ॥
त्वां नैते ह्यनुरज्येयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते । यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः ॥ १० ॥
न ह्यहं ते इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः । दण्डेन न त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम् ॥ ११ ॥
विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसा । आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥ १२ ॥
यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद्बलमिति श्रुतम् । एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यं विदारणम् ॥ १३ ॥
स्वल्पं हि कृतमिन्द्रेण क्षिपता ह्यशनिं पुरा । लक्ष्मणो निशितैर्बाणैर्भिन्द्यात्पत्रपुटं यथा ॥ १४ ॥
लक्ष्मणस्य च नाराचा बहवः सन्ति तद्विधाः । वज्राशनिसमस्पर्शा गिरीणामपि दारकाः ॥ १५ ॥
अवस्थानं यदैव त्वमासिष्यसि परंतप । तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः ॥ १६ ॥

अंगद तेज बल और पराक्रमसे पूरे हो रहे हैं। बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पराक्रममें पिताके समान अंगदको, जो तारके उपदेश सुन रहे हैं जैसे इन्द्रने शुक्रका उपदेश सुना था उस अंगदको, स्वामीके कार्यमें थके अंगदको, सर्वशास्त्रविशारद हनुमान अपने अनुकूल अर्थात् तारसे अलग करनेका उद्योग करने लगे ॥३,४,५॥ चार उपायोंमेंसे दूसरे उपायका वर्णन करते हुए उन सब वानरोंमें वचन द्वारा भेद उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ वानरोंमें भेद उत्पन्न होने पर अनेक प्रकारके भयानक और दण्डसे युक्त वचनोंके द्वारा अंगदको डरवाया ॥ ७ ॥ हे तारापुत्र, तुम युद्धमें पिताके समान हो अतएव तुम समर्थ हो। पिताके समान तुम वानरराज्यको धारण कर सकते हो ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ, वानरोंका स्वभाव सदा चंचल होता है। ये स्त्रीपुत्रसे रहित होकर तुम्हारी आज्ञाओंको सह न सकेंगे ॥ ९ ॥ स्त्रीपुत्रको छोड़ कर ये जाम्बवान् और महाकपि सुग्रीव तुममें अनुराग नहीं कर सकेंगे। यह मैं स्पष्ट कहता हूँ ॥१०॥ मैं तथा ये सब वानर साम दाम आदि गुणोंसे तथा दण्डसे, तुम्हारे द्वारा सुग्रीवसे अलग नहीं किये जा सकते ॥११॥ दुर्बलके साथ विरोध करके बलवान् अकेला रह सकता है, दुर्बल नहीं; क्योंकि उसे आत्मरक्षाकी आवश्यकता है। अतएव दुर्बलको विरोध नहीं करना चाहिए ॥१२॥ जिस गुहाको तुम रक्षक समझते हो वह निर्भय है, वह तुमने तारसे सुना है; पर इसको तोड़ देना, लक्ष्मणके बाणोंके लिए कोई कठिन नहीं है ॥१३॥ पहले वज्र चलाकर इन्द्रने थोड़ा ही नाश किया है। लक्ष्मण तीखे बाण चलाकर सबका नाश कर देगा ॥१४॥ लक्ष्मणके बहुतसे ऐसे बाण हैं जो वज्रके समान पर्वतोंको भी तोड़नेवाले हैं ॥१५॥ हे परन्तप, जब तुम इस बिलमें रहने लगोगे, उसी समय सब वानर निश्चय

स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः । खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वांकरिष्यन्तिपृष्ठतः ॥१७॥
स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः । तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि ॥१८॥
अत्युग्रवेगा निशिता घोरा लक्ष्मणसायकाः । अपावृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः ॥१९॥
अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम् । आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्येत्वांस्थापयिष्यति॥२०॥
धर्मराजः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः । शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च स त्वां जातु न नाशयेत्॥२१॥
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम् । तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम्॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् । स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
स्थैर्यमात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् । विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते ॥ २ ॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम्। धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः ॥ ३ ॥
कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा दुरात्मना । युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम् ॥ ४ ॥
सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः । विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत् ॥ ५ ॥

करके तुम्हारा त्याग कर देंगे॥१६॥ इन्हें पुत्रस्त्रियोंकी याद आवेगी, सदा उद्विग्न रहेंगे, भूख तथा अन्य दुखोंके कारण खिन्न होकर तुम्हें पीछे कर देंगे (अर्थात् तुमको छोड़ कर सुग्रीवके पास चले जावेंगे) ॥१७॥ वह तुम हित चाहनेवाले सुहृद् और बन्धुओंसे हीन होकर, उड़नेवाले तृणसे भी हलके हो जाओगे और सदा उद्विग्न रहोगे ॥१८॥ वेगवान् लक्ष्मणके भयानक और तीखे बाण रामकार्यसे विमुख तुमको मारनेके लिए तयार हो जायँगे ॥१९॥ हमलोगोंके साथ जानेपर, विनयपूर्वक सुग्रीवके सामने उपस्थित होने पर, समयसे वे तुम्हें राज्य देंगे ॥२०॥ तुम्हारे चाचा धर्मात्मा हैं, तुम्हारे ऊपर प्रेम करते हैं, शुद्ध और सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे तुम्हारा नाश कभी नहीं करेंगे ॥२१॥ तुम्हारी माताका प्रेम सुग्रीव चाहते हैं। उन्हींके लिए सुग्रीवका जीवन है। उनके दूसरा लड़का भी नहीं है। अतएव, हे अंगद, तुम चलो ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त।

धर्मयुक्त, विनीत और स्वामीके सन्मानसे युक्त, हनुमानके वचन सुनकर अंगद बोले ॥१॥ स्थिरता, आत्मा और मनकी शुद्धता, दयालुता, सरलता, विक्रम और धीरता सुग्रीवमें नहीं पाये जाते ॥ २ ॥ जेठे भाईकी प्रिय स्त्रीको, जो धर्मसे माताके तुल्य है, भाईके जीतेजी जो ग्रहण करता है वह निन्दित है ॥ ३ ॥ वह कैसे धर्मका जाननेवाला कहा जायगा, जिसने, युद्धके लिए जाते हुए भाईके द्वारा बिलकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त होकर, बिलका मुँह बन्द कर दिया ॥४॥ सत्यको साक्षी देकर, हाथ पकड़कर जिससे मैत्री की, जिसने उसका काम पहले कर दिया, उसी रामचन्द्रको जो भूल गया, वह

लक्ष्मणस्य भयेनेह नाधर्मभयभीरुणा । आदिष्टामार्गितुंसीतांधर्मस्तस्मिन्कथं भवेत् ॥ ६ ॥
तस्मिन्पापे कृतघ्ने तु स्मृतिभिन्ने चलात्मनि । आर्यः कोविश्वसेज्जातु तत्कुलीनो विशेषतः ॥ ७ ॥
राज्ये पुत्रंप्रतिष्ठाप्य सगुणो विगुणोऽपि वा । कथं शत्रुकुलीनं मां सुग्रीवो जीवयिष्यति ॥ ८ ॥
भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च भिन्नशक्तिः कथं ह्यहम् । किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः ॥ ९ ॥
उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत् । शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ॥१०॥
बन्धनाच्चावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम् । अनुजानन्तु मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः ॥११॥
अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम् । इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥१२॥
अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च । अभिवादनपूर्वं तु राघवौ बलशालिनौ ॥१३॥
वाच्यस्ताता यवीयान्मे सुग्रीवो वानरेश्वरः । आरोग्यपूर्वं कुशलं वाच्या माता रुमा च मे ॥१४॥
मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ । प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी ॥१५॥
विनष्टमिह मां श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम् । एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धां तानभिवाद्य च ॥१६॥
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मुखः । तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः ॥१७॥
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारि दुःखिताः । सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम् ॥१८॥
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम् । तद्वाक्यं वालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ॥१९॥

धर्मका स्मरण कैसे कर सकता है ॥५॥ जिसने लक्ष्मणके भयसे, न कि धर्मके भयसे, डरकर सीताको ढूंढनेकी आज्ञा दी है, उसमें धर्म कैसे रह सकता है ॥ ६ ॥ उस पापी, कृतघ्न, स्मृतिमार्गका त्याग करनेवाले, चंचल सुग्रीवपर कौन सज्जन विश्वास कर सकता है ? विशेषतः उसके कुलका ॥ ७ ॥ वह गुणी हो या निर्गुणी, इससे क्या ? पर अपने होनेवाले पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, शत्रुकुलमें उत्पन्न मुझको कैसे जीने देगा ? ॥ ८ ॥ जिसका मंत्र (आगेका कर्तव्यविषयक विचार) प्रकाशित हो गया है, जो अपराधी है, जिसकी थोड़ी शक्ति है, वह मैं किष्किन्धामें जाकर किस प्रकार जी सकूँगा, जैसे अनाथ और दुर्बल ॥ ९ ॥ क्रूर, निर्दयी सुग्रीव राज्यके कारण या तो मुझे गुप्त दण्ड दे अथवा कैद करे ॥१०॥ बन्धनके कष्टसे प्रायोपवेशन ही हमारे लिए उपयुक्त है। आपलोग मुझे आज्ञा दें, वानर अपने-अपने घर जायँ ॥११॥ मैं आपलोगोंसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं किष्किन्धापुरीमें नहीं जाऊँगा। यहीं प्रायोपवेशन करूँगा, क्योंकि मेरा मरना ही अच्छा है ॥१२॥ मेरी ओरसे अभिवादन करके राजा सुग्रीवसे कुशल कहना, और बली राम लक्ष्मणसे भी अभिवादन करके कुशल कहना। आरोग्यपूर्वक कुशल मेरी माता रुमासे कहना ॥१३, १४॥ मेरी माता ताराको धैर्य देना, क्योंकि वह विचारी स्वभाव हीसे पुत्र पर प्रेम करनेवाली और दयालु है ॥१५॥ मुझे विनष्ट हुआ सुनकर वह अवश्य ही प्राणत्याग करेगी। इतना कह कर और वृद्धोंको प्रणाम कर उदासीन मुँह अंगद रोता हुआ भूमिमें कुशा पर बैठ गया ॥१६॥ उसके बैठने पर रोते हुए दुखी वानर नेत्रोंसे उष्ण आँसू बहाने लगे। उनलोगोंने सुग्रीव की निन्दाकी और बालिकी प्रशंसा ॥१७, १८॥ अंगदको चारो ओरसे घेरकर वे सब प्रायोपवेशन करनेके लिए तयार हुए। अंगदके वचन समझकर वे सब वानर जलका आचमनकर

उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन् । दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ॥२०॥
मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह । रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ॥२१॥
जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः । हरणं चैव वैदेह्या वालिनश्च वधं तथा ॥
रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम् । ॥२२॥

स संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरो महाद्रिकूटप्रतिमैः प्लवंगमैः ।
बभूव संनादितनिर्झरान्तरो भृशं नदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले । हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥ १ ॥
संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहंगमः । भ्राता जटायुषः श्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥
कंदरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः । उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥ ३ ॥
विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते । यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः ॥ ४ ॥
परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम् । उवाचैतद्वचः पक्षी तान्निरीक्ष्य प्लवंगमान् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भक्ष्यलुब्धस्य पक्षिणः । अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

पूरब मुँह बैठ गए ॥१९॥ समुद्रके उत्तर तटपर जाकर दक्षिणकी ओर मुंहकर रखे हुए कुश पर बैठ गये ॥२०॥ मरनेकी इच्छा रखनेवाले वानरोंने 'यह उचित है' ऐसा समझा। रामचन्द्रके वनवास, दशरथकी मृत्यु, जनस्थानका वध, जटायुका वध, सीताका हरण, बालिका वध और रामचन्द्रका कोप कहते हुए वानर भयभीत हुए ॥२१॥ पर्वतशिखरके समान बड़े-बड़े वानरोंके बैठनेसे वह पर्वत, गर्जनेवाले मेघोंसे आकाशके समान, शब्दायमान झरना वाला मालूम पड़ा ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ।

पर्वतके जिस पत्थरपर वे वानर प्रायोपवेशनके लिए बैठे थे वहीं सम्पाती नामका चिरजीवी, गृध्रराज पक्षी आया, जिसका नाम सम्पाती था, जो जटायुका भाई था, जिसके बल और पौरुषकी प्रशंसा थी ॥१,२॥ विंध्याकी कन्दरासे निकलकर, बैठे हुए वानरोंको देखकर प्रसन्न होकर बोला ॥३॥ जिस प्रकार कर्मके अनुसार लोकमें मनुष्योंको फल मिलता है, उसी प्रकार पूर्व अर्जित कर्मसे प्राप्त यह भोजन मेरे लिए आया है ॥४॥ उन वानरोंको देखकर पक्षी बोला—जैसे जैसे वानर मरते जाँयगे, उसी क्रमके अनुसार मैं उन्हें खाऊँगा ॥५॥ भोजनलोभी उस पक्षीके वचन सुनकर उद्विग्न होकर अंगद

पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः । इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां विपत्तये ॥ ७ ॥
रामस्य न कृतं कार्यं न कृतं राजशासनम् । हरीणामियमज्ञाता विपत्तिः सहसागता ॥ ८ ॥
वैदेह्याः प्रियकामेन कृतं कर्म जटायुषा । गृध्रराजेन यत्तत्र श्रुतं वस्तदशेषतः ॥ ६ ॥
तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि । प्रियंकुर्वन्तिरामस्यत्यक्त्वाप्राणान्यथावयम्॥१०॥
अन्योन्यमुपकुर्वन्ति स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः । ततस्तस्योपकारार्थं त्यज्यतात्मानमात्मना ॥११॥
प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा । राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः ॥१२॥
कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म नच पश्याम मैथिलीम् । स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ॥
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च परमां गतिम् । ॥१३॥
जटायुषो विनाशेन राज्ञो दशरथस्य च । हरणेन च वैदेह्याः संशयं हरयो गताः ॥१४॥
रामलक्ष्मणयोर्वासमरण्ये सह सीतया । राघवस्य च बाणेन वालिनश्च तथा वधम् ॥१५॥
रामकोपादशेषाणां रक्षसां च तथा वधम् । कैकेय्या वरदानेन इदं च विकृतं कृतम् ॥१६॥

तदसुखमनुकीर्तितं वचो भुवि पतितांश्च निरीक्ष्य वानरान् ।
भृशचकितमतिर्महामतिः कृपणमुदाहृतवान्स गृध्रराजः ॥१७॥

तत्तु श्रुत्वा तथा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् । अब्रवीद्वचनं गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो महास्वनः ॥१८॥
कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे । जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः ॥१६॥

हनुमानसे बोले—देखो सीताके व्याजसे साक्षात् यमराज इस वेषमें वानरोंपर विपत्ति डालनेके लिए आए हैं ॥७॥ न तो रामका कार्य किया और न राजाकी आज्ञाका पालन; बिना जानी हुई वानरोंपर यह सहसा विपत्ति कहाँसे आयी ॥८॥ सीताका प्रिय करनेके लिए गृध्रराज जटायुने काम किया है, वह समस्त आपलोगोंने सुना है ॥९॥ पक्षियोनिमें उत्पन्न भी प्राणी रामचन्द्रका प्रिय कार्य प्राण त्यागकर करते हैं ॥१०॥ स्नेह और दयाके कारण सज्जन, परस्परका उपकार करते हैं, अतएव रामचन्द्रके उपकारके लिए स्वयं अपने, अपने शरीरका त्याग करो ॥११॥ धर्मज्ञ जटायुने रामचन्द्रका प्रिय किया । रामचन्द्रके लिए थककर हम लोग भी अब अपने प्राणोंका त्याग करें ॥१२॥ वनमें हम लोग आए; पर जानकी नहीं मिली । वही गृधराज ही सुखी हैं, जो रणमें रावणके द्वारा मारा गया और सुग्रीवके भयसे छूट गया तथा जिसने उत्तम गति पायी ॥१३॥ जटायु और दसरथके मरनेसे सीताके हरणसे आज वानरोंपर यह संकट आया ॥१४॥ राम-लक्ष्मणका सीताके साथ वनवास होना, रामचन्द्रके बाणसे बालिका मरना, रामचन्द्रके कोपसे समस्त राक्षसोंका वध, कैकेयीके वरदानसे ही यह सब गड़बड़ी हुई ॥१५,१६॥ वानरोंके द्वारा कहा गया, दुखमय वह वचन सुनकर और जमीनमें पड़े वानरोंको देखकर गृध्रराज सम्पाती बहुत चकित हुआ और बुद्धिमान गृध्रराज दीनतापूर्वक बोला ॥१७॥ अंगदके मुँहसे निकले इन वचनोंको सुनकर तीक्ष्णतुण्ड, घोर शब्द करनेवाला गृध्रराज बोला ॥१८॥ यह कौन प्राणोंसे प्रिय मेरे भाई जटायुके वधकी बात कहता है और मेरा मन कँपाता है । राक्षस और गृध्रके साथ जन-

कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः । नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम् ॥२०॥
इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम् । यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ॥२१॥
अतिदीर्घस्य कालस्य परितुष्टोऽस्मि कीर्तनात् । तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः ॥२२॥
भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः । तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम् ॥२३॥
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः । सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्न शक्नोमि विसर्पितुम् ॥
इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिंदमाः । ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

शोकाद्भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा वानरयूथपाः । श्रद्दधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणा तस्य शङ्किताः ॥ १ ॥
ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृध्रं प्लवंगमाः । चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति ॥ २ ॥
सर्वथा प्रायमासीनान्यदि नो भक्षयिष्यति । कृतकृत्या भविष्यामः क्षिप्रं सिद्धिमितो गताः ॥३॥
एतां बुद्धिं ततश्चक्रुः सर्वे ते हरियूथपाः । अवतार्य गिरेः शृङ्गाद्गृध्रमाहाङ्गदस्तदा ॥ ४ ॥
बभूवर्क्षरजो नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान् । ममार्यः पार्थिवः पक्षिन्धार्मिकौ तस्य चात्मजौ॥५॥
सुग्रीवश्चैव वाली च पुत्रौ घनबलावुभौ । लोके विश्रुतकर्माभूद्राजा वाली पिता मम ॥ ६ ॥

स्थानमें कैसा युद्ध था । बहुत दिनोंके बाद मैंने भाईका यह नाम सुना ॥१९,२०॥ मैं चाहता हूँ कि पर्वतके ऊपरसे आप लोग हमें उतारें । छोटे गुणज्ञ और पराक्रमसे श्लाघनीय अपने भाई जटायुके कीर्तनसे मैं प्रसन्न हूँ । अतएव मैं उनके मरनेकी बात सुनना चाहता हूँ । जनस्थान-निवासी मेरे भाई जटायु थे, उसी भाईके मित्र राजा दसरथ थे, जिसके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र हैं और जो अपने बड़ोंके प्रिय हैं। सूर्य किरणोंसे पाँखके जल जानेके कारण मैं चल नहीं सकता । मैं इस पर्वतसे उतरना चाहता हूँ ॥ २१,२२,२३,२४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ।

शोकके कारण सम्पातीका टूटा हुआ स्वर सुनकर भी वानरोंने उसके वचन पर विश्वास नहीं किया; क्योंकि उसके कर्मों से वे शंकित होगए थे । अर्थात् भोजन ढूँढता हुआ वह यहाँ आया था ॥१॥ प्रायोपवेशनमें बैठे हुए वे सब वानर गृध्रको देखकर "हम सब लोगोंको यह खाजायगा" ऐसा भयानक विचार उन लोगोंने किया ॥२॥ यदि प्रायोपवेशनके लिए बैठे हुए हम सबको खाजायगा तो हम लोग कृतार्थ होजायगें, क्योंकि हम लोगोंको शीघ्र ही सिद्धि मिल जायगी ॥३॥ उन वानरोंने ऐसा निश्चय करके सम्पातीको पर्वतसे उतारा । अनन्तर अंगद उससे बोले ॥४॥ हे पक्षिन्, ऋक्षरज नामके प्रतापी वानरराज हुए, वे हमारे पितामह थे । उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ सुग्रीव और बालि, ये दोनों बड़े

राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः । रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ७ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया । पितुर्निदेशनिरतो धर्मं पन्थानमाश्रितः ॥ ८ ॥
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् । रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट् ॥ ९ ॥
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा । रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम् ॥
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे । ॥१०॥
एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा । संस्कृतश्चापि रामेण जगाम गतिमुत्तमाम् ॥११॥
ततो मम पितृव्येण सुग्रीवेण महात्मना । चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत्पितरं मम ॥१२॥
मम पित्रा निरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह । निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥१३॥
स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानरेश्वरः । राजा वानरमुख्यानां तेनमस्थापितावयम् ॥१४॥
एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः । वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव ॥१५॥
ते वयं दण्डकारण्यं विचित्य सुसमाहिताः । अज्ञानात्तु प्रविष्टाः स्म धरण्या विवृतं बिलम् ॥१६॥
मयस्य मायाविहितं तद्बिलं च विचिन्वताम् । व्यतीतस्तत्र नो मासो यो राज्ञा समयः कृतः ॥१७॥
ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः । कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात्प्रायमुपासिताः ॥१८॥
क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे । गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम् ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥



बलवान हुए, राजा बालि बहुत प्रसिद्ध हुआ । वह मेरा पिता था ॥६॥ समस्त लोकके स्वामी इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न श्रीमान् रामचन्द्र दण्डकवनमें आए ॥७॥ पिताकी आज्ञासे धर्मपालनके लिए लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्र आए । जनस्थानसे रावणने उनकी स्त्री सीताको बलपूर्वक हर लिया । रामके पिताके मित्र जटायु नामके गृध्रराज थे ॥८,९॥ उन्होंने आकाशमार्गसे सीताको हरी जाती देखा । उन्होंने रावणको रथहीन करके सीताको भूमिमें बैठाया । थके बूढ़े गृध्रराजको युद्धमें रावणने मार दिया ॥१०॥ बलवान् रावणने इस प्रकार गृध्रराजको मारा; रामचन्द्रने उनका अन्तिम संस्कार किया और उन्होंने उत्तम गति पायी ॥११॥ अनन्तर मेरे चाचा सुग्रीवने रामचन्द्रसे मित्रता की और रामचन्द्रने मेरे पिताका वध किया ॥१२॥ मेरे पिताने सचिवोंके साथ सुग्रीवको निकाल दिया था । बालिको मारकर रामचन्द्रने सुग्रीवका अभिषेक किया ॥१३॥ रामचन्द्रने सुग्रीवको राज्यपर बैठाया । वानरोंके राजा सुग्रीवने हम लोगोंको भेजा है ॥१४॥ रामकी आज्ञासे भेजे हुए हमलोग सीताको ढूँढ़ते हैं । जिस प्रकार रात्रिमें सूर्य-प्रभा नहीं मिलती उसी प्रकार सीता अभी तक हमलोगोंको नहीं मिली ॥१५॥ हम लोगोंने साव-धानीसे दण्डकारण्यको ढूँढ़ डाला, अनन्तर अज्ञानसे पृथिवीके एक बिलमें हम लोग चले गए ॥१६॥ मयकी मायासे बने हुए उस बिलमें ढूँढनेके कारण हम लोगोंका वह महीना बीत गया, जिसकी हम लोगोंको राजाने अवधि दी थी ॥१७॥ हम सब लोग वानरराजकी आज्ञा माननेवाले हैं । उनकी दी हुई अवधि हम लोगोंने तोड़ दी है, अतएव प्रायोपवेशन हम कर रहे हैं ॥१८॥ रामचन्द्र सुग्रीव और

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः । सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥ १ ॥
यवीयान्स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः । यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ २ ॥
वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपि मर्षये । नहि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥ ३ ॥
पुरा वृत्रवधे वृत्ते स चाहं च जयैषिणौ । आदित्यमुपयातौस्वोज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ॥ ४ ॥
आवृत्त्याकाशमार्गेण जवेन स्वर्गतौ भृशम् । मध्यं प्राप्ते तु सूर्ये तु जटायुरवसीदति ॥ ५ ॥
तमहं भ्रातरं दृष्ट्वा सूर्यरश्मिभिरर्दितम् । पक्षाभ्यां छादयामास स्नेहात्परमविह्वलम् ॥ ६ ॥
निर्दग्धपत्रः पतितो विन्ध्येऽहं वानरर्षभाः । अहमस्मिन्वसन्भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये ॥ ७ ॥
जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा संपातिना तदा । युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा ॥ ८ ॥
जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया । आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः ॥९॥
अदीर्घदर्शिनं तं वै रावणं राक्षसाधमम् । अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः ॥१०॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा भ्राता ज्येष्ठो जटायुषः । आत्मानुरूपं वचनं वानरान्संप्रहर्षयन् ॥११॥
निर्दग्धपक्षो गृध्रोऽहं गतवीर्यः प्लवंगमाः । वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥१२॥

लक्ष्मणके क्रोध करनेपर यदि हम लोग उनके समीप जांय तो हमारे प्राण नहीं बच सकते ॥१९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ।



इस प्रकार प्राणका भय छोड़े हुए वानरोंके दीनवचन सुनकर, आँखोंमें आँसू भरकर, गृध्रराजने जोरके शब्दोंमें उत्तर दिया ॥१॥ वानरो ! बलवान रावणके द्वारा जिसे तुम लोग युद्धमें मारा गया कहते हो वह जटायु मेरा छोटा भाई था ॥२॥ वृद्ध होनेके कारण, भाईके वैरका बदला लेनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । अतएव वह अप्रिय बात सुनकर भी मैं सहता हूँ ॥३॥ पहले वृत्रासुरके वध होनेपर जयकी इच्छा रखनेवाले हम दोनों उड़कर जलते हुए सूर्यके पास पहुँचे ॥४॥ आकाशमार्गमें चक्कर काटकर वेगपूर्वक हम लोग स्वर्ग गए । बीचमें सूर्यके मिलनेसे जटायु थक गया ॥५॥ तब हमने सूर्यकी किरणोंसे पीड़ित भाईको दुखी देखकर अपनी पांखसे उसे छिपा लिया ॥६॥ वानरो, पाँखके जल जानेसे मैं इस विंध्यपर्वत पर गिर पड़ा । मैं यहीं रहता हूँ । अतएव भाईका कोई समाचार मुझे न मिल सका ॥७॥ जटायुके भाई सम्पातीके ऐसा कहने पर बुद्धिमान युवराज अंगद बोले ॥८॥ तुम यदि जटायुके भाई हो, यदि तुमने मेरी कही बात सुनी है और यदि उस राक्षसका घर तुम जानते हो तो बतलाओ ॥९॥ परिणाम न जाननेवाले उस राक्षसाधम रावणको, चाहे पास हो या दूर, तुम बतलाओ ॥१०॥ महातेजस्वी जटायुका बड़ा भाई वानरोंको प्रसन्न करता हुआ, अपने योग्य वचन बोला ॥११॥ मैं जले पाँखोंका गृध्र हूँ, बल हीन हूँ, अतएव केवल वचनके द्वारा रामचन्द्रकी मैं सहायता कर सकता हूँ ॥१२॥ मैं

जानामि वारुणांल्लोकान्विष्णोस्त्रैविक्रमानपि । देवासुरविमर्दांश्च ह्यमृतस्य विमन्मथन ॥१३॥
रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया । जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥१४॥
तरुणी रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता । ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥१५॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती ॥१६॥
सूर्यप्रभेव शैलाग्रे तस्याः कौशेयमुत्तमम् । असिते राक्षसे भाति यथा विद्युदिवाम्बरे ॥१७॥
तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् । श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः ॥१८॥
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भ्राता वैश्रवणस्य च । अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः ॥१९॥
इतो द्वीपे समुद्रस्य संपूर्णे शतयोजने । तस्मिंल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥२०॥
जाम्बूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः । प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥२१॥
प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता । तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२२॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । जनकस्यात्मजा राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥२३॥
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ । आद्यः पन्थाः कुलिङ्गानां ये चान्ये धान्यजीविनः२४॥
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशनाः । भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौञ्चाश्च कुररैः सह ॥२५॥
श्येनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्ति पञ्चमम् । बलवीर्योपपन्नानां रूपयौवनशालिनाम् ॥२६॥

वरुणके लोकोंको, त्रिविक्रमके लोकोंको, देवासुर युद्धको, और अमृतके मन्थनको जानता हूँ । अर्थात् ये सब मेरे देखे हुए हैं ॥१३॥ वृद्धावस्थाने मेरे तेज हरणकर लिए, मेरे प्राण शिथिल हो गए, फिर भी रामचन्द्रका यह कार्य मुझे पहले करना चाहिए ॥१४॥ रूपवती सब आभूषणोंसे भूषित एक स्त्रीको हरकर लेजाते हुए दुरात्मा रावणको मैंने देखा है ॥१५॥ वह स्त्री 'राम' 'राम' और 'लक्ष्मण' 'लक्ष्मण' चिल्लाती थी, गहनोंको फेंकती थी और अंगोंको पटकती थी ॥१६॥ पर्वतके शिखर पर सूर्यप्रभाके समान उसका रेशमी वस्त्र काले राक्षसके साथ आकाशमें बिजलीके समान मालूम होता था ॥१७॥ रामका नाम लेनेसे मैं उस स्त्रीको सीता समझता हूँ । उस राक्षसका घर मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥१८॥ विश्रवाका पुत्र और वैश्रवणका भाई राक्षस रावण लंकानगरीमें रहता है ॥१९॥ सौ योजनके बाद समुद्रके द्वीपमें विश्वकर्माने रमणीय लंकापुरी बनायी है ॥२०॥ लंकाके द्वार और चौतरे सोनेके बने हुऐ हैं । उसमें सोनेके बड़े बड़े महल हैं ॥२१॥ सूर्यके समान चमकीली चारदिवारी लंकाके चारों ओर है। उसमें पीताम्बरधारिणी दुखिनी सीता रहती है ॥२२॥ रावणके महलमें रखी गयी, राक्षसियोंके द्वारा सुरक्षित, राजा जनककी कन्या सीताको तुम लोग देखोगे ॥२३॥ ज्ञानसे मैं देखरहा हूँ, तुम लोग सीता को देखकर लौट आसकते हो । आकाशका पहला मार्ग कुलिंग पक्षियोंका है और अन्न खानेवाले कबूतर आदिका ॥२४॥ उससे ऊपरका मार्ग वृक्षफल खानेवाले और काक आदि पक्षियोंका है । क्रौंच, कुरर तथा भास पक्षी और ऊँचे तीसरे मार्गसे जाते हैं ॥२५॥ चौथे मार्गसे बाज और पांचवे मार्गसे गृध्र जाते हैं । बलवीर्ययुक्त रूपयौवनसे शोभित हंसोंका छठामार्ग है, इससे ऊँचेका मार्ग गरुड़का है । वानरो,

षष्ठस्तु पन्था हंसानां वैनतेयगतिः परा । वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः ॥२७॥
गर्हितं तु कृतं कर्म येन स्म पिशिताशिनः । प्रतिकार्यं च मे तस्य वैरं भ्रातृकृतं भवेत् ॥२८॥
इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा । अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा ॥२९॥
तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः । आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्याम नित्यशः ॥३०॥
अस्माकं विहिता वृत्तिर्निसर्गेण च दूरतः । विहिता वृक्षमूले तु वृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥३१॥
उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः । अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ ॥३२॥
समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्भिर्वरुणालयम् । प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गतस्य महात्मनः ॥३३॥
ततो नीत्वा तु तं देशं तीरे नदनदीपतेः । निर्दग्धपक्षं संपातिं वानराः सुमहौजसः ॥३४॥
तं पुनः प्रापयित्वा च तं देशं पतगेश्वरम् । बभूवुर्वानरा हृष्टाः प्रवृत्तिमुपलभ्य ते ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्ठितमः सर्गः ५९

ततस्तदमृतास्वादं गृध्रराजेन भाषितम् । निशम्य वदतो हृष्टास्ते वचः प्लवंगर्षभाः ॥ १ ॥
जाम्बवान्वानरश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवंगमैः । भूतलात्सहसोत्थाय गृध्रराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥
क्व सीता केन वा दृष्टा को वा हरति मैथिलीम् । तदाख्यातु भवान्सर्वं गतिर्भव वनौकसाम् ॥ ३ ॥

हम लोगोंका जन्म गरुड़से हुआ है ॥२६,२७॥ रावणने निन्दित काम किया है । भाईके वैरका बदला आप लोगोंके द्वारा चुकाया जा सकता है ॥२८॥ मैं यहींसे रावण और जानकीको देखता हूँ । हम लोगोंको भी गरुड़के समान देखनेकी शक्ति है ॥२९॥ भोजनके बलसे तथा स्वभावसे सौ योजन तथा इसके आगे तक हम लोग देख सकते हैं ॥३०॥ हम लोगोंकी वृत्ति (जीविका) दूरसे देखी वस्तुओंसे होती है और मुर्गोंकी जीविका पेड़ोंकी जड़के पाससे होती है । ऐसा ही विधान है ॥३१॥ लवणसमुद्रके पार जानेका कोई उपाय निश्चित करो । सीताके पास जाकर तुम लोग सफलमनोरथ होकर लौटोगे ॥३२॥ स्वर्गगत महात्मा भाईको मैं जल देना चाहता हूँ, अतएव मैं चाहता हूँ कि आप लोग मुझे समुद्रके तीर ले चलें ॥३३॥ पराक्रमी वानर जले पांखवाले संम्पातीको समुद्रके तीरपर लेगये और पुनः वहाँसे उनके रहनेके स्थानपर लेआए । सीताका पता पाकर वानर बहुत प्रसन्न हुए ॥३४,३५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ।

अमृतके समान, गृध्रराजके वचन सुनकर वानर प्रसन्न हुए और गृध्रराजकी कही बात बारबार कहने लगे ॥१॥ पृथिवीसे सहसा उठकर वानरोंके साथ वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् गृध्रराजके पास पहुँचे और बोले ॥२॥ सीता कहाँ है, किसने देखी है और किसने उसका हरण किया है, यह सब आप मुझसे

को दाशरथिबाणानां वज्रवेगनिपातिनाम् । स्वयं लक्ष्मणमुक्तानां न चिन्तयति विक्रमम् ॥ ४ ॥
स हरीन्प्रति संमुक्तान्सीताश्रुतिसमाहितान् । पुनराश्वासयन्प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
श्रूयतामिह वैदेह्या यथा मे हरणं श्रुतम् । येन चापि ममाख्यातं यत्र चायतलोचना ॥ ६ ॥
अहमस्मिन्गिरौ दुर्गे बहुयोजनमायते । चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीणप्राणपराक्रमः ॥ ७ ॥
तं मामेवं गतं पुत्रः सुपार्श्वो नाम नामतः । आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः ॥ ८ ॥
तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजंगमाः । मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥९॥
स कदाचित्क्षुधार्तस्य ममाहाराभिकाङ्क्षिणः। गतः सूर्येऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः ॥१०॥
स मयाहारसंरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः । अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥११॥
अहं तात यथाकालमामिषार्थी खमाप्लुतः । महेन्द्रस्य गिरेर्द्वारमावृत्य सुसमाश्रितः ॥१२॥
तत्र सत्त्वसहस्राणां सागरान्तरचारिणाम् । पन्थानमेकोऽध्यवसं संनिरोद्धुमवाङ्मुखः ॥१३॥
तत्र कश्चिन्मया दृष्टः सूर्योदयसमप्रभाम् । स्त्रियमादाय गच्छन्वै भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥१४॥
सोऽहमभ्यवहारार्थं तौ दृष्ट्वा कृतनिश्चयः । तेन साम्ना विनीतेन पन्थानमनुयाचितः ॥१५॥
नहि सामोपपन्नानां प्रहर्ता विद्यते भुवि । नीचेष्वपि जनः कश्चित्किमङ्ग बत मद्विधः ॥१६॥
स यातस्तेजसा व्योम संक्षिपन्निव वेगितः । अथाहं खेचरैर्भूतैरभिगम्य सभाजितः ॥१७॥
दिष्ट्या जीवति सीतेति अब्रुवन्मां महर्षयः । कथंचित्सकलत्रोऽसौ गतस्ते स्वस्त्यसंशयम् ॥१८॥

कहें और वानरोंकी रक्षा करें ॥३॥ वज्रके समान स्वयं गिरनेवाले, लक्ष्मण और रामचन्द्रके बाणोंके पराक्रमको कौन याद नहीं करता है ॥४॥ सीताका पता सुननेसे सावधान और प्रसन्न वानरोंको प्रसन्नता पूर्वक पुनः विश्वास दिलाते हुए सम्पातीने ये बातें कहीं ॥५॥ सुनो, जिस प्रकार मैंने सीताके हरी जानेकी बात सुनी और जिसने कही, और जहाँ वह है ॥६॥ मैं बहुत दिनोंसे इस विशाल पर्वतपर बलहीन होकर पड़ा हूँ ॥७॥ मेरी ऐसी अवस्था होनेपर, पक्षियोंमें श्रेष्ठ पार्श्व नामक मेरा पुत्र, समय समय पर मेरा आहार देता है ॥८॥ गंधर्व बड़े कामी, सर्प बड़े क्रोधी, पशु बड़े भीरु और हम लोग बड़े भूखे होते हैं ॥९॥ मैं एक समय भूखा था, भोजन चाहता था । मेरे लिए भोजन लानेके लिए मेरा वह पुत्र गया और संध्याको बिना मांसके लौटा ॥१०॥ मैंने भोजनके लिए जब उसे डाँटा तब मुझसे क्षमा माँगकर उसने यथार्थ बातें कहीं ॥११॥ पिता, मांसके लिए यथा समय मैं आकाशमें उड़ा और महेन्द्रपर्वतके द्वारको रोककर बैठ गया ॥१२॥ सागरके हजारों प्राणियोंको रोकनेके लिए सिर नीचा किए अकेला मैं, मार्ग रोककर बैठा ॥१३॥ उस समय मैंने एक काले पुरुषको प्रातःकालीन सूर्यप्रभाके समान एक स्त्री लिए जाते देखा ॥१४॥ उन दोनोंको देखकर भोजनके लिए उन्हींको ले आनेका मैंने निश्चय किया; पर उसने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर मार्ग देनेके लिए कहा ॥१५॥ विनयपूर्वक व्यवहार करनेवालों पर नीच मनुष्योंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो प्रहार करे, फिर मेरे समान आदमी उसपर प्रहार कैसे करता ॥१६॥ तेजसे आकाशको प्रकाशित करता हुआ वह वेगपूर्वक चला गया । इसके अनन्तर आकाशचारी सिद्धोंने मेरी पूजा की ॥१७॥ महर्षियोंने मुझसे कहा कि सीता जीती है, यह प्रसन्नताकी बात है । किसी

एवमुक्तस्ततोऽहं तैः सिद्धैः परमशोभनैः । स च मे रावणो राजा रक्षसां प्रतिवेदितः ॥१९॥
पश्यन्दाशरथेर्भार्यां रामस्य जनकात्मजाम् । भ्रष्टाभरणकौशेयां शोकवेगपराजिताम् ॥२०॥
रामलक्ष्मणयोर्नाम क्रोशन्तीं मुक्तमूर्धजाम् । एष कालात्ययस्तात इति वाक्यविदां वरः ॥२१॥
एतदर्थं समग्रं मे सुपार्श्वः प्रत्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वापि हि मे बुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे॥२२॥
अपक्षो हि कथं पक्षी कर्म किंचित्समारभेत् । यत्तु शक्यं मया कर्तुं वाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥२३॥
श्रूयतां तत्र वक्ष्यामि भवतां पौरुषाश्रयम् । वाङ्मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः॥२४॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः । तद्भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ॥२५॥
प्रहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः । रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः ॥२६॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे । कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥
भवतां तु समर्थानां न किंचदपि दुष्करम् । ॥२७॥
तदलं कालसङ्गेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः । नहि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनषष्ठितमः सर्गः॥५९॥



प्रकार स्त्रीके साथ वह चला गया। तुम्हारा कल्याण हो ॥१८॥ इस प्रकार परमशोभायमान सिद्धोंने मुझसे यह कहा, यह राक्षसोंका राजा रावण है यह भी उन लोगोंने बतलाया ॥१९॥ जनकपुत्री, रामकी स्त्री, भूषणरहित, केवल रेशमी वस्त्र पहने हुए, शोकसे पीड़ित, राम लक्ष्मणको पुकारती हुई, और खुले केशवाली सीताको देखनेके कारण मुझे इतना विलम्ब हो गया ॥२०,२१॥ यह सब बातें सुपार्श्वने कही हैं। यह सुनकर भी किसी प्रकारका उद्योग करनेकी मेरी इच्छा नहीं थी ॥२२॥ क्योंकि पक्षहीन पक्षी कोई काम कैसे कर सकता है। वचन, बुद्धि, गुणोंके द्वारा जो कुछ मैं कर सकता हूँ वह सब तुम लोगोंके पराक्रम से सिद्ध होनेके लिए कहता हूँ। सुनो, वचन और बुद्धिके द्वारा तुम लोगोंका हित मैं करूँगा ॥२३,२४॥ रामचन्द्रका जो कार्य है, वह मेराही है, इसमें सन्देह नहीं। आप लोग भी बुद्धिमान, बलवान और मनस्वी हैं ॥२५॥ सुग्रीवने आप लोगोंको भेजा है। देवता भी आप लोगोंसे पार नहीं पा सकते। कंकपत्रवाले रामचन्द्रके बाण तीनों लोकोंकी रक्षा और उनको दण्ड देनेमें समर्थ हैं ॥२६॥ यद्यपि रावण तेज और बलसे युक्त है, फिर भी समर्थ आप लोगोंके लिए कुछ कठिन नहीं है ॥२७॥ काल-विलम्ब व्यर्थ है, अब विचार करके निश्चय करना चाहिए। आपके समान बुद्धिमान कार्यों में विलम्ब नहीं करते ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त।



षष्टितमः सर्गः ६०

ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हरियूथपाः । उपविष्टा गिरौ रम्ये परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥
तमङ्गदमुपासीनं तैः सर्वैर्हरिभिर्वृतम् । जनितप्रत्ययो हर्षात्संपातिः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥
कृत्वा निःशब्दमेकाग्राः शृण्वन्तु हरयो मम । तथ्यं संकीर्तयिष्यामि यथा जानामि मैथिलीम् ॥३॥
अस्य विन्ध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरानघ । सूर्यतापपरीताङ्गो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः ॥ ४ ॥
लब्धसंज्ञस्तु षड्रात्राद्विवशो विह्वलन्निव । वीक्षमाणो दिशः सर्वा नाभिजानामि किंचन ॥५ ॥
ततस्तु सागराञ्शैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च । वनानि च प्रदेशांश्च निरीक्ष्य मतिरागता ॥ ६ ॥
हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कंदरोदरकूटवान् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चितः ॥७॥
आसीच्चात्राश्रमं पुण्यं सुरैरपि सुपूजितम् । ऋषिर्निशाकरो नाम यस्मिन्नुग्रतपा भवत् ॥ ८ ॥
अष्टौ वर्षसहस्राणि तेनास्मिन्नृषिणा गिरौ । वसतो मम धर्मज्ञे स्वर्गते तु निशाकरे ॥ ९ ॥
अवतीर्य च विन्ध्याग्रात्कृच्छ्रेण विषमाच्छनैः । तीक्ष्णदर्भां वसुमतीं दुःखेन पुनरागतः ॥१०॥
तमृषिं द्रष्टुकामोऽस्मि दुःखेनाभ्यागतोभृशम् । जटायुषा मया चैव बहुशोऽधिगतो हि सः ॥११॥
तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताः सुगन्धिनः । वृक्षो नापुष्पितः कश्चिदफलो वा न दृश्यते ॥१२॥
उपेत्य चाश्रमं पुण्यं वृक्षमूलमुपाश्रितः । द्रष्टुकामः प्रतीक्षे च भगवन्तं निशाकरम् ॥१३॥
अथ पश्यामि दूरस्थमृषिं ज्वलिततेजसम् । कृताभिषेकं दुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥१४॥

जल देकर और स्नान करके पर्वत पर बैठे गृध्रराजके चारों ओर वानर बैठ गए ॥१॥ सब वानरोंके साथ बैठे हुए अंगदसे प्रसन्नतापूर्वक सम्पाती पुनः बोला; सम्पातीका वानरों पर विश्वास हो गया था। चुपचाप एकाग्र होकर वानर सुनें, मैं यथार्थ बातें करता हूँ। जिस प्रकार मैं जानकीको जानता हूँ ॥२,३॥ इस विन्ध्य पर्वतके शिखर पर पहले सूर्यकी किरणोंसे जलकर मैं गिरा था ॥४॥ छः दिनोंके बाद मुझे होश हुआ। हाथ पैर अवश थे। मैं व्याकुल होकर चारों ओर दिशाएं देखने लगा, पर कुछ भी जान न सका ॥५॥ अनन्तर पर्वत, समुद्र, नदी, तालाब, वन और नगर देखने पर मुझे बुद्धि आयी ॥६॥ मैंने समझा, प्रसन्न पक्षियोंसे युक्त, कंदरा और शिखरवाला यह विन्ध्यपर्वत है, जो दक्षिण समुद्रके तीर पर है ॥७॥ यहां देवताओंसे भी पूजित एक पवित्र आश्रम था, जिसमें निशाकर नामक ऋषि बड़े उग्रतपस्वी थे ॥८॥ धर्मज्ञ निशाकरके स्वर्ग जाने पर उनके विना रहते हुए मुझे आठ हजार वर्ष बीत गए ॥९॥ कष्टसे, विन्ध्यके विषम शिखरसे धीरे धीरे उतर कर तीखे कुशवाली पृथिवी पर मैं पुनः आया ॥१०॥ उन ऋषिको मैं देखना चाहता था, इसलिए दुखसे मैं पुनः आया; क्योंकि जटायुसे और मुझसे वे कई बार मिल चुके थे ॥११॥ उनके आश्रमके पास सुगन्धित हवा बहती थी। वहाँ कोई ऐसा वृक्ष नहीं था जो फूला फला न हो ॥१२॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर एक वृक्षके नीचे मैं बैठ गया। भगवान निशाकरको देखनेके लिए मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा ॥१३॥ उन ऋषिको दूरहीसे आते हुए

तमृक्षाः सृमरा व्याघ्राः सिंहा नानासरीसृपाः। परिवार्योपगच्छन्ति दातारं प्राणिनो यथा ॥१५॥
ततः प्राप्तमृषिं ज्ञात्वा तानि सत्त्वानि वै ययुः। प्रविष्टे राजनि यथा सर्वं सामात्यकं बलम् ॥१६॥
ऋषिस्तु दृष्ट्वा मां तुष्टः प्रविष्टश्चाश्रमं पुनः। मुहूर्तमात्रान्निर्गम्य ततः कार्यमपृच्छत ॥१७॥
सौम्य वैकल्यतां दृष्ट्वा रोम्णां ते नावगम्यते। अग्निदग्धाविमौ पक्षौ प्राणाश्चापि शरीरके ॥१८॥
गृध्रौ द्वौ दृष्टपूर्वौ मे मातरिश्वसमौ जवे। गृध्राणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ ॥१९॥
ज्येष्ठोऽवितस्त्वं संपाते जटायुरनुजस्तव। मानुषं रूपमास्थाय गृह्णीतां चरणौ मम ॥२०॥
किं ते व्याधिसमुत्थानं पक्षयोः पतनं कथम्। दण्डो वायं धृतः केन सर्वमाख्याहि पृच्छतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

ततस्तद्दारुणं कर्म दुष्करं सहसा कृतम्। आचचक्षे मुनेः सर्वं सूर्यानुगमनं तथा ॥ १ ॥
भगवन्व्रणयुक्तत्वाल्लज्जया चाकुलेन्द्रियः। परिश्रान्तो न शक्नोमि वचनं परिभाषितुम् ॥ २ ॥
अहं चैव जटायुश्च संघर्षाद्दर्पमोहितौ। आकाशं पतितौ दूराज्जिज्ञासन्तौ पराक्रमम् ॥ ३॥

देखा, तेजसे वह जल रहे थे। स्नान किए हुए थे, उत्तरकी ओर आ रहे थे ॥१४॥ भालू, बाघ, सिंह, रेंगकर चलनेवाले जन्तु उनके साथ साथ आते थे, जैसे दाताके साथ याचक ॥१५॥ ऋषिको आश्रम पर आया जानकर वे सब जन्तु लौट गये, जिस प्रकार राजाके महलमें जाने पर दीवान, सैनिक आदि लौट जाते हैं ॥१६॥ ऋषि मुझको देखकर प्रसन्न हुए और आश्रममें चले गए। थोड़ी देरमें लौटकर उन्होंने मुझसे कार्य पूछा ॥१७॥ सौम्य, तुम्हारे रोमकी विकृति देखनेसे तुम नहीं पहिचाने जाते। तुम्हारी पांख आगसे जल गयी है और प्राण भी जल गए हैं ॥१७॥ वेगमें वायुके समान दो गृध्र मैंने पहले देखे थे। दोनों भाई थे, इच्छानुसार रूप धर सकते थे और वे गृध्रोंके राजा थे ॥१९॥ सम्पाती तुम बड़े हो यह मैं जानता हूँ, जटायु तुम्हारा छोटा भाई है। मनुष्यका रूप धर कर तुम लोगोंने मेरे चरण ग्रहण किये थे ॥२०॥ तुम्हें क्या रोग हुआ है? ये पांख कैसे गिर गए अथवा किसीने दण्ड दिया है, यह सब तुम मुझसे कहो ॥२१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त।

अनन्तर मैंने जो कठोर और दुष्कर काम (अर्थात् इन्द्रसे युद्ध) विना कारण किया था, वह बतलाया और सूर्यका पीछा करनेकी भी बात कही ॥१॥ भगवन्, घाव होनेके कारण तथा लज्जासे हमारी इन्द्रियां व्याकुल हो गयी हैं, हम थक गए हैं अतएव आपसे ठीक ठीक बातें करनेमें असमर्थ हैं ॥२॥ गर्वसे मोहित मैं और जटायु परस्पर जीतनेकी इच्छा रखते थे। बड़ी दूर तक आकाशमें हम लोग अपने

कैलासशिखरे बद्ध्वा मुनीनामग्रतः पणम् । रविः स्यादनुयातव्यो यावदस्तं महागिरिम् ॥ ४ ॥
अप्यावां युगपत्प्राप्तावपश्याव महीतले । रथचक्रप्रमाणानि नगराणि पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥
क्वचिद्वादित्रघोषश्च क्वचिद्भूषणनिःस्वनः । गायन्तीःस्माङ्गना बह्वीःपश्यावो रक्तवाससः ॥६॥
तूर्णमुत्पत्य चाकाशादादित्यपदमास्थितौ । आवामालोकयावस्तद्वनं शाद्वलसंस्थितम् ॥ ७ ॥
उपलैरिव संछन्ना दृश्यते भूः शिलोच्चयैः । आपगाभिश्च संवीता सूत्रैरिव वसुंधरा ॥ ८ ॥
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्च सुमहागिरिः । भूतले संप्रकाशन्ते नागा इव जलाशये ॥ ९ ॥
तीव्रः स्वेदश्च खेदश्च भयं चासीत्तदावयोः । समाविशत मोहश्च ततो मूर्च्छा च दारुणा ॥१०॥
नच दिग्ज्ञायते याम्या न चाग्नेयी न वारुणी । युगान्ते नियतो लोको हतो दग्ध इवाग्निना ॥११॥
मनश्च मे हतं भूयश्चक्षुः प्राप्य तु संश्रयम् । यत्नेन महता ह्यस्मिन्मनः संधाय चक्षुषी ॥१२॥
यत्नेन महता भूयो भास्करः प्रतिलोकितः । तुल्यपृथ्वीप्रमाणेन भास्करः प्रतिभाति नौ ॥१३॥
जटायुर्मामनापृच्छ्य निपपात महीं ततः । तं दृष्ट्वा तूर्णमाकाशादात्मानं मुक्तवानहम् ॥१४॥
पक्षाभ्यां च मया गुप्तो जटायुर्न प्रदह्यत । प्रमादात्तत्र निर्दग्धः पतन्वायुपथादहम् ॥१५॥
आशङ्के तं निपतितं जनस्थाने जटायुषम् । अहं तु पतितो विन्ध्ये दग्धपक्षो जडीकृतः ॥१६॥

पराक्रमका पता लगानेके लिए उड़ गए ॥३॥ कैलाश पर्वत पर मुनियोंके सामने हम लोगोंने प्रण किया कि सूर्यका अस्ताचल पर्वत तक पीछा करना चाहिए ॥४॥ हम लोग एकही साथ पहुँचे । वहांसे पृथिवीके नगरोंको, रथके पहिएके समान, हमलोगोंने देखा ॥५॥ कहीं बाजेका शब्द कहीं गानेका शब्द, कहीं लाल वस्त्र पहने गाती हुई बहुत सी स्त्रियोंको हम लोगोंने देखा ॥६॥ हम लोग शीघ्र उड़कर आकाशमें सूर्यमार्ग पर चले गए । वहांसे हम लोगोंने घासका वन देखा ॥७॥ वहांसे पृथिवी पत्थरोंसे ढकी हुई मालूम पड़ती है । सूत्रके समान नदियोंसे बँधी हुई पृथिवी मालूम पड़ती है ॥८॥ हिमवान, विन्ध्याचल, मेरु आदि बड़े पर्वत तालाबमें हाथीके समान मालूम पड़ते हैं । उस समय हम दोनोंको बहुत पसीना, बहुत थकावट और भय मालूम हुआ । हम लोग मोहित होने लगे, पुनः भयानक मूर्च्छा आयी ॥१०॥ दक्षिण, अग्निकोण, पश्चिम आदि दिशाएं मालूम न पड़ी । प्रलयमें जिसका जलना निश्चय है उस समस्त लोकको हम लोगोंने उसी समय आगसे जले हुएके समान देखा ॥११॥ मन और आंखें सूर्यके सम्पर्कसे नष्ट हो गयीं, बड़े प्रयत्न से आंख और मनको मैंने सूर्यमें लगाया ॥१२॥ बड़े प्रयत्नसे सूर्यको मैंने पुनः देखा । पृथिवीके समान विशाल वे दीख पड़े ॥१३॥ जटायु मुझसे बिना पूछेही पृथिवी पर चला आया । उसको देखकर मैंने भी शीघ्रही अपनेको आकाशसे हटा लिया ॥१४॥ जटायुको मैंने अपने पांखोंसे छिपाया था, इस कारण उसके पांख नहीं जले । असावधानीसे मैं वहां जल गया । वायुपथसे नीचे गिरते हुए मैंने किसी प्रकार जाना कि जटायु जनस्थानमें गिरा है । मैं विन्ध्यपर्वत पर गिरा, मेरे पांख जल गए थे और मैं जड़ हो गया ॥१५,१६॥ राज्य, भाई, पांख और

राज्याच्च हीनो भ्रात्रा च पक्षाभ्यां विक्रमेण च । सर्वथा मर्तुमेवेच्छन्पतिष्ये शिखराद्गिरेः ॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठमरुदं भृशदुःखितः । अथ ध्यात्वा मुहूर्तं च भगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पक्षौ च ते प्रपक्षौ च पुनरन्यौ भविष्यतः । चक्षुषी चैव प्राणाश्च विक्रमश्च बलं च ते ॥ २ ॥
पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्यं हि मया श्रुतम् । दृष्टं मे तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः । तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥ ४ ॥
अरण्यं च सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन गमिष्यति । तस्मिन्नर्थे नियुक्तः सन्पित्रा सत्यपराक्रमः ॥ ५ ॥
नैर्ऋतो रावणोनाम तस्य भार्यां हरिष्यति । राक्षसेन्द्रो जनस्थाने अवध्यः सुरदानवैः ॥ ६ ॥
साचकामैःप्रलोभ्यन्तीभक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली । न भोक्ष्यति महाभागा दुःखमग्ना यशस्विनी ॥ ७ ॥
परमान्नं च वैदेह्या ज्ञात्वा दास्यति वासवः । यदन्नममृतप्रख्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥ ८ ॥
तदन्नं मैथिली प्राप्य विज्ञायेन्द्रादिदं त्विति । अग्रमुद्धृत्य रामाय भूतले निर्वपिष्यति ॥ ९ ॥
यदि जीवति मे भर्ता लक्ष्मणो वापि देवरः । देवत्वं गच्छतोर्वापि तयोरन्नमिदं त्विति ॥१०॥

पराक्रमसे हीन होकर मरनेकी ही इच्छासे मैं इस पर्वतसे गिरना चाहता हूँ । उस ऋषिसे मैंने ऐसा कहा ॥१७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धा काण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ।

बहुतही दुखी होकर उन ऋषिश्रेष्ठसे मैंने ये बातें कहीं और रो पड़ा। थोड़ी देर ध्यान करके भगवान हमसे बोले ॥१॥ तुम्हारे बड़े और छोटे पांख पुनः उत्पन्न होंगे, पुनः तुम्हारी आंखे ठीक होगीं । प्राण, विक्रम और बल तुम्हें पुनः मिलेंगे ॥२॥ पुराणोंमें भावी अनेक कार्य मैंने सुने हैं, सुनकर जाने हैं । तपस्याके द्वारा देखे हैं ॥३॥ इक्ष्वाकुकुलमें दशरथ नामके राजा होंगे । उनके महातेजस्वी राम नामके पुत्र होंगे ॥४॥ लक्ष्मणके साथ वे वनमें जांयगें, क्योंकि वनमें जानेके लिए सत्यपराक्रम रामचन्द्रको पिताकी आज्ञा मिलेगी ॥५॥ देवता और दानवोंके द्वारा अवध्य राक्षस रावण जनस्थानमें उनकी स्त्रीका हरण करेगा ॥६॥ यशस्विनी सीताको राक्षस इच्छाकी पूर्तिके द्वारा तथा भक्ष्यभोज्य आदिके द्वारा प्रलोभित करना चाहेगा, पर वह दुखिनी कोई भोग स्वीकार न करेगी ॥७॥ यह जानकर (सीता राक्षसका अन्न नहीं खाती) इन्द्र उसके लिए पायस भेजेंगे जो अमृतके समान अन्न देवताओंके लिए भी दुर्लभ है ॥८॥ उस अन्नको पाकर, तथा इन्द्रका भेजा है, यह जानकर सीता उस अन्नको ले लेगी और उसमेंसे रामचन्द्रके लिए पृथिवी पर रख देगी ॥९॥ यदि मेरे पति जीते हैं, यदि देवर लक्ष्मण जीते हैं, यदि उन लोगोंने देवभाव भी प्राप्त कर लिया हो तो भी अन्न उन लोगोंको मिले ॥१०॥ हे विहंगम,

एष्यन्ति प्रेषितास्तत्र रामदूताः प्लवङ्गमाः । आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहंगम ॥११॥
सर्वथा तु न गन्तव्यमीदृशः क गमिष्यसि । देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१२॥
उत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम् । इहस्थस्त्वंहि लोकानां हितं कार्यंकरिष्यसि॥१३॥
त्वयापि खलु तत्कार्यं तयोश्च नृपपुत्रयोः । ब्राह्मणानां गुरूणां च मुनीनां वासवस्य च॥१४॥
इच्छाम्यहमपि द्रष्टुं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । नेच्छे चिरं धारयितुं प्राणांस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥
महर्षिस्त्वब्रवीदेवं दृष्टतत्त्वार्थदर्शनः । ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

एतैरन्यैश्च बहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः । मां प्रशस्याभ्यनुज्ञाप्य प्रविष्टः स स्वमालयम् ॥ १ ॥
कंदरात्तु विसर्पित्वा पर्वतस्य शनैः शनैः । अहं विन्ध्यं समारुह्य भवतः प्रतिपालये ॥ २ ॥
अद्य त्वेतस्य कालस्य वर्षं साग्रशतं गतम् । देशकालप्रतीक्षोऽस्मि हृदि कृत्वा मुनेर्वचः ॥ ३ ॥
महाप्रस्थानमासाद्य स्वर्गते तु निशाकरे। मां निर्दहति संतापो वितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥
उदितां मरणे बुद्धिं मुनिवाक्यैर्निवर्तये । बुद्धिर्या तेन मे दत्ता प्राणानां रक्षणे मम ॥ ५ ॥

सम्पाती, भेजे हुए रामके दूत वानर आवेंगे, उनको रामचन्द्रकी महारानीका पता तुम बतलाना ॥११॥ यहांसे तुम कहीं मत जाना । इस अवस्थामें कहां जाओगे । कुछ समयकी प्रतिक्षा करो, तुम्हारे पंख तुमको मिल जायँगे ॥१२॥ तुमको आज ही सपक्ष कर देनेकी मेरी इच्छा होती है, फिर भी मैं ऐसा इसलिए नहीं करता कि यहां रह कर तुम अधिक लोक-कल्याण कर सकोगे ॥१३॥ तुम भी उन दोनों राजपुत्रोंके कार्य करना। ब्राह्मणों, गुरुओं, मुनिओं और इन्द्रके भी कार्य करना। मैं भी, दोनों भाई रामचन्द्र और लक्ष्मणको देखना चाहता हूँ। बहुत दिनों तक प्राणधारण करना नहीं चाहता। शीघ्र शरीर त्याग करूँगा । यथार्थ तत्व जाननेवाले मुनिने ऐसा कहा ॥१४,१५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ।



इन तथा अन्य अनेक वाक्योंसे, वाक्यविशारद मुनि मुझे समझा कर तथा आज्ञा देकर अपने आश्रममें गए ॥१॥ उस कन्दरासे धीरे धीरे चल कर विन्ध्यपर्वत पर चढ़ कर मैं आप लोगोंकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ मुनिके वचन मनमें रखकर आज सौ वर्षों से भी ऊपर इस समयकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ॥३॥ निशाकरमुनिके स्वर्गके लिए महा प्रस्थान करने पर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क मेरे मनमें उठा करते हैं, जिससे मैं जला करता हूँ ॥४॥ मरनेकी इच्छा उत्पन्न हुई थी, वह मैंने मुनिके वचनसे छोड़ दी। प्राणोंकी रक्षा के लिए जो बुद्धि मुनिने दी थी, उसीसे मेरे सब दुख दूर होते हैं, जैसे प्रदीप्त

सा मेऽपनयते दुःखं दीप्तेवाग्निशिखा तमः । बुध्यता च मया वीर्यं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥
पुत्रः संतर्जितो वाग्भिर्न त्राता मैथिली कथम् । तस्या विलपितं श्रुत्वा तौ च सीतावियोजितौ॥७॥
न मे दशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितं प्रियम् । तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य संहतैर्वानरैः सह ॥ ८ ॥
उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम् । स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥ ९ ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत् । निशाकरस्य राजर्षेः प्रसादादमितौजसः ॥१०॥
आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ पुनरुपस्थितौ । यौवने वर्तमानस्य ममासीद्यः पराक्रमः ॥११॥
तमेवाद्यावगच्छामि बलं पौरुषमेव च । सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ॥१२॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः । इत्युक्त्वा तान्हरीन्सर्वान्संपातिः पतगोत्तमः॥१३॥
उत्पपात गिरेः शृङ्गाज्जिज्ञासुः खगमो गतिम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिसंहृष्टमानसाः ॥
बभूवुर्हरिशार्दूला विक्रमाभ्युदयोन्मुखाः । ॥१४॥

अथ पवनसमानविक्रमाः प्लवगवराः प्रतिलब्धपौरुषाः ।
अभिजिदभिमुखां दिशं ययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥



अग्निशिखासे अंधकार दूर होता है। मैंने अपने पुत्रसे कहा था कि दुरात्मा राक्षसका बल जानते हुए तुमने सीताकी रक्षा क्यों न की। सीताका विलाप सुनकर और राम लक्ष्मणको सीतासे वियुक्त जान कर मेरे पुत्रने दशरथके स्नेहके अनुरूप मेरा प्रिय नहीं किया। वानरोंके साथ इस प्रकार बात करते हुए उस वनचारी गृध्रके दोनों पांख निकल आए। वह गृध्र लाल रंगके उत्पन्न पांखोंसे युक्त अपने शरीरको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और वानरोंसे यह बोला—अमितौजस (अधिक तेजस्वी) राजर्षि निशाकरके प्रसादसे सूर्य-किरणसे जले मेरे दोनों पांख निकल आए। युवावस्थामें जो मेरा पराक्रम था वैसाही पराक्रम और बल मुझे हो गया। तुम लोग प्रयत्न करो, अवश्य ही सीताको पाओगे ॥५,६,७,८,९,१०,११,१२॥ मेरा पांखोंका हो जाना, तुम लोगोंकी कार्यसिद्धिका विश्वास दिलानेवाला है ॥१३॥ उन वानरोंसे ऐसा कहकर पक्षिश्रेष्ठ सम्पाती उस पर्वत-शिखरसे अपने आकाशगमनकी शक्तिका निश्चय करनेके लिए उड़ा। उसके वचन सुनकर वानर बहुत प्रसन्न हुए और पराक्रम करनेके लिए उद्यत हुए ॥१४॥ पवनके समान पराक्रमी, सीताके पता पानेसे पुनः अपने अपने विक्रम प्राप्त कर सब वानर जानकीको ढूँढनेके लिए उद्यत हुए, जिस दिशामें रामचन्द्रकी विजय समाई थी उस दिशामें वे चले ॥१५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त।



चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

आख्याता गृध्रराजेन समुत्प्लुत्य प्लवंगमाः। संगताः प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः ॥ १ ॥
संपातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम्। हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥ २ ॥
अभिगम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः। कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिविम्बमवस्थितम् ॥ ३ ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम्। संनिवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबलाः ॥ ४ ॥
प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः। क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥
संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः। रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥ ६ ॥
आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः। विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ७ ॥
विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात्। आश्वासयामास हरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८ ॥
न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः। विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥ ९ ॥
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते। तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥१०॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह। हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत् ॥११॥
सा वानराणां ध्वजिनी परिवार्याङ्गदं बभौ। वासवं परिवार्येव मरुतां वाहिनी स्थितम् ॥१२॥
कोन्य स्तांवानरींसेनांशक्तःस्तम्भयितुं भवेत्। अन्यत्र वालितनयादन्यत्र च हनूमतः ॥१३॥
ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिंदमः। अनुमान्याङ्गदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥१४॥

गृध्रराजके सीताका वृत्तान्त कहने पर सिंहके समान पराक्रमी सब वानर प्रसन्नतापूर्वक एकत्रित हुए और कूद कूद कर नाद करने लगे ॥१॥ रावणका विनाश और उसके घरका पता सम्पातीसे सुनकर सीताको देखनेकी इच्छा रखने वाले वानर प्रसन्न होकर समुद्रतीर पर आये ॥२॥ वहां आकर भीम पराक्रमी वीर वानरोंने समस्त लोकके प्रतिबिम्बके समान स्थित उस स्थानको देखा ॥३॥ दक्षिण समुद्रके उत्तर तीर पर महाबली उन वानरोंने डेरा डाला ॥४॥ कहीं सोते हुए के समान, कहीं क्रीड़ा करते हुएके समान, कहीं पर्वतके समान, जलराशि अर्थात् लहरियोंसे युक्त दानवेन्द्रों और पातालवासियोंसे भरे हुए, भयावने उस समुद्रको देखकर वानरसेनापति बहुत दुखी हुए ॥५,६॥ आकाशके समान पार करनेके अयोग्य सागरको देखकर सभी वानर बहुत दुखी हुए और आगे कैसे किया जाय इसका निश्चय वे करने लगे ॥७॥ समुद्रको देखनेसे अपनी सेनाको विषादयुक्त देखकर अंगदने सब डरे हुओंको धैर्य दिलाया ॥८॥ आप लोगोंको विषाद नहीं करना चाहिए। विषादमें बड़े बड़े दोष हैं, क्रुद्ध सर्प जैसे बालकको मारता है वैसेही विषाद पुरुषको मारता है ॥९॥ जो उद्योग करनेके समय में विषाद करता है उस तेजहीन पुरुषका मनोरथ सिद्ध नहीं होता ॥१०॥ उस रात्रिके बीतने पर वानरोंके साथ बूढ़े वानरोंके पास जाकर अंगदने पुनः सलाह की ॥११॥ वानरोंकी वह सेना अंगदको चारों ओरसे घेरकर बैठी हुई, इन्द्रको चारो ओरसे घेरकर बैठी देवसेना के समान मालूम पड़ी ॥१२॥ अंगद और हनुमानको छोड़ कर कौन दूसरा उस वानरी सेनाको वशमें रख सकता है ॥१३॥ उन वृद्ध वानरोंका तथा उस समस्त

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् । कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसंधमरिंदमम् ॥१५॥
को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवंगमः । इमांश्च यूथपान्सर्वान्मोचयेत्को महाभयात् ॥१६॥
कस्यप्रसादाद्दारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च । इतो निवृत्ताःपश्येमसिद्धार्थाःसुखिनोवयम् ॥१७॥
कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् । अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवंच वनौकसम् ॥१८॥
यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः । स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥१९॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किंचिदब्रवीत् । स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥२०॥
पुनरेवाङ्गदः प्राह तान्हरीन्हरिसत्तमः । सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः ॥
व्यपदेशकुलेजाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः । ॥२१॥
नहि वो गमने सङ्गः कदाचित्कस्यचिद्भवेत् । ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिः प्लवने प्लवगर्षभाः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा ते सर्वे वानरर्षभाः । स्वं स्वं गतौ समुत्साहमूचुस्तत्र यथाक्रमम्॥ १ ॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः । मैन्दश्च द्विविदश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा ॥ २ ॥

सेनाका सम्मान करके श्रीमान अंगद अर्थयुक्त वचन बोले ॥१४॥ कौन महातेजस्वी इस समय इस महासमुद्रको पार करेगा ? कौन सुग्रीवको सत्यप्रतिज्ञ करेगा ? कौन वीर वानर सौ योजन समुद्रको लांघेगा और कौन इन यूथपतियोंको भयसे छुड़ावेगा ॥१५,१६॥ किसकी कृपासे सीताका पता लगा कर और सुखी होकर हम लोग यहांसे लौटेंगे और स्त्री पुत्र तथा घर हमलोग देखेंगे ॥१७॥ किसके प्रसादसे राम महाबली लक्ष्मण और सुग्रीवके पास प्रसन्नतापूर्वक जा सकेंगे ? यदि आप लोगोंमें कोई वानर समुद्र पार जानेमें समर्थ हो तो वह शीघ्र हम लोगोंको पवित्र अभयदक्षिणा दे ॥१९॥ अंगदके वचन सुनकर कोई भी कुछ न बोला। वह समस्त वानरी सेना चुप हो रही ॥२०॥ अंगद पुनः उन वानरोंसे बोले—आप सभी लोग दृढ़पराक्रमी हैं, अर्थात् किसीके द्वारा पराजित होनेके योग्य नहीं हैं । आप सभी बलवानोंमें श्रेष्ठहैं । उत्तम कुलमें आप उत्पन्न हुए हैं । समय समय पर वीरताके कारण आप लोगोंकी प्रशंसा हुई है ॥२१॥ आप लोगोंमें किसीको जानेमें किसी प्रकारकी बाधा न होगी । अतएव वानरो, जानेमें जिस वानरकी जैसी शक्ति हो वह कहे ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ।



अंगदके वचन सुनकर उन सब श्रेष्ठ वानरोंने जानेमें जिसकी जितनी शक्ति है वह क्रमसे बतलायी॥१॥ गवाक्ष, गज, गवय, गन्धमादन, शरभ, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान इन वानरोंने अपना अपना बल

आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् । गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम् ॥ ३ ॥
शरभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः ॥ ४ ॥
ऋषभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । चत्वारिंशद्गमिष्यामि योजनानां न संशयः ॥ ५ ॥
वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद्गन्धमादनः । योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः ॥ ६ ॥
मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह । योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे ॥ ७ ॥
ततस्तत्र महातेजा द्विविदः प्रत्यभाषत । गमिष्यामि न संदेहः सप्ततिं योजनान्यहम् ॥ ८ ॥
सुषेणस्तु महातेजाः सत्त्ववान्कपिसत्तमः । अशीतिं प्रतिजानेऽहं योजनानां पराक्रमे ॥ ९ ॥
तेषां कथयतां तत्र सर्वांस्ताननुमान्य च । ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान्प्रत्यभाषत ॥१०॥
पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः । ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म सांप्रतम् ॥११॥
किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम् । यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ ॥१२॥
सांप्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत । नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः ॥१३॥
तांश्च सर्वान्हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवानिदमब्रवीत् । न खल्वेतावदेवासीद्गमने मे पराक्रमः ॥१४॥
मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः । प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥१५॥
स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः । यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परम् ॥१६॥
संप्रत्येतावदेवाद्य शक्यं मे गमने स्वतः । नैतावता च संसिद्धिः कार्यस्यास्य भविष्यति ॥१७॥
अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदङ्गदस्तदा । अनुमान्य तदा प्राज्ञो जाम्बवन्तं महाकपिम् ॥१८॥

बतलाया ॥२॥ गजने कहा—मैं दस योजन जा सकता हूँ, गवाक्षने कहा, मैं बीस योजन जा सकता हूँ ॥३॥ शरभ नामक वानरने वानरोंसे कहा, मैं तीस योजन तक जा सकता हूँ ॥४॥ ऋषभ वानर उन वानरोंसे बोला, मैं चालीस योजन तक जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥५॥ महातेजस्वी गन्धमादन वानरोंसे बोले कि मैं निःसन्देह पचास योजन तक चला जाऊँगा ॥६॥ मैन्दने उन वानरोंसे कहा कि साठ योजन तक मैं कूदनेका उत्साह रखता हूँ ॥७॥ महातेजस्वी द्विविदने उस पर कहा कि सत्तर योजन तक बिना सन्देह मैं जा सकूंगा ॥८॥ बलवान और तेजस्वी सुषेणने कहा कि अस्सी योजन जानेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ॥९॥ इस प्रकार कहने वाले सब वानरोंका सम्मान करके उन सबमें वृद्ध जाम्बावान वानर बोला ॥१०॥ पहले हमारा भी चलनेमें पराक्रम था, अब तो हम उमर पार कर चुके ॥११॥ पर इससे इस कार्यकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । जिस कार्यका निश्चय सुग्रीव और रामने किया है, वह कार्य तो करनाही होगा ॥१२॥ इस समय जो मेरी गति है, वह आप लोग सुनें, नव्वे योजन तक जा सकता हूँ, इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ उन वानरोंसे जाम्बवानने कहा कि पहले मेरा चलनेका बल इतनाही नहीं था ॥१४॥ मैं इस बलिके यज्ञमें बढ़नेवाले सनातन वामनकी, भूमि नापनेके समय, मैंने प्रदक्षिणा की थी ॥१५॥ मैं इस समय बूढ़ा हूँ, कूदनेमें मेरी गति शिथिल हो गयी है, युवावस्थामें मेरा बल अद्भुत था ॥१६॥ इस समय मैं इतनाही चल सकता हूँ । पर इतना चलनेसे तो इस कार्यकी सिद्धि न होगी ॥१७॥ इसके बाद अंगद

अहमेतद्गमिष्यामि योजनानां शतं महत् । निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम् ॥१९॥
तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान्वाक्यकोविदः । ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम ॥२०॥
कामं शतसहस्रं वा नह्येष विधिरुच्यते । योजनानां भवाञ्शक्तो गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम् ॥२१॥
नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचन । भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम ॥२२॥
भवान्कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः । स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परंतप ॥२३॥
अपि वै तस्य कार्यस्य भवान्मूलमरिंदम । तस्मात्कलत्रवत्तात प्रतिपाल्यः सदा भवान् ॥२४॥
मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदां नयः । मूले हि सति सिद्ध्यन्ति गुणाः सर्वे फलोदयाः ॥२५॥
तद्भवानस्य कार्यस्य साधनं सत्यविक्रम । बुद्धिविक्रमसंपन्नो हेतुरत्र परंतप ॥२६॥
गुरुश्च गुरुपुत्रश्च त्वं हि नः कपिसत्तम । भवन्तमाश्रित्य वयं समर्था ह्यर्थसाधने ॥२७॥
उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः । प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसूनुरथाङ्गदः ॥२८॥
यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुंगवः । पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम् ॥२९॥
नह्यकृत्वा हरिपतेः संदेशं तस्य धीमतः । तत्रापि गत्वा प्राणानां न पश्ये परिरक्षणम् ॥३०॥
स हि प्रसादे चात्यर्थं कोपे च हरिरीश्वरः । अतीत्य तस्य संदेशं विनाशो गमने भवेत् ॥३१॥
तत्तथा ह्यस्य कार्यस्य न भवत्यन्यथा गतिः । तद्भवानेव दृष्टार्थः संचिन्तयितुमर्हति ॥३२॥

महाकपि जाम्बवानका सम्मान करके अर्थवान वचन बोले ॥१८॥ मैं यह सौ योजन जा सकता हूँ, लौटनेमें मेरी शक्ति होगी कि नहीं इसमें सन्देह है ॥१९॥ वानरश्रेष्ठ अंगदसे जाम्बवान बोले—हे वानर ऋक्षराज जानेकी आपकी शक्ति हमलोग जानते हैं ॥२०॥ सौ या हजार योजन तक आप जा सकते हैं। पर यह बात उचित नहीं है ॥२१॥ तात, प्रेषण करनेवाला स्वामी स्वयं प्रेष्य नहीं बनता। हे वानरश्रेष्ठ, ये सब लोग आपके प्रेष्य हैं ॥२२॥ स्वामिरूपसे स्थित आप हम लोगोंके कलत्र (स्त्री) हैं, अर्थात् स्त्रीके समान रक्षणीय हैं। स्वामी सेनाका कलत्र होता है अर्थात् कलत्रके समान उसकी रक्षाकी जाती है यही परम्परा है ॥२३॥ आप उस कार्यके मूल हैं, आपही पर सीतान्वेषणका भार है। अतएव आपकी रक्षा कलत्रके समान हम लोगोंको करनी चाहिए ॥२४॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिए, यह कार्यज्ञोंका मत है; क्योंकि मूलके रहने पर सभी उद्योग सिद्ध होते हैं, सभी गुण सफल होते हैं ॥२५॥ अतएव हे सत्यविक्रम, आप इस कार्यके साधन हैं, अर्थात् बुद्धिविक्रमसम्पन्न हेतु हैं ॥२६॥ हे कपिश्रेष्ठ, आप हम लोगोंके गुरु और गुरुपुत्र हैं। आपके आश्रयसे हम लोग कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥२७॥ महाप्राज्ञ जाम्बवानके ऐसा कहने पर वालिपुत्र अंगदने इस प्रकार उत्तर दिया ॥२८॥ यदि हम न जायँ और दूसरा भी कोई वानर न जाय तो पुनः हम लोगोंको वही प्रायोपवेशन करना चाहिए ॥२९॥ वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाका विना पालन किए यदि हम लोग वहां जायँ तो हमारे प्राणोंकी रक्षा न हो सकेगी ॥३०॥ सुग्रीव प्रसन्न होने और क्रोध करनेमें समर्थ हैं। उनकी आज्ञाका पालन न करनेसे विनाश अवश्यही होगा ॥३१॥ अतएव इस कार्यके लिए और कोई उपाय नहीं है। या तो समुद्र पार जाना होगा या

सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रत्युक्तः प्लवगर्षभः। जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥३३॥
तस्य ते वीर कार्यस्य न किंचित्परिहास्यते। एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति ॥३४॥

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठमेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

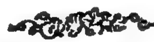


षट्षष्टितमः सर्गः ६६

अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम्। जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर। तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन्किं न जल्पसि ॥ २ ॥
हनूमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि। रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥ ३ ॥
अरिष्टनेमिनः पुत्रो वैनतेयो महाबलः। गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम् ॥ ४ ॥
बहुशो हि मया दृष्टः सागरे स महाबलः। भुजंगानुद्धरन्पक्षी महाबाहुर्महाबलः ॥ ५ ॥
पक्षयोर्यद्बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव। विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते ॥ ६ ॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव। विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥ ७ ॥
अप्सराऽप्सरसांश्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला। अञ्जनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः ॥ ८ ॥

प्राणत्याग करना होगा ॥३२॥ आप सब अर्थोंके जाननेवाले हैं, आपही कोई उपाय सोचिए। अंगदके ऐसा कहने पर वीर वानरसेनापति जाम्बवान अंगदसे पुनः बोले ॥३३॥ वीर, तुम्हारे इस कार्यका कुछ बिगाड़ न होगा, मैं उसको प्रेरित करता हूँ जो इस कार्यको सिद्ध करेगा ॥३४॥ प्रख्यात, वानरोंमें श्रेष्ठ एकान्तमें सुखपूर्वक बैठे हुए हनुमानको जाम्बवानने प्रेरित किया ॥३५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका पैंसठवां सर्ग समाप्त।



अनेक सौ हजार वानरोंकी सेनाको विषादयुक्त देखकर जाम्बवान हनुमानसे इस प्रकार बोले, ॥१॥ वीर, सर्व शास्त्रज्ञ एकान्तमें जाकर चुपचाप क्यों बैठे हो। वानरोंका कर्तव्य क्यों नहीं बतलाते ॥२॥ हनुमान, तुम सुग्रीवके समान हो, तेज और बलसे राम-लक्ष्मणके समान हो ॥३॥ अरिष्टनेमीके पुत्र, महाबली वैनतेय सब पक्षियोंमें उत्तम गरुड़के समान तुम विख्यात हो ॥४॥ मैंने बहुत बार महाबाहु, महाबली, उस गरुड़ पक्षीको सागरमें सांपोंको पकड़ते देखा है ॥५॥ उसके पांखोंमें जो बल है वैसाही बल और पराक्रम तुममें हैं। पराक्रम और तेजमें तुम उससे कम नहीं हो ॥६॥ वीर, सब प्राणियोंमें बल बुद्धि तेज और पराक्रम जो है उससे तुम्हारा पराक्रम अधिक हैं। तुम अपने स्वरूपका स्मरण क्यों नहीं करते ॥७॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थल नामकी अप्सरा अंजना नामसे प्रसिद्ध

विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमा भुवि । अभिशापादभूत्तात कपित्वे कामरूपिणी ॥ ९ ॥
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः । मानुषं विग्रहं कृत्वा रूपयौवनशालिनी ॥१०॥
विचित्रमाल्याभरणा कदाचित्क्षौमधारिणी । अचरत्पर्वतस्याग्रे प्रावृडम्बुदसंनिभे ॥११॥
तस्या वस्त्रं विशालाक्ष्याः पीतं रक्तदशं शुभम् । स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मरुतोऽपहरच्छनैः ॥१२॥
स ददर्श ततस्तस्या वृत्तावूरू सुसंहतौ । स्तनौ च पीनौ सहितौ सुजातं चारु चाननम् ॥१३॥
तां बलादायतश्रोणीं तनुमध्यां यशस्विनीम् । दृष्ट्वैव शुभसर्वाङ्गीं पवनः काममोहितः ॥१४॥
स तां भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां पर्यष्वजत मारुतः । मन्मथाविष्टसर्वाङ्गो गतात्मा तामनिन्दिताम् ॥१५॥
सा तु तत्रैव संभ्रान्ता सुव्रता वाक्यमब्रवीत् । एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति ॥१६॥
अञ्जनाया वचः श्रुत्वा मारुतः प्रत्यभाषत । न त्वां हिंसामि सुश्रोणि मा भूत्ते मनसो भयम् ॥१७॥
मनसास्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि । वीर्यवान्बुद्धिसंपन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥१८॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः । लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ॥१९॥
एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे । गुहायां त्वां महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभ ॥२०॥
अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने । फलंचेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्पत्याभ्युत्पतोदिवम् ॥२१॥
शतानि त्रीणि गत्वाथ योजनानां महाकपे । तेजसा तस्य निर्धूतो न विषादं गतस्ततः ॥२२॥

होकर केशरी वानरकी स्त्री हुई ॥८॥ वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। रूप में उसके समान कोई नहीं है ॥९॥ पर्वतके शिखर पर बैठी हुई इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वह शापसे वानरी हुई। महात्मा वानरश्रेष्ठ कुंजरकी वह कन्या हुई। रूप यौवनसे शोभनेवाली वह कभी मनुष्यका शरीर धर कर सुन्दर माल्य, आभरण और रेशमी वस्त्र धारण करके वर्षाकालीन मेघके समान पर्वतके शिखर पर घूमती थी ॥१०,११॥ पर्वतके शिखर पर बैठी हुई उस विशालाक्षीका वस्त्र जो पीला था और जिसका कोर लाल था, वायुने धीरे धीरे खींचा ॥१२॥ वायुने उसके गठीले और गोले ऊरू देखे, मोटे और सटे हुए स्तन तथा सुन्दर मुंह देखा ॥१३॥ सर्वांगसुन्दरी, आयतश्रोणी, क्षीणकटि उस यशस्विनीको देखतेही वायु काममोहित हो गया ॥१४॥ उस सुन्दरीका सर्वांग काम-युक्त वायुने अपनी लम्बी भुजाओंसे, आलिंगन किया। वायुका चित्त उसमें लग गया था ॥१५॥ व्रत धारण करनेवाली वह अंजना बड़ी घबड़ायी और बोली—मेरे एक पत्नीव्रतको कौन नष्ट करना चाहता है ॥१६॥ अंजनाके वचन सुनकर वायु बोला—सुन्दरि, मैं तुम्हारे पातिव्रत्यका नाश नहीं करता, अतएव तुम डरो मत ॥१७॥ यशस्विनी, मनसे जो मैंने तुम्हारा आलिंगन किया हैं, उससे पराक्रमी और बलवान पुत्र तुम्हें उत्पन्न होगा ॥१८॥ महाबली, महापराक्रमी, महातेजस्वी, कूदने और तैरनेमें मेरे समान होगा ॥१९॥ वायुके ऐसा कहने पर तुम्हारी माता बहुत प्रसन्न हुई और उसने गुहामें तुम्हें उत्पन्न किया ॥२०॥ तुम बालक थे, महावनमें सूर्यका उदय देख कर उसे फल समझ कर लेनेके लिए कूदकर तुम आकाशमें चले गए ॥२१॥ तीन सौ योजन जाने पर और सूर्यके तपाए जाने पर भी

त्वामप्युपगतं तूर्णमन्तरिक्षं महाकपे । क्षिप्तमिन्द्रेण ते वज्रं कोपाविष्टेन तेजसा ॥२३॥
तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत । ततोऽभिनामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम् ॥२४॥
ततस्त्वां निहतं दृष्ट्वा वायुर्गन्धवहः स्वयम् । त्रैलोक्यं भृशसंक्रुद्धो न ववौ वै प्रभञ्जनः ॥२५॥
संभ्रान्ताश्च सुराः सर्वे त्रैलोक्ये क्षुभिते सति । प्रसादयन्ति संक्रुद्धं मारुतं भुवनेश्वराः ॥२६॥
प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ । अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम ॥२७॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च । सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम् ॥२८॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो । स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ॥२९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः । त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः ॥३०॥
वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु सांप्रतम् । दाक्ष्यविक्रमसंपन्नः कपिराज इवापरः ॥३१॥
त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना । त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम् ॥३२॥
तदा चौषधयोऽस्माभिः संचिता देवशासनात् । निर्मथ्यममृतं याभिस्तदानीं नो महद्बलम् ॥३३॥
स इदानीमहं वृद्धः परिहीनपराक्रमः । सांप्रतं कालमस्माकं भवान्सर्वगुणान्वितः ॥३४॥
तद्विजृम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि । त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी ॥३५॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् । परा हि सर्वभूतानां हनुमन्या गतिस्तव ॥३६॥

खिन्न न हुए ॥२२॥ अन्तरिक्षमें आए तुमको देखकर क्रोध करके इन्द्रने तुम पर वज्र चलाया ॥२३॥ उससे तुम्हारा बांयां हनु (दाढ़ी) टेढ़ा हो गया । तभीसे तुम्हारा कीर्तियुक्त हनुमान नाम पड़ा ॥२४॥ "तुम मारे गए हो" यह सुनकर तुम्हारे पिता वायुने बड़े क्रुद्ध होकर तीनों लोकोंमें बहना छोड़ दिया ॥२५॥ त्रैलोक्यके क्षुभित होने पर सब देवता घबड़ा गए और क्रुद्ध वायुको वे सब मनाने लगे ॥२६॥ वायुके प्रसन्न होने पर ब्रह्माने तुम्हें वर दिया कि तुम शस्त्रोंसे युद्धमें नहीं मारे जाओगे ॥२७॥ वज्रके मारे जाने पर भी पीड़ाहीन तुमको देखकर प्रसन्न होकर इन्द्रने तुम्हें उत्तम वर दिया ॥२८॥ अपनी इच्छाके अनुसार तुम्हारी मृत्यु होगी । हनुमान, तुम केसरीके क्षेत्रज पुत्र हो और बड़े पराक्रमी हो ॥२९॥ वायुके औरस पुत्र हो और उन्हींके समान तेजस्वी हो । बेटा, तुम वायुके पुत्र हो और वायुके समान चलनेवाले हो ॥३०॥ आज हम लोगोंके प्राण जा रहे हैं और तुम दक्षतापराक्रमसे युक्त दूसरे वानरराजके समान हम लोगोंमें वर्तमान हो ॥३१॥ भाई, वामनके तीन पैरसे पृथिवी नापनेके समय मैंने इक्कीस बार वनपर्वतयुक्त इस पृथिवीकी प्रदक्षिणा की है ॥३२॥ उस समय देवताओंकी आज्ञासे ओषधियां भी हम लोगोंके पास संचित थीं, जिनके द्वारा मथन करके अमृत निकाला गया था । उस समय हम लोग बड़े बली थे ॥३३॥ इस समय मैं बूढ़ा हो गया हूँ । पराक्रमहीन हूँ । इस समय हम लोगोंमें तुम ही पराक्रमी और सब गुणोंसे युक्त हो ॥३४॥ अतएव तुम कूदो, तुम कूदने वालोंमें सबसे बड़े हो यह समूची वानरसेना तुम्हारा पराक्रम देखना चाहती है ॥३५॥ वानरश्रेष्ठ, उठो । महासमुद्रको पार करो । हनुमान, तुम जो जाओगे उससे सबका उपकार होगा ॥३६॥ सब वानर दुखी हैं । हनुमान, तुम उपेक्षा

विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन्किं पेक्षसे । विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥३७॥
ततः कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः ।
प्रहर्षयंस्तां हरिवीरवाहिनीं चकार रूपं पवनात्मजस्तदा ॥३८॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम् । वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ १ ॥
सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः । विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ २ ॥
प्रहृष्टा विस्मिताश्चापि ते वीक्षन्ते समन्ततः । त्रिविक्रमं कृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः ॥ ३ ॥
संस्तूयमानो हनुमान्व्यवर्धत महाबलः । समाविध्य च लाङ्गूलं हर्षाद्बलमुपेयिवान् ॥ ४ ॥
तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुंगवैः । तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥
यथा विजृम्भते सिंहो विवृते गिरिगह्वरे । मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा संप्रति जृम्भते ॥ ६ ॥
अशोभत मुखं तस्य जृम्भमाणस्य धीमतः । अम्बरीषोपमं दीप्तं विधूम इव पावकः ॥ ७ ॥
हरीणामुत्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः । अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

क्यों कर रहे हो । विष्णुने जिस प्रकार पराक्रम करके तीन पैरमें पृथिवी नापी थी, उसी प्रकार तुम भी पराक्रम करो ॥३७॥ वानरोंके स्वामीके द्वारा प्रेरित होनेपर पवनपुत्र, जिनका वेग सबको मालूम है उन्होंने, वानर सेनाको प्रसन्न करते हुए समुद्र पार जानेका रूप प्रकट किया ॥३८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ।

सौ योजन जानेके लिए तैयार होते हुए तथा अपनेमें वेग भरते हुए वानरश्रेष्ठ हनुमानको देखकर सहसा शोक दूर कर वानर प्रसन्न हुए। वे 'किलकिला' शब्द और हनुमानकी प्रशंसा करने लगे ॥१,२॥ प्रसन्न और चकित होकर वे हनुमानको देखने लगे । जिस प्रकार उत्साहयुक्त वामनको प्रजाने देखा था ॥३॥ अपनी स्तुति सुनकर महाबली हनुमानने अपना शरीर बढ़ाया । पूंछ पटक कर हर्षित होकर उन्होंने बल-संचय किया ॥४॥ बूढ़े, श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा स्तुति होने पर हनुमान तेजसे भर गये । उस समय उनका बड़ा सुन्दर रूप हुआ ॥५॥ विशाल पर्वतगुफामें, जिस प्रकार सिंह अंगड़ाई लेता है उसी प्रकार, वायुपुत्र हनुमान अंगड़ाई लेने लगे ॥६॥ अंगड़ाई लेनेके समय उस बुद्धिमानका मुख अम्बरीषके समान (सूर्य अथवा भड़साईके समान) शोभित हुआ । और धूमरहित अग्निके समान मालूम हुआ ॥७॥ वानरोंके बीचसे उठकर और बूढ़े वानरोंको प्रणाम कर हनुमान यह बोले । उनके

आरुजन्पर्वताग्राणि हुताशनसखोऽनिलः । बलवानप्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः ॥ ९ ॥
तस्याहं शीघ्रवेगस्य शीघ्रगस्य महात्मनः । मारुतस्यौरसः पुत्रः प्लवनेनास्मि तत्समः ॥१०॥
उत्सहे य हि विस्तीर्णमालिखन्तमिवाम्बरम् । मेरुं गिरिमसंगेन परिगन्तुं सहस्रशः ॥११॥
बाहुवेगप्रणुन्नेन सागरेणाहमुत्सहे । समाप्लावयितुं लोकं सपर्वतनदीह्रदम् ॥१२॥
ममोरुजङ्घावेगेन भविष्यति समुत्थितः । समुत्थितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः ॥१३॥
पन्नगाशनमाकाशे पतन्तं पक्षिसेवितम् । वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रशः ॥१४॥
उदयात्प्रस्थितं वापि ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् । अनस्तमितमादित्यमहं गन्तुं समुत्सहे ॥१५॥
ततो भूमिमसंस्पृश्य पुनरागन्तुमुत्सहे । प्रवेगेनैव महता भीमेन प्लवगर्षभाः ॥१६॥
उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान् । सागराञ्शोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥१७॥
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवंगमः । हरिष्याम्युरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम् ॥१८॥
लतानां विविधं पुष्पं पादपानां च सर्वशः । अनुयास्यन्ति मामद्य प्लवमानं विहायसा ॥१९॥
भविष्यति हि मे पन्थाः स्वातेः पन्था इवाम्बरे । चरन्तं घोरमाकाशमुत्पतिष्यन्तमेव च ॥२०॥
द्रक्ष्यन्ति निपतन्तं च सर्वभूतानि वानराः । महामेरुप्रतीकाशं मां द्रक्ष्यध्वं प्लवंगमाः ॥२१॥

शरीरके रोंगटें खड़े हो गए थे ॥८॥ पर्वतके शिखरोंको पीड़ित करनेवाला, अग्निका मित्र अनिल, जो बलवान और सीमा-रहित आकाशमें चलनेवाला है, उस शीघ्रवेग, शीघ्रगामी महात्मा वायुका मैं पुत्र हूँ । चलनेमें मैं उन्हींके समान हूँ ॥१०॥ यह विशाल आकाशको छूनेवाला जो मेरु पर्वत है, उस पर बिना ठहरे मैं हजारों बार आ जा सकता हूँ ॥११॥ बाहुवेगसे समुद्रको प्रेरित करके पर्वतों नदियों तालाबसे युक्त इस समस्त लोकको मैं डुबा सकता हूँ ॥१२॥ यह वरूणका निवासस्थान समुद्र मेरी जंघाके बलसे अपनी मर्यादा छोड़ देगा । इसके बड़े बड़े ग्राह ऊपर उठ आवेगें ॥१३॥ सांप खानेवाले, आकाशमें उड़ने वाले, पक्षियोंके राजा गरूड़का हजारों बार मैं पीछा कर सकता हूँ अर्थात् उनके साथ साथ चल सकता हूँ ॥१४॥ उदयाचलसे चले हुए, किरणोंकी माला धारण करनेवाले, तथा जलते हुए सूर्यका, जब तक वे अस्ताचल पर पहुंचे तब तक, मैं साथ दे सकता हूँ ॥१५॥ वानरश्रेष्ठो, वेगपूर्वक समुद्रके उस पार जाकर बिना भूमि छूए मैं लौट भी आ सकता हूँ ॥१६॥ सब आकाशचारियोंका पीछा कर सकता हूँ, अर्थात् वेगमें उनसे आगे बढ़ सकता हूँ । समुद्रको सोख सकता हूँ, पृथिवीको फोड़ सकता हूँ ॥१७॥ बड़े वेगसे जाते हुए मैं पर्वतोंको चूर कर दूंगा । वेग पूर्वक चलकर मैं समुद्रके पार चला जाऊँगा ॥१८॥ आकाशमें जब मैं उड़कर चलूंगा, तब अनेक लताओंके पुष्प तथा अनेक वृक्षों के पुष्प मेरे साथ साथ चलेगें (वेगके झोंकेसे मेरे साथ साथ चलेगें) ॥१९॥ इससे आकाशमार्गमें प्रस्थान करनेके समय, ऊपर उठते समय, मेरा मार्ग स्वातिके मार्गके समान होगा । (स्वातिके मार्गका नाम छायापथ है, उसमें बहुतसे नक्षत्र हैं, पुष्पोंके कारण हनुमानका पंथ भी छायापथके समान मालूम पड़ेगा) ॥२०॥ जब समुद्रके उस पार मैं जाऊँगा तब सब प्राणी मुझे देखेगें । वानरो, मेरुके समान विशाल मुझको देखो ॥२१॥ आकाशको

दिवमाप्लुत्य गच्छन्तं ग्रसमानमिवाम्बरम् । विधमिष्यामि जीमूतान्कम्पयिष्यामि पर्वतान् ॥
सागरं शोषयिष्यामि प्लवमानः समाहितः । ॥२२॥
वैनतेयस्य वा शक्तिर्मम वा मारुतस्य वा । ऋते सुपर्णराजानं मारुतं वा महाबलम् ॥
न तद्भूतं प्रपश्यामि यन्मां प्लुतमनुव्रजेत् । ॥२३॥
निमेषान्तरमात्रेण निरालम्बनमम्बरम् । सहसा निपतिष्यामि घनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥२४॥
भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरम् । विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रीन्विक्रमानिवाः ॥२५॥
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा । अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः ॥२६॥
मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे । अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥२७॥
वासवस्य सवज्रस्य ब्रह्मणो वा स्वयंभुवः । विक्रम्य सहसा हस्तादमृतं तदिहानये ॥२८॥
लङ्कां वापि समुत्क्षिप्य गच्छेयमिति मे मतिः । तमेवं वानरश्रेष्ठं गर्जन्तममितप्रभम् ॥२९॥
प्रहृष्टा हरयस्तात समुदैक्षन्त विस्मिताः । तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम् ॥३०॥
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः । वीरकेसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज ॥३१॥
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः । तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः ॥३२॥
मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः । ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ॥३३॥
गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् । स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ॥३४॥
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् । ततश्च हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः ॥३५॥

उछलकर उसे निगलते हुए के समान, मैं जाऊंगा । मेघोंको चूर कर दूंगा और पर्वतोंको कँपा दूंगा । पार करता हुआ मैं समुद्रको सोख लूंगा ॥२२॥ मेरे समान गरुड़की या वायुकी ही शक्ति है । गरुड़ और महाबली वायुको छोड़कर और किसी प्राणीको मैं नहीं देखता जो कूदने पर मेरा साथ दे सके ॥२३॥ थोड़ीही देरमें मेघस्थ विद्युतके समान इस आश्रमहीन आकाशमें मैं सहसा कूदूंगा ॥२४॥ सागरको पार करते हुए मेरा रूप तीन पैरसे नापनेवाले वामन के समान हो जायगा ॥२५॥ मैं बुद्धिसे देख रहा हूँ और वैसाही मेरे मनका उत्साह है । मैं सीताको देखूंगा । वानरो, तुम लोग प्रसन्न रहो ॥२६॥ मैं वेगमें वायु और गरुड़के समान हूँ, मैं दस हजार योजन तक जा सकता हूँ, ऐसी मेरी समझ है ॥२७॥ वज्रधारी इन्द्रके, अथवा स्वयंम्भू ब्रह्माके हाथसे पराक्रमपूर्वक, अमृत लेकर मैं यहां आ सकता हूँ ॥२८॥ मैं लंकाके आगे भी जा सकता हूँ अथवा लंकाको उखाड़ सकता हूँ । अमिततेज, वानरश्रेष्ठ हनुमानको वानरोंने चकित होकर देखा । बान्धवोंके शोक नष्ट करनेवाले हनुमानके वे वचन सुनकर वानराधिपति जाम्बवान् प्रसन्न होकर बोले– केशरीके पुत्र और वायुके पुत्र तुमने अपने समस्त बान्धवोंके शोक नष्ट कर दिए । सुन्दर प्रधान वानर आये हैं, सावधान होकर कार्यसिद्धिके लिए ये तुम्हारा मंगलविधान करेगें । ऋषियोंके प्रसादसे, वृद्ध वानरोंकी सलाहसे, गुरुओंकी कृपासे तुम समुद्रके पार जाओ । तुम्हारे आने तक हम लोग एक पैरसे खड़े रहेंगे ॥२९,३०,३१,३२,३३,३४॥ सब वानरोंका जीवन तुम्हारेही अधीन है । वानरश्रेष्ठ हनुमान

कोऽपि लोके न मे वेगं प्लवने धारयिष्यति । एतानीह नगस्यास्य शिलासंकटशालिनः ॥३६॥
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च । येषु वेगं गमिष्यामि महेन्द्रशिखरेष्वहम् ॥३७॥
नानाद्रुमविकीर्णेषु धातुनिष्पन्दशोभिषु । एतानि मम वेगं हि शिखराणि महान्ति च ॥३८॥
प्लवतो धारयिष्यन्ति योजनानामितः शतम् । ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः ॥
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः । ॥३९॥
वृतं ननाविधैः पुष्पैर्मृगसेवितशाद्वलम् । लताकुसुमसंबाधं नित्यपुष्पफलद्रुमम् ॥४०॥
सिंहशार्दूलसहितं मत्तमातङ्गसेवितम् । मत्तद्विजगणोद्घुष्टं सलिलोत्पीडसंकुलम् ॥४१॥
महद्भिरुच्छ्रितः शृङ्गैर्महेन्द्रस्य महाबलः । विचचार हरिश्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ॥४२॥
बाहुभ्यां पीडितस्तेन महाशैलो महात्मना । ररास सिंहाभिहतो महान्मत्त इव द्विपः ॥४३॥
मुमोच सलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः । वित्रस्तमृगमातङ्गः प्रकम्पितमहाद्रुमः ॥४४॥
नानागन्धर्वमिथुनैः पानसंसर्गकर्कशैः । उत्पतद्भिर्विहंगैश्च विद्याधरगणैरपि ॥४५॥
त्यज्यमानमहासानुः संनिलीनमहोरगः । शैलशृङ्गशिलोत्पातस्तदाभूत्स महागिरिः ॥४६॥
निःश्वसद्भिस्तदा तैस्तु भुजगैरर्धनिःसृतैः । सपताक इवाभाति स तदा धरणीधरः ॥४७॥
ऋषिभिस्त्रासस‍ंभ्रान्तैस्त्यज्यमानः शिलोच्चयः । सीदन्महति कान्तारे सार्थहीन इवाध्वगः ॥४८॥

उनसे बोले ॥३५॥ लोकमें कोई भी उड़नेके समय मेरे वेगको धारण नहीं कर सकता ॥३६॥ ऊँचे ऊँचे पत्थरवाले, इस महेन्द्र पर्वतके शिखर बड़े बड़े हैं, इन्हीं परसे मैं कूदूँगा ॥३७॥ जिसमें चारो ओर अनेक वृक्ष हैं और पिघली हुई धातुएँ हैं । ये बड़े शिखर मेरे वेगको सह सकेंगे ॥३८॥ सौ योजन कूदनेके मेरे वेगको ये धारण कर सकेंगे । अनन्तर वायुके समान, वायुपुत्र हनुमान पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्रपर चढ़े ॥३९॥ अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, लताकुसुमसे युक्त, सदा फूलने फलनेवाले वृक्षोंसे युक्त, सिंह, शार्दूल, मत्त मातंगसे युक्त, मत्त पक्षियोंसे शब्दायमान, जलधारासे युक्त, बड़े शिखरोंसे विशाल, महेन्द्र पर्वतपर इन्द्रके समान पराक्रमी वानर-श्रेष्ठ हनुमान विचरण करने लगे ॥४०,४१,४२॥ महात्मा हनुमानने हाथोंसे उस पर्वतको दबाया जिससे शब्द होने लगा, जिस प्रकार सिंहके आघातसे मतवाला हाथी शब्द करता है ॥४३॥ जलकी धाराएँ उससे बह निकलीं । उसके शिखर टूट फूट गए, हाथी आदि डर गए और बड़े बड़े वृक्ष काँप गए ॥४४॥ अनेक गन्धर्व स्त्री पुरुष जो मद्य पीनेसे कर्कश हो गए थे वे, उड़ते हुए पक्षी तथा विद्याधरोंके समूह उस पर्वतके शिखरको छोड़ने लगे । बड़े बड़े सर्प बिलमें छिप गए । उस पर्वतपर शिखरके पत्थरोंके गिरनेसे एक प्रकारका उत्पात सा मालूम हुआ । साँस छोड़ते हुए, आधे निकले सर्पोंके कारण वह पर्वत पताकायुक्त मालूम हुआ ॥४५,४६,४७॥ भयसे भीत ऋषियोंने उस पर्वतको छोड़ दिया, बीहड़ वनमें कष्ट उठाते हुए पथिक जिस प्रकार अपने साथियोंको छोड़ देते हैं ॥४८॥ वेगमें जिसने

न वेगवान् [illegible] गां।
मनः समाधाय म[illegible] नन्वी ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये [illegible] षष्टितमः सर्गः ॥६७॥



अपना मन दृढ़ कर लिया है वह वेगवान महानुभाव, शत्रुवीरोंको हनन करनेवाले वानर-श्रेष्ठ हनुमान मनको सावधान कर मनसे लंका गए ॥४९॥

[illegible]



* किष्किन्धाकाण्ड समाप्त *

कुल पृष्ठ-संख्या:—

२०६+२=२०८

साधारण साइजके ४१६ पृष्ठ